श्री मरुधर केसरी प्रवचन माला : पुष्प ६

पुस्तक क्रमांक [illegible]

प्रवचन प्रभा

भाग १

प्रवचनकार

मरुधर केसरी, प्रवर्तक, आशुकविरत्न

मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज

प्रकाशक

श्री मरुधरकेशरी साहित्य प्रकाशन समिति

जोधपुर—ब्यावर

भगवान महावीर के पच्चीस सौवें निर्वाण महोत्सव समारोह
के उपलक्ष में

प्रकाशक मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति जोधपुर-ब्यावर	प्रेरक श्री रजत मुनि सपादक श्री सुकन मुनि
प्रथम आवृत्ति वि० स० २०२६ कार्तिक पूर्णिमा नवम्बर १६७२	मुद्रणव्यवस्था सजय साहित्य सगम के लिए— रामनारायन मेड़तवाल श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस, राजा की मडी, आगरा–२

मूल्य पांच रुपये मात्र

कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री रेखचंदजी रांका बागड़ी नगर

अभिनन्दन

छप्पय

प्रकट रूप से भरे भाव जहं जैनधर्म के,
वचन वाटिका खिली रहे उपदेश मर्म के।
चमके चपला भावभरे नभ-हृद के मांही,
नश्वर सा जग जान, चले मग मोखन तांही।
प्रवचन प्रभा मुनि मिश्री की, जै सुनर नित ही पढै,
भाग्यवंत वनि 'सुकन' नर सदाचार मग मे बढै।

—**शुकन मुनि**

हमारा महत्त्वपूर्ण साहित्य

१	श्रीमरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ	मूल्य २४)
२	श्री पाण्डव यशोरसायन (महाभारत पद्य)	१०)
३	श्रीमरुधर केसरी ग्रन्थावली, प्रथम भाग	५)४० पैसा
४	,, ,, द्वितीय भाग	७)
५	जीवन ज्योति	५)
६	साधना के पथ पर	५)
७	जैनधर्म मे तप स्वरूप और विश्लेपण	१०)
८	सकल्प विजय	२)
९	सप्त रत्न	२)
१०	मरुधरा के महान सत	२)
११	हिम्मत विलास	२)
१२	सिहनाद	१)
१३	वुध विलास प्र० भाग	१)
१४	,, द्वि० भाग	१)
१५	श्रमण सुरतरु चार्ट	५)
१६	मधुर पचामृत	१)
१७	पतगसिह चरित्र	५० पैसा
१८	श्री वसत माधुमजूषोपा	५० पैसा
१९	आपाढभूति	२५ पैसा
२०	भविष्यदत्त	२५ पैसा
२१	सच्ची माता के सपूत	१)
२२	तत्वज्ञान तरगिणी	१)
२३	लमलोटका लफदर	२५ पैसा
२४	भायलारो भिरु	२५ पैसा
२५	टणकाइ रो तीर	२५ पैसा
२६	सच्चा सपूत	२५ पैसा
२७	पद्यमय पट्टावली	१)
२८	जिनागम संगीत	५० पैसा

श्रीमरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन समिति

पीपलिया बाजार, जैनस्थानक

ब्यावर, राजस्थान

प्रकाशकीय

ज्ञान मनुष्य की तीसरी आख है। यह आख जन्म से नही, किन्तु अभ्यास और साधना के द्वारा जागृत होती है। कहना नही होगा, इस दिव्य नेत्र को जागृत करने मे सद्‌गुरु का सहयोग अत्यत अपेक्षित है। सद्‌गुरु ही हमारे इस दिव्य चक्षु को उद्‌घाटित कर सकते हैं। उनके दर्शन, सत्सग, उपदेश और प्रवचन इसमे अत्यंत सहायक होते हैं। इसलिए सद्‌गुरुओ के प्रवचन सुनने और उस पर मनन करने की आज बहुत आवश्यकता है।

बहुत से व्यक्ति सद्‌गुरुदेव के प्रवचन सुनने को उत्सुक होते हुए भी वे सुन नही पाते। चू कि वे सुदूर क्षेत्रो मे रहते है, जहा सद्‌गुरुजनो का चरण-स्पर्श मिलना भी कठिन होता है।

ऐसी स्थिति मे प्रवचन को साहित्य का रूप देकर उनके हाथो मे पहुँचाना और भगवद्‌वाणी का रसास्वादन करवाना एक उपयोगी कार्य होता है। ऐसे प्रयत्न हजारो वर्षों से होते भी आये हैं। इसी शुभ परम्परा मे हमारा यह प्रयत्न है श्री मरुधरकेसरी जी म० के प्रवचन साहित्य को व्यवस्थित करके प्रकाशित कर जन-जन के हाथो मे पहुचाना।

यह सर्वविदित है कि श्री मरुधरकेसरी जी म० के प्रवचन बड़े ही सरस, मधुर, साथ ही हृदय को आन्दोलित करने वाले, कर्तव्यबुद्धि को जगाने वाले और मीठी चोट करने वाले होते हैं।

उनके प्रवचनो मे सामयिक समस्याओ पर और जीवन की पेचीदी गुत्थीयो पर वडा ही विचारपूर्ण समाधान छिपा रहता है, साथ ही उनमे वड़ा चुटीलापन और रोचकता भी रहती है, जो श्रोता और पाठक को चुम्वक की भाति अपनी ओर खीचे रखते हैं। इसलिए हमे विश्वास है कि यह प्रवचन साहित्य पाठको को रुचिकर और मनोहर लगेगा।

श्री मरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन समिति के द्वारा मुनिश्री जी का कुछ महत्वपूर्ण साहित्य प्रकाशित किया गया है, और अभी वहुत-सा साहित्य, कविताएँ, प्रवचन आदि अप्रकाशित ही पडा है। हम इस दिशा मे प्रयत्नशील हैं कि यह जनोपयोगी साहित्य शीघ्र ही सुन्दर और मनभावने रूप मे प्रकाशित होकर पाठको के हाथो मे पहुचे।

इन प्रवचनो का सपादन मुनिश्री के विद्याविनोदी शिष्य श्री सुकन मुनि जी के निर्देशन मे किया गया है। अत मुनिश्री का तथा अन्य सहयोगी विद्वानो का हम हृदय से आभार मानते हैं।

पुस्तक को मुद्रण आदि की दृष्टि से आधुनिक साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत करने मे श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' का हार्दिक सहयोग हमे प्राप्त हुआ है, जिसे भुलाया नही जा सकता।

अव यह पुस्तक पाठको के हाथों मे प्रस्तुत है—इसी आशा के साथ कि वे इसके स्वाध्याय से अधिकाधिक लाभ उठायेंगे।

पुखराज सिशोदिया
अध्यक्ष
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति

दो शब्द

साधारण मनुष्य की वाणी 'वचन' कहलाती है, किन्तु किसी ज्ञानी, साधक एव अन्तर्मुखी चिन्तक की वाणी 'प्रवचन' होती है। उसकी वाणी मे एक विशिष्ट वल, प्रेरणा और दिव्यता-भव्यता का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर विजली की भाति आदोलित करने की क्षमता उस वाणी मे होती है।

'प्रवचन प्रभा' पढते समय पाठक को कुछ ऐसा ही अनुभव होगा—इन प्रवचनो मे जितनी सरलता और सहजता है, उतना ही चुटीलापन और हृदय को उद्वोधित करने की तीव्रता भी है। मुनिश्री की वाणी विल्कुल सहज रूप मे नदी प्रवाह की भाँति वहती हुई सी लगती है, उसमे न कृत्रिमता है, न घुमाव है और न व्यर्थ का शब्दो का उफान! ऐसा लगता है, जैसे पाठक स्वय वक्ता के सामने खडा है, और साक्षात् उसकी वाणी सुन रहा है। प्रवचनो की इतनी सहजता, स्वाभाविकता और हृदय-स्पर्शिता वहुत कम प्रवक्ताओ मे मिलती है।

इन प्रवचनो मे जीवन के विविध पक्षो पर, विभिन्न समस्याओ पर मुनिश्री ने वडे ही व्यावहारिक और सहजगम्य ढग से अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। कही-कही विषय को ऐतिहासिक एव तुलनात्मक दृष्टि से व्यापक वनाकर उसकी गहराई तक श्रोताओ को ले जाने का प्रयत्न भी किया गया है। इससे प्रवचनकार की वहुश्रुतता, और सूक्ष्म-प्रतिभा का भी स्पष्ट परिचय मिलता है।

प्रवचनकार मुनिश्री मिश्रीमलजी म० सचमुच 'मिश्री' की भाति ही एक 'कठोर-मधुर' जीवन के प्रतीक हैं। उनके नाम के पूर्व 'मरुधरकेसरी' और कही-कही 'कडकमिश्री' विशेषणो का भी प्रयोग होता है—यह विशेपण उनके व्यक्तित्व के वाह्य-आभ्यन्तर स्वरूप को दर्शाते हैं।

मिश्री—की दो विशेपताएँ है, मधुर तो वह है ही, उसका नाम लेते ही मुह मे पानी छूट जाता है। किंतु उसका वाह्य आकार वडा कठोर है, यदि ढेले की तरह उसको फेंककर किसी के सिर मे चोट की जाय तो खून भी आ सकता है। अर्थात् मधुरता के साथ कठोरता का एक विचित्र भाव-'मिश्री' शब्द मे छिपा है। सचमुच ऐसा ही भाव क्या मुनिश्री के जीवन मे नही हैं?

उनका हृदय वहुत कोमल है, दयालु है। किसी को सकटग्रस्त, दुखी व सतप्त देखकर मोम की भाँति उनका मन पिघल जाता है। मिश्री को मुट्ठी मे वन्द कर लेने से जैसे वह पिघलने लगती है, वैसे ही मुनिश्री किसी को दुखी देखकर भीतर-ही-भीतर पिघलने लगते हैं, और करुणा-विगलित होकर अपने वरदहस्त से उसे आशीर्वाद देने तत्पर हो जाते हैं। जीव दया, मानव-सेवा, साधर्मिवात्सल्य आदि के प्रसगो पर उनकी असीम मधुरता, कोमलता देखकर लगता है, मिश्री का माधुर्य भी यहा फीका पड जाता है!

उनका दूसरा रूप है—कठोरता! समाज व राष्ट्र के जीवन मे वे कही भी भ्रष्टाचार देखते हैं, अनुशासनहीनता और सम्प्रादायिक द्वन्द्व, झगडे देखते हैं तो पत्थर से भी गहरी चोट वहा पर करते हैं। केसरी की तरह गर्जना करते हुए वे उन दुर्गुणों व बुराइयो को ध्वस्त करने के लिए कमर कस कर खडे हो जाते हैं। समाज मे जहां-जहा साप्रदायिक तनाव, विरोध और आपस के झगडे होते हैं—वहा प्राय मरुधर केसरी जी के प्रवचनो की कडी चोट पडती है, और वे उनका अन्त करके ही दम लेते हैं।

लगभग अस्सी वर्ष के महास्थविर मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज के हृदय मे समाज व संघ की उन्नति, अभ्युदय और एकता व सगठन की तीव्र

तडप है। एकता व सगठन के क्षेत्र मे वे एक महत्वपूर्ण कडी की भाँति स्थानकवासी श्रमण सघ मे सदा-सदा से सन्माननीय रहे हैं। समाज सेवा के क्षेत्र मे उनका देय वहुत वडा है। राजस्थान के अचलो मे गाव-गाव मे फैले शिक्षाकेन्द्र, ज्ञानभण्डार, वाचनालय, उद्योगमन्दिर, व धार्मिक साधना केन्द्र उनके तेजस्वी कृतित्व के वोलते चित्र हैं। विभिन्न क्षेत्रो मे काम करने वाली लगभग ३५ सस्थाएं उनकी सद्प्रेरणाओ से आज भी चल रही हैं, अनेक सस्थाओ, साहित्यिको, मुनिवरो व विद्वानो को उनका वरद आर्शीवाद प्राप्त होता रहता है। वे अपने आप मे व्यक्ति नही एक, सस्था की तरह विकासोन्मुखी प्रवृत्तियो के केन्द्र हैं।

मुनिश्री आशुकवि हैं। उनकी कविताओ मे वीररस की प्रधानता रहती है, किंतु वीरता के साथ-साथ विरक्ति, तपस्या और सेवा की प्रवल तरगें भी उनके काव्य-सरोवर मे उठ-उठ कर जन-जीवन को प्रेरणा देती रही हैं।

श्री मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो का विशाल साहित्य सकलित किया पडा है, उसमे से अभी वहुत कम प्रवचन ही प्रकाश मे आये हैं। इन प्रवचनो को साहित्यक-रूप देने मे तपस्वी कविरत्न **श्री रूपचन्दजी म० 'रजत'**—का बहुत वडा योगदान रहा है। उनकी अन्तर् इच्छा है कि मरुधर केसरी जी म० का सपूर्ण प्रवचन साहित्य एक माला के रूप मे सुन्दर, रुचिकर और नयनाभिराम ढग से पाठको के हाथों मे पहुचे। श्री 'रजत' मुनि जी की यह भावना साकार होगी तो अवश्य ही साहित्य के क्षेत्र मे अनेक महत्वपूर्ण कृतिया हमे प्राप्त हो सकेगी। विद्याप्रेमी श्री सुकन मुनिजी की प्रेरणाओ से इन प्रवचनो का सपादन एव प्रकाशन शीघ्र ही गति पर आया है, और आशा है भविष्य मे भी आता रहेगा। मुनिश्री की एक महत्वपूण रचना 'जैनधर्म मे तप स्वरूप और विश्लेपण" अभी प्रकाश मे आई है, वह पुस्तक जिस किसी भी हाथ मे गई है, मुक्तकठ से उसकी प्रशसा हो रही है।

मुझे विश्वास है, प्रवचन प्रभा के पाठक भी इसी प्रकार एक नई प्रेरणा और कर्तव्य की स्फूर्ति प्राप्त कर कृतार्थता अनुभव करेंगे।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

अनुक्रमणिका

●●

प्रवचन प्रभा

प्रथम भाग

१ | ज्ञान का अक्षय श्रोत

पर्युषण का अर्थ

सज्जनो, आज महान् पर्व पर्युषण का प्रारम्भ हो रहा है। अब हमे यह जानना है कि पर्युषण शब्द का अर्थ क्या है, इसकी परिभाषा क्या है? प्राकृत 'पज्जुसवणा' का सस्कृत रूप पर्युषणा है। इस शब्द की निरुक्तिपूर्वक परिभाषा इस प्रकार की गई है—

'पर्याया ऋतुवृद्धिका द्रव्य क्षेत्र काल भाव सम्बन्धिन उत्सृज्यन्ते उज्झ-यन्ते यस्यां सा निरुक्तिविधिना पर्योसवना। अथवा परीति सर्वत क्रोधादि-भावेभ्य उपशम्यते यस्यां सा पर्युपशमना। अथवा परितः सर्वतः एकक्षेत्रे नियतकाल यावत् वसन पर्युषणा।"

शास्त्रो मे प्राकृत पज्जुसवणा शब्द के संस्कृत भाषा मे तीन प्रकार के रूप पाये जाते हैं। पर्योसवना, पर्युपशमना और पर्युषणा। प्रथम शब्द रूप के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव सम्बन्धी ऋतुवर्धक पर्यायो को, आचरणो को छोडा जाता है, उसे पर्योसवना कहते हैं। दूसरे रूप के अनुसार क्रोधादि भावो को जिसमे उपशान्त किया जावे, उसे पर्युपशमना कहते हैं। तीसरे रूप के अनुसार जिसमे नियत काल तक सर्व कार्यो को

छोडकर एक क्षेत्र मे आत्मस्वरूप का विचार करते हुए निवास करने को पर्युषणा कहते है ।

पर्वराज के इन तीनो ही रूपो के अनुसार हमे इन आठ दिन मे द्रव्य, क्षेत्र-काल-भाव सम्बन्धी सभी बाहिरी कार्यों को छोडना है, तथा भीतरी क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह आदि भावो को दूर करके उपशम भाव को लाना है और एकान्त स्थान मे निवास करके अपना आत्मस्वरूप क्या है, मैं जो कार्य कर रहा हू, वे मेरी आत्मा के शान्ति-वर्धक हैं, या अशान्ति-कारक हैं और मैं इन कार्यों को करते हुए सुगति को जाऊंगा, या दुर्गति को जाऊगा ? इस प्रकार विचार करना। यह तो हुआ पज्जुसवणा—या पर्युषणा शब्द का अर्थ। और पर्व शब्द का अर्थ है अपनी कमी को पूरी करना। इस प्रकार इस महान् पर्वके दिनो मे हमे ये सब काम करके आत्मा की कमी को पूरी करना है ।

कर्मों के घर मे

आत्मा का स्वरूप क्या है ? आत्मा चेतन स्वरूप है—अक्षय अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य आदि गुणो का भडार है। तथा जिस शरीर मे यह रह रहा है, वह अचेतन है, जड है और क्षय को प्राप्त होने वाला है। इस जड शरीर के साथ इस चेतन आत्मा का संयोग आज-कल से नही, किन्तु अनन्त भवो से—अनन्त काल से चला आ रहा है। शरीर का सयोग कर्म-जनित है। कर्मों के सयोग से आत्मा को कभी भी स्वतन्त्रता नही मिली है और आत्मा अपने असली स्वरूप को आज तक भी प्राप्त नही कर सका है। क्योकि हम अपने घर को छोडकर दूसरे के घर मे जाकर रह रहे हैं। दूसरे के घर के जो नियम होते हैं, वे ही हमे पालना पडते हैं। यदि हम उन नियमो का उल्लघन करेंगे, तो घर का मालिक तुरन्त कह देगा कि भाई साहब, यदि इस प्रकार की स्वतन्त्रता रखनी है तो आप अपने घर मे जाकर रहिए। हमारे घर मे तो आप ऐसा नही कर सकते हैं। ठीक इसी प्रकार से हमारा आत्मा कर्मों के घर मे अनादिकाल से रहता हुआ चला आ रहा है। इससे हमारी आत्मा के जो आठ महान् गुण थे, उन पर रुकावट आ गई है। आठ कर्मों ने उन्हे रोक रखा है।

शास्त्र मे आठ-कर्मों के नाम इस प्रकार वताए हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय। आत्मा का सवसे प्रधान गुण ज्ञान है। इस ज्ञान गुण को—जानने की अनन्त शक्ति को ज्ञानावरणीय कर्म ने ढक रखा है—आवरण कर रखा है, वह ज्ञान को प्रकट नही होने दे रहा है। जैसे सूर्य का स्वभाव प्रकाशमान है, किन्तु जव वह वादलो से घिर जाता है—आच्छादित हो जाता है तो उसका प्रकाश फीका पड जाता है और उसकी ज्योति मन्द पड जाती है। यदि जल-भरे काले वादलो की घनघोर घटा उसे आच्छादित कर लेती है, तो दिन मे भी विशेप अन्धकार आ जाता है। इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के आ जाने से हमारा सम्यक् ज्ञान ढक रहा है और उसका वास्तविक पूर्ण प्रकाश हमे नही प्राप्त हो रहा है। हमे अपने चारो ओर अज्ञान ही अज्ञान रूप अन्ध-कार दिखाई दे रहा है। अथवा जैसे हम अपनी आखें वन्द कर लेवें, या उन पर पट्टी वाध लें, तो हमे कुछ भी दिखाई नही देता है और सव ओर अन्धेरा ही प्रतीत होता है। इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के द्वारा सूर्य के समान प्रकाशमान और इस चराचर जगत का प्रकाशक हमारा ज्ञान गुण आच्छादित हो रहा है, ढक रहा है—इससे इस चराचर जगत को हाथ पर रखे आवले के समान जानने की शक्तिवाला आत्मा उसे नही जान रहा है।

आवरण को हटाइए

पर्वराज का यह पहला दिन हमे इस ज्ञानावरणीय कर्म को दूर करने की प्रेरणा देता है। क्या प्रेरणा देता है? यह प्रेरणा देता है कि हम यह विचार करें कि हमारे यह ज्ञानावरणीय कर्म क्यो वधा? इसलिए वधा कि हमने ज्ञानी पुरुषो की आशातना की, ज्ञान की आशातना की, ज्ञान के उपकरणो की आशातना की, ज्ञान के पढने वालो को अन्तराय दी और सम्यक्ज्ञान को मिथ्यात्व के साचे मे ढाला। इन पांच कारणों से हमारे ज्ञानावरणीय कर्म वधता है। अनादिकाल से ही यह जीव इस प्रकार के कार्यों को करता आ रहा है, अत तभी से यह इस कर्म

से वधा हुआ है। यद्यपि वधने वाले कर्मों की स्थिति निश्चित है, तथापि वे वधे हुए कर्म झडते हुए नये कर्म का वन्ध कर जाते हैं सो नये-नये कर्म आत्मा से वध जाते है। इम प्रकार कर्मो की यह सनातन परम्परा अनादि-काल से चली आ रही है। जव आत्म-प्रदेशो के ऊपर कर्मों के रजकण लगातार आते ही रहते हैं तव आत्मा के ज्ञान गुण का ढकना, आवरण होना या रुकावट पैदा होना स्वाभाविक ही है। आप लोग जानते ही हैं कि यदि ककड या मिट्टी के रजकण पेट मे चले जाते हैं तो भीतर एक छोटी-सी गोली वन जाती है। धीरे-धीरे उसके ऊपर और रजकण चिपकते जाते हैं और वह वडी वन जाती है। इम प्रकार वह वडी वनके पथरी का रूप धारण कर लेती है, जिससे पेशाव का आना वन्द हो जाता है। और आदमी छटपटाने लगता है। तव वह डॉक्टर के पास जाता है। वह निर्णय करके कहता है कि भाई, तुम्हारे पेट मे तो पथरी है, मूत्राशय के आगे आ गई है, इससे पेशाव करने मे रुकावट आ गई है। अतएव या तो इसका आपरेशन कराओ, अथवा कोई ऐसी तेज दवा लो, जिससे कि यह भीतर-ही भीतर गल कर वाहिर निकल जाय। जिम प्रकार धीरे-धीरे पेट मे सचित होने वाले रज कणो ने पेशाव के आने मे रुकावट डाली, उसी प्रकार आत्मा के ऊपर ज्ञाना वरणीय कर्म के रजकणो ने ज्ञान का प्रकाश वाहिर आने मे रुकावट डाली हुई है। फिर भी हम समझते हुए भी इस रहस्य को नही समझ रहे हैं। और जो कार्य उत्तम है, ज्ञानवर्धक है एव ज्ञान-प्रकाशक है, उससे फिर भी दूर होते जा रहे हैं। जहा हमारे मन मे उपदेश सुनकर और शास्त्रो को पढकर नम्रता आनी चाहिए थी, वहा कठोरता आ रही है। जहा धैर्य आना चाहिए वहा अधैर्य आ रहा है। जहाँ हमारे भीतर वडप्पन आना चाहिए, वहा छोटा पना आ रहा है। जहा सरलता रहनी चाहिए, वहा कुटिलता आ रही है। जहा सिंह समान दहाड मार कर और निर्भय होकर आगे आना चाहिए था, वहा पर कायरता लाकर पीछे की ओर भाग रहे हैं।

आपको मालूम है कि सनातनधर्मी नौ ग्रह मानते हैं जो कि आज सर्वत्र प्रचलित और सर्वविदित हैं। किन्तु जैन सूत्रो मे ८८ ग्रह वतलाये गये हैं।

इनकी स्थिति किसी को पाच हजार किसी की दस हजार, और किसी की तीस हजार वर्ष की है। जव हमारा इतना आयुष्य ही नही है, तव वे ग्रह कैसे भुगतेंगे। अभी हमारा आयुष्य सौ वर्ष जाझेरा है, तभी कहा जाता है कि सौ के ऊपर एक तो जाझेरा दस है, वीस है, पच्चीस है, पचास है तो ये सव जाझेरा है। यह कहा तक कि १९९ तक जाझेरा कहलाता है। आज हमारा आयुष्य एक सौ जाझेरा है। कितने ही लोग कहते हैं कि हमने तो गुरुजनो के मुख से यह सुना है कि इस काल मे १२५ वर्ष से अधिक मनुष्यो का आयुष्य नही है। यह कथन परम्परागत है। परन्तु सिद्धान्त से गिनें तो सौ वर्ष से जाझेरा आयुष्य है। इतने समय मे हम हर एक ग्रह को नहीं भोग सकते हैं। दूसरी वात यह है कि सात ग्रह तो आगे को वढते हैं और राहु-केतु ये दो ग्रह पीछे को जाते हैं। हमारी आत्मा क्या राहु या केतु के समान है, जो पीछे जाती रहे ? हमे तो आगे वढना चाहिए।

ज्ञान-प्राप्ति के पांच उपाय

हाँ, तो मैंने वताया कि पाँच कारणो से ज्ञानावरणीयकर्म का वन्ध होता है। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से कोई व्यक्ति स्पष्ट शब्द नही वोल पाता है, तो कोई तुतलाता है। किसी के वचन कडवे और वेढगे ही निकलते हैं, कोई गुँगा ही रह जाता है। कोई पढने मे वहुत परिश्रम करने पर भी नही पढ पाता है। खूव याद करने पर भी किसी को पाठ ही याद नही हो पाता है। किसी प्रकार याद भी हो जाय तो वह जल्दी ही भूल जाता है। यह सव ज्ञानावरणीयकर्म के उदय-जनित कार्य जानना चाहिए। अव हमे उन को मिटाने का ही काम करना है। जैसे ज्ञानावरणीय कर्म के वाधने के पाच कारण हैं, वैसे ही उसके तोडने के भी पाँच कारण हैं। वे इस प्रकार हैं—पहिले तो देव, गुरु और धर्म की भक्ति करें। भक्ति कैसे करनी ? क्या किसी को केशर-चन्दन लगाने की आवश्यकता है ? क्या दीप-धूप जलाने की आवश्यकता है ? नही। इस प्रकार की भक्ति की आवश्यकता नही है, वह भक्ति कैसी होनी चाहिए, इसके लिए आनन्दघन जी कह रहे हैं कि—

चित्त प्रसन्ने रे पूजन फल कह्यो, पूजा अखंडित येह ।
कपट-रहित हो रे आतम अर्पणा आनन्दघन पद जेह ।।
ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम मायरो ।

महान् आध्यात्मिक पुरुष आनन्दघन जी महाराज आदि-जिनेश्वर ऋषभ देव की स्तुति के अन्त मे कह रहे हैं कि हे प्रभो, मैं तेरी पूजा करूँ ? भाई, पूजा किसे कहते हैं ? अन्तरग मे चित्त की प्रसन्नता होनी चाहिए, उसके साथ, चित्त की एकाग्रता के साथ, चित्त तन्मयता के साथ, हृदय की स्वच्छता के साथ प्रभु के गुणो मे अपने हृदय को सलग्न कर देना यही सच्ची पूजा है । और किसकी पूजा करूँ ? तो बताया कि जो अखण्डित है, खडित होने वाला नही है । शाश्वत नित्य है, बिखरने वाला नही है, मैला होने वाला नहीं है, व्यवधान रहित है और अपने रूप मे महान् है, ऐसे प्रभु की पूजा करूँ ! ऐसी पूजा करूँ कि उनके गुणो से हमें अनुपम आनन्द मिल जाय । अच्छा भाई, तू प्रभु की पूजा के लिए तैयार हो गया, परन्तु प्रभु के आगे उनके श्रीचरणो मे भेंट क्या करेगा ? तब भक्त कहता है कि मेरे पास और क्या है, जो तेरे आगे भेंट करूँ ? परन्तु भेंट रूप मे कपट, छल-छिद्र और कुटिलता को छोडकर मैं अपनी आत्मा ही तुझे अर्पण करता हू । अर्थात् अब मैं निश्छल भाव से शुद्ध हृदय से आपके भीतर समाविष्ट होना चाहता हू । अब आप लोग समझ लीजिए कि प्रभु की पूजा कैसी होती है । इस प्रकार से तो देव की पूजा करनी चाहिए ।

अब मैं गुरु की पूजा करना चाहता हूँ । गुरु की पूजा क्या है ? उसे बताते हुए कहा गया है कि हे कृपासिन्धो, आपने मुझे जो ज्ञान दिया है, उससे मेरी आत्मा तर हो गई है, परम तृप्ति का अनुभव कर रही है । इसलिए वही ज्ञान आपको अर्पण कर रहा हूँ । इसके अतिरिक्त मेरे पास और कुछ नही है । इस प्रकार की शुद्ध भावना के साथ गुरुजनो की सेवा-उपासना को करना ही गुरुभक्ति है ।

धर्म की भक्ति क्या है ? पहिले आप लोग सावचेत होकर यह समझ लें कि धर्म क्या है ? धर्म सारे विश्व का प्रकाशक एक अद्वितीय दीपक है,

अगम अपार सागर के मध्य एक जहाज है, डूबते हुए प्राणियो के लिए एक द्वीप के समान है। धर्म एक भूखे पुरुष को भोजन, प्यासे को पानी, अन्धे को आंख और पगु को पैर के समान है। सारे ससार को परम आनन्द का देने वाला एकमात्र धर्म ही है। इस धर्म के द्वारा ससार के समस्त दुख दूर हो जाते है। आचार्य कहते हैं कि—

नश्यन्ति येन धर्मेण जन्म-मृत्यु-जरादिकाः।
किं न नश्यन्ति तेनैव रोग क्लेश भयादिका।

जिस धर्म के द्वारा अनादि काल से लगे जन्म-जरा-मरणादिक नष्ट हो जाते हैं, उस धर्म के द्वारा क्या शारीरिक रोग, क्लेश और भय आदिक नष्ट नही होगे ? अवश्य ही होंगे।

लोग जिस कुटुम्ब के लिए रात-दिन पाप कार्य करते रहते हैं, जिस धन के उपार्जन करने के लिए एडी-चोटी का पसीना वहाते हुए रात-दिन हाय-हाय करते रहते हैं और जिस शरीर के लालन-पालन और साज-शृगार मे अपने जीवन की इन अमूल्य घडियो को विताते है, ये सव यही रह जाने वाला है। साथ मे कुछ भी जाने वाला नही है। आचार्य कहते हैं कि —

वन्धवो हि श्मसानान्ता गृह एवार्जित धनम्।
भस्मने गात्रमेक त्वां धर्म एव न मुञ्चति।।

हे आत्मन्, जिन वन्धुओ के मोह मे तू पडा हुआ है, वे सव मरघट तक के साथी हैं, तेरे साथ जाने वाले नही हैं। जिस धन को तूने भारी पाप और अन्याय से अर्जित किया है वह मरघट तक भी साथ नही जायगा, घर मे ही पडा रहेगा। तथा जिस शरीर के लालन-पालन मे लग रहा है, वह चिता तक ही साथ देगा। मरघट मे ही जल कर राख हो जायगा। केवल एक धर्म ही ऐसा है जो तेरा साथ नही छोडेगा और पर-भव मे साथ जायगा। इसलिए तू धर्म करने का प्रयत्न कर। इसी भाव को हिन्दी के एक कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है—

धर्म करो रे म्हारा वेलिया, साथे नहिं चाले धनरी थैलिया।

हे मेरे वेलिये,[1] हे मेरे मित्र, तूने लडाई-झगडे तो वहुत कर लिये, उनके करने मे कोई कसर नही रखी। यदि एक भव मे किये हो तो कसर रहे, परन्तु अनन्त-अनन्त काल से तुम ये काम करते हुए आ रहे हो, फिर भी अव तक तुम धापे नहीं हो। रात-दिन उन्ही के पीछे दौड रहे हो और कहते हो कि 'हाय घौडो दिन थोडो'। अरे दौडते-दौडते भी दिन थोडा रह रहा है। भाई, जव दिन थोडा रह गया है, तव फिर जल्दी-जल्दी कदम रखो, तभी पहुचोगे। आज तक कोई भी व्यक्ति धन की थैलियो को साथ में नही ले गया है और आप लोग भी लेकर के नही जाओगे। यदि साथ मे कोई ले जाने वाला हो तो वह वताये ? और भी कहा है—

'चुन-चुन मटिया महल चिनाया, पड़ीं रही रे हवेलिया।
धर्म करो रे म्हारा वेलियां'।

नीव से लेकर ऊपर तक शानदार कोठिया और वगले वनाये, उनमे वढिया फर्नीचर जमाया, कई प्रकार की साज-सज्जा की और विजली के ट्यूव वल्व लगाकर रोशनी भी वहुत की। उन कोठी और वगलो मे जनानखाना गुसलखाना, हरमखाना और गाडीखाना आदि भी वनाये। परन्तु मैं पूछू कि अन्तिम समय पर इन सवको आप साथ ले जायेंगे, या ये सव यही पडे रहेगे ? आपके वडेरे साथ ले गये नही और आप लोग भी साथ ले जायेंगे नही। फिर अपनी आत्मा का जो काम करने का है, उसे क्यो नही कर रहे हो ? कोई कहता है कि महाराज, आप धर्म-धर्म कह रहे हैं। परन्तु वह धर्म क्या वस्तु है ? कोई तो कहता है कि खूव भक्ति करो तो कल्याण हो जायगा कोई कहता है कि खूव पढो तो पार हो जाओगे। कोई कहता है कि खूव क्रिया काण्ड करो और कोई कहता है कि माथा मुडाओ और उल्टे लटको तो मुक्ति मिल जायगी। इस प्रकार सव लोग अपने अपने धर्म की न्यारी-न्यारी ढफली वजाते हुए अलग-अलग राग आलाप रहे हैं और लोगो को अपनी वातो में फसा रहे हैं। परन्तु आप वतायें कि सच क्या है ? हम धर्म किसे समझें ?

---

१ मारवाड की वोली मे वेलिया परममित्र या अजीजदोस्त को कहते हैं।

हाथी और सात अन्धे

भाई, जो ये लोग धर्म की अलग-अलग बात कह रहे हैं, सो ये सभी धर्म के अंग है। परन्तु ये लोग एक-एक अग को ही धर्म मानकर और उसे ही पकड कर बैठ गये हैं और लोगो को चक्कर मे डाल रहे हैं। जैसे एक हाथी किसी गाव मे आया तो लोग उसे देखने के लिए गये। उस गाव मे सात अन्धे पुरुष भी थे। उनके मन मे भी आया कि हम भी हाथी को देख आवें कि हाथी कैसा होता है? उन्होने यह तो नही सोचा कि जब हमारी आखें नही हैं तो हम क्या देखेंगे? परन्तु मन मे देखने की लगन लगी तो वहा गये जहा पर हाथी था और लोगो का मेला लग रहा था। लोगो ने कहा—अरे सूरदासो, तुम लोग यहा भीड-भाड मे क्यो आये हो? वे बोले—हम लोग भी हाथी को देखने के लिए आये हैं। इस प्रकार वे भीड-भाड मे घुलते हुए हाथी के समीप पहुचे। महावत ने भी इन लोगो को आता हुआ देखकर पूछा- अरे बाबा, यहा क्या देखने को आये हो? इन्होंने उसे भी वही उत्तर दिया कि हाथी को देखने के लिए आये हैं। सूरदासो ने उससे पूछा कि भाई आप कौन हैं? उसने कहा कि मैं हाथी को चलाने वाला महावत हू। सूर-दास बोले—हम हाथी को देखना चाहते हैं। महावत ने कहा—यह हाथी खडा है और तुम लोग इसके शरीर पर हाथ फेरकर देख लो। अब वे अन्धे हाथी की ओर बढ़े। उनमे से एक ने उसकी पूछ, एक ने सूड, एक ने दात, एक ने कान, एक ने पेट, एक ने कुम्भस्थल और एक ने हाथी का पैर पकड लिया। इस प्रकार हाथी के विभिन्न अगो पर अपने-अपने हाथ फेर करके वे सब वापिस लौटे। कुछ आगे जाने पर कुछ मसखरो ने पूछा कि आज सातो ही लकडिया कहा गई थी? इन्होने कहा कि हम लोग हाथी को देखने गये थे। उन्होने पूछा कि हाथी देख आये? सूरदास बोले— हा, देखकर ही तो आ रहे हैं। महावत बहुत भला आदमी है, उसने हमे अच्छी रीति से हाथी को देखने दिया। लोगो ने पूछा कि हाथी को कैसे देखा? इन्होने उत्तर दिया कि हाथ फेर-फेर कर देखा। लोगो ने कहा—अच्छा बताओ-हाथी कैसा है? एक ने कहा हाथी तो मकान के थम्भे के समान है। तब दूसरा बोला—अरे

अन्धे, क्यो झूठ बोल रहा है ? पहले खराब करनी की सो तो अब अन्धा बना है और फिर झूठ बोल कर क्या अगले जन्म मे भी अन्धा बनना चाहता है ? हाथी तो मैंने देखा है, वह तो रस्सीके समान है। तब तीसरा अन्धा उसकी बात काटते हुए बोला—अजी, ये दोनो झूठ बोल रहे हैं। हाथी न तो थम्भे के समान है और न रस्सी के समान ही ! किन्तु हाथी तो कोयटे के (कूएँ लाव के समान है। तब चौथा अन्धा बोला—नही, नही, हाथी तो मूसल के समान है। इसे सुनते ही पाचवा बोला—हाथी तो सूपडे के समान है। यह सुनकर छठा बोला—नही जी, हाथी तो घडे के समान है। तब सातवा अन्धा बोला—ये सभी झूठ बोलते हैं। हाथी को मैंने अच्छी तरह देखा है। हाथी तो चबूतरे के समान है। इस प्रकार वे अन्धे आपस मे ही लडने झगडने लगे। और वे मसखरे उनका तमाशा देखने लगे।

अधो का झगडा ही चल रहा कि इतने मे एक समझदार व्यक्ति उधर से निकला। उसने उन्हे लडते-झगडते देखकर पूछा कि अरे सूरदासो, आज तुम लोग आपस मे ही क्यो लड-झगड रहे हो। उनमे से एक बोला—भाई सा०, आखें फूट गई तो फूट गई। परन्तु इन लोगो का हिया ही फूट गया है। इन लोगो की झूठी बात को कैसे मान लेवे ? उसने पूछा कि क्या बात है ? उसने कहा हम लोग हाथी को देखकर लौट रहे हैं। लोगो के पूछने पर कोई उसे मूसल के समान और कोई सूपडे के समान बताता है, कोई किसी प्रकार का और कोई किसी प्रकार का बताता है। अब बताये कि इन लोगो की झूठी बात को कैसे सच मान लिया जाय ! उसकी बात सुनकर उस समझदार आदमी ने कहा—सूरदासजी, तुम सातो ही झूठे भी हो और सच्चे भी हो। तब वे सभी सूरदास बोल उठे—आप बहुत अच्छे न्याय करने वाले मिले—जोकि सभी को एक ही लाठी से हाक रहे हैं। यह नहीं हो सकता कि सभी झूठे हों, सभी सच्चे ? आप हमारा न्याय ठीक रीति से कीजिए। तब उसने कहा—देखो, तुम लोग सच्चे तो इसलिए हो कि जो अग हाथी का तुम्हारे हाथ मे आया, उसके अनुसार तुम उसे बता रहे हो। और झूठे इस-लिए हो कि तुम लोग उस एक-एक अग को हाथी मान रहे हो। तुम

लोग आपस मे तनातनी क्यो करते हो ? मैं कहता हू कि तुम सातो ने ही हाथी देखा है, इसलिए तुम सव सच्चे हो। पर उसके अग न्यारे न्यारे हैं। जो कहता है कि हाथी थम्भे के समान है, उसने तो हाथी के पैर देखे है। जो हाथी को कोयटे के लाव जैसा कहता है उसने हाथी की सूड देखी है। जो हाथी को मूसल जैसा कहा करता है, उसने हाथी के दात देखे है। जो घडे के समान कहता है, उसने हाथी का माथा देखा है। जो सूपडे के समान कहता है, उसने हाथी के कान देखे हैं। जो हाथी को चवूतरे के समान कहता है उसने हाथी का पेट देखा है। और जो रस्सी के समान वताता है उसने उसकी पूछ पकडी है, अव तुम लोग इन सातो ही अगो को इकट्ठा करो तो असली हाथी का पूरा स्वरूप तुम्हारी समझ मे आ जायगा। अन्यथा नहीं आयगा।

भाइयो, जिस प्रकार एक-एक अग को हाथी मानने पर जैसे वे सूरदास आपस मे झगडे, इसलिए वे सव झूठे थे, क्योकि एक अग-रूप हाथी नही है, किन्तु सर्व-अगो के समुदाय रूप ही हाथी है। इसी प्रकार जो लोग केवल अन्य-निरपेक्ष भक्ति, ज्ञान, क्रिया और सेवा-शुश्रूषा को ही धर्म मान रहे हैं, अत वे झूठे हैं, क्योकि एक अग ही धर्म नही है। किन्तु ये चारो ही धर्म के अग हैं, उन चारो का मिलना ही धर्म का पूर्ण स्वरूप है। इसलिए, चार निक्षेप, पाच समवाय और सात नय को इकट्ठे करके सर्व को स्वीकार करने पर और सभी अगो का पालन करने पर ही धर्म सम्भव है, अन्यथा नही।

धर्म का सार समभाव

यदि आप लोग एक ही वात मे धर्म का स्वरूप समझना चाहते हैं तो वह है समभाव। अनुयोग द्वार सूत्र मे कहा है—

जो समोसव्वभूएसु तसेसु थावरे सु य।
तस्स सामाइय होइ इइ केवलि भासियं॥

जो त्रस एव स्थावर आदि सव जीवो के प्रति समभाव रखता है, उसी को सच्ची सामायिक होती है—ऐसा केवली भगवान ने कहा है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य भी कहते है—

चारित्त खलु धम्मो, धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हि समो॥

निश्चय से चारित्र ही सदाचार ही— धर्म है और वह धर्म समभाव रूप कहा गया है। वह समभाव क्या है ? मोह (दर्शन मोह, या मिथ्यात्व भाव) और क्षोभ (चारित्र मोह या कषाय भाव) से रहित आत्मा का जो शुद्ध परिणाम है, उसी का नाम समभाव है और वही निश्चय नय से धर्म कहा गया है।

भाइयो, प्रत्येक वस्तु का अलग-अलग स्वभाव है और वही उसका धर्म है। क्योकि आगम मे 'वत्थुसहावो धम्मो' ऐसा कहा गया है। आत्मा भी एक स्वतन्त्र वस्तु है। उसका स्वभाव समभाव है। उस समभाव मे रहने पर ही उसे अपने धर्म मे अवस्थित समझना चाहिए। जब वह अपने इस समभाव रूप धर्म मे अवस्थित नही है, तब समझना चाहिए कि वह अधर्म रूप मे परिणत हो रही है। इसलिए हमे प्रत्येक वस्तु मे समभाव रखना चाहिए और जिस वस्तु का जैसा स्वभाव है, उसको उसी रूप मे रहने देना चाहिए। हमे जिस वस्तु से जितना और जैसा प्रयोजन अभीष्ट है, उसमे उतना ही समभावपूर्वक ले लेना चाहिए। क्योंकि हमे तो अपने स्वार्थ की सिद्धि से प्रयोजन है। यहा पर आप लोग सोच रहे होगे कि महाराज स्वार्थ-सिद्धि को अपना प्रयोजन कैसे बतला रहे हैं। क्योकि स्वार्थ-सिद्धि तो बुरी बात है। सो भाइयो, यहा पर उस लौकिक स्वार्थ-सिद्धि से प्रयोजन नहीं है, क्योकि वह तो स्व यानी अपनी आत्मा का यथार्थ प्रयोजन नही है, वह तो शरीर और इन्द्रियादिक का प्रयोजन है, ऐसा स्वार्थ तो क्षण-भगुर है और पाप-वर्धक है, क्योकि लौकिक स्वार्थ-साधन से तो तृष्णा बढती है और उसके बढने से मनस्ताप बढता है। जहा पर मन का सन्ताप बढ रहा हो, वहा पर आत्मिक शान्ति कहा सम्भव है। इसलिए सच्चा स्वार्थ तो स्व अर्थात् अपने आत्मा मे समभाव रूप से स्थित होना ही है। उसी को सच्चा स्वार्थ कहते हैं। समन्तभद्राचार्य भगवान सुपार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए कहते हैं कि—

स्वास्थ्य यदात्यन्तिकमेष पुंसां स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा ।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्ति रिती दमस्यद् भगवान् सुपार्श्व ॥

आत्यन्तिक रूप से—चरम सीमा को प्राप्त होकर जो अपना स्वाथ्य है—अपनी आत्मा मे स्थिरता है, वही पुरुषो का सच्चा स्वार्थ है। क्योकि वह अविनश्वर है। यह इन्द्रिय विषयो के भोग ने रूप स्वार्थ सच्चा स्वार्थ नही है। क्योकि विनश्वर-स्वरूप वाला है। इस क्षणभगुर विषय-भोगो के सेवन से तृष्णा वढती है और उसके वढने से सन्ताप की शान्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार भगवान् सुपार्श्वनाथ ने हम सव लोगो को परम शान्ति प्राप्त करने का उपदेश दिया है।

ज्ञान की कुंजी : अनेकांतवाद

जो लोग जैनधर्म के अनेकान्तवाद से परिचित नही है, ये लोग ही एकान्तवाद को पकड कर वस्तु के यथार्थ स्वरूप से अनभिज्ञ रहते हैं। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिए अनेकान्तवाद का आश्रय लेना आवश्यक हैं। अभी सात सूरदासों का एक दृष्टान्त आप के सामने कहा। एक दूसरा दृष्टान्त और भी आपके सामने रखा जाता है, जिससे आप लोग जान सकेंगे कि किसी लौकिक प्रयोजन की सिद्धि भी किसी एक कारण से नही होती है। किन्तु उसकी सिद्धि के लिए भी अनेक कारणो की आवश्यकता है। जैसे कोई कहे कि तवा होवे तो रोटी वने, कोई कहे कि आग होवे तो रोटी वने, कोई कहे कि चूल्हा हो तो रोटी वने, कोई कहे कि पानी होवे तो रोटी वने, कोई कहे कि परात होवे तो रोटी वने और कोई कहे कि आटा होवे तव रोटी वने। भाइयो, किसी एक साधन मात्र से भी रोटी नही वन सकती है और किसी एक साधन के विना भी रोटी नही वन सकती है। रोटी वनने के लिए सभी साधन-अपेक्षित है, सभी के मिलने पर ही रोटी वन सकेगी, अन्यथा नही। इसी प्रकार ज्ञानी जन कहते हैं कि सारी वातो का यथास्थान उपयोग मानकर सव का यथास्थान महत्त्व स्वीकार करो। दुनिया के धर्मों मे और तुम्हारे जैनियो के धर्मों मे यही अन्तर है कि वे लोग एक-एक अग को ही धर्म मान रहे हैं तव जैन धर्म सभी अगो के समुदाय को धर्म कहता

सज्जनो, आप लोग स्वय ही विचार करें कि चार भाई तो दिन में पाँच वार जीमें और चार भाइयो को एक वार भी भर पेट न मिले ? यह कहा का न्याय है ? अब यह अन्धेर नहीं चल सकता है। अब तो भूखे रहने वाले वे भाई विद्रोह या विप्लव करेंगे ही। उसे रोकने का उचित मार्ग यही है कि भाइयो, आप लोग भी हमारे पास आ जाओ। अब हम पाच वार न जीमेंगे, किन्तु अपन सब मिलकर चार वार ही जीमेंगे। अब तुम्हें भूखे रहने की आवश्यकता नही है। ऐसा करने से ही सबको शान्ति मिल सकेगी। जैन धर्म मे एकासन, आयविल, उपवास, वेला, तेला आदि करने का क्या कारण है ? वास्तव मे तपस्या करने का प्रथम यही प्रयोजन रहा है कि हम अपनी जिह्वा पर नियन्त्रण रखेंगे। मन और इन्द्रियो के विकारो को कम करने के लिए भोजन पर रोक लगा दी। दूसरा कारण यह है कि आज हमारे उपवास करने से जो भोजन वचेगा, वह दूसरे के काम आ जायगा। जो भूखे हैं, उन्हें खाने को मिल जायगा। इससे देश मे विप्लव भी नही होगा और आतक भी नही फैलेगा। महीने मे दो चार उपवास करने वाले जैनियो मे वहुत मिलेंगे। जितनी अधिक तपस्या की जाती है, उससे हमारी आत्मा का तो कल्याण होता ही है और दुखित-बुभुक्षित मनुष्यो को सहायता भी प्राप्त होती है। इस प्रकार देव, गुरु और धर्म की भक्ति करें।

सच्ची भक्ति यही है कि जैसा उन्होंने सुख-प्राप्ति का मार्ग वतलाया है, उसके ऊपर चलें। इसके करने से हमारे ज्ञान के ऊपर जो आवरण चढा हुआ है वह दूर होगा।

ज्ञानी का गुणोत्कर्ष

ज्ञानावरणीय कर्म को दूर करने का दूसरा उपाय वताया गया है कि ज्ञानी पुरुषो का गुण-गान करो। उनकी विनय करो और उनकी स्तुति करो कि धन्य है आपको ! आपने अपने कामादि विकारो को जीत करके कैसा निर्मल और अगाध ज्ञान प्राप्त किया है ? आपने कैसी अनुपम भक्ति और सेवा-सुश्रूषा अपने गुरु की की है। आपको लाख-लाख धन्यवाद है। ज्ञानी पुरुषो के समान ज्ञान की भी भक्ति करो, मति, श्रुत, अवधि, मन पर्याय

और केवल ज्ञान की स्तवना करो, गुण-गान करो और मन मे यह विचार करते रहो कि—

ज्ञान समान न आन जगत मे सुख को कारण,
यह परमामृत जन्म-जरा मृति रोग निवारण।

ससार मे ज्ञान के समान और कोई सुख का कारण नही है। यह ज्ञान जन्म, जरा और मरण रूपी अनादि काल के रोगो का निवारण करने के लिए परम अमृत के समान है।

धन समाज गज वाजि-राज तो काज न आवे,
ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावे।
तास ज्ञान को कारण स्व-पर-विवेक बखानो,
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनो ॥

हे भाई, यह धन, यह कुटुम्व, परिवार का समुदाय, ये हाथी घोडे और राज-पाट, यह सव तेरे कुछ भी आत्म-कार्य मे सहायक होने वाले नही है। ज्ञान यह आत्मा का स्वरूप है। यदि इसकी एक वार भी प्राप्ति हो जायगी तो फिर यह आत्मा के साथ अचल हो करके रहेगा, कभी भी दूर नही होगा पं०.दौलतराम जी इस ज्ञान की महिमा का गान करते हुए आगे और भी कहते है—

जे पूरब शिव गये, जाहि, अब आगे जैहै,
सो सब महिमा ज्ञान तनी मुनिनाथ कहै है।
विषय-चाह दव-दाह जगत-जन-अरणि दझावै
तासु उपाय न आन, ज्ञान घन-घान बुझावैं ॥

आज तक जितने भी जीव मोक्ष को गये हैं, आज जा रहे हैं और आगे जावेंगे, यह सव ज्ञान की ही महिमा है, ऐसा मुनियो के नाथ श्रीजिनेन्द्र देव ने कहा है। यह ज्ञान रूपी मेघ-धारा ही विषयो की चाह रूपी दावानल मे जलते हुए ससारी प्राणियो को जलने से वचाने वाली है, उस विषय—चाह दावानल को ज्ञान रूपी मेघ-धारा के सिवाय और कोई नही वुझा सकता है। इसलिए हे भव्य जीवो, हजारो काम छोड करके और करोडो उपाय करके इस ज्ञान को अपने हृदय मे लाओ। तभी तुम्हारा ससार से उद्धार होगा।

है। वस्तु अनेक धर्मात्मक है, उसे अनेक दृष्टियो से, उनके अपेक्षाओ से देखने पर ही यथार्थतत्त्व हस्तगत हो सकता है, एक दृष्टि से देखने पर नही। इसी का नाम अनेकान्त दृष्टि हैं। इस अनेकान्त दृष्टि से वस्तु स्वरूप को समझ करके भिन्न-भिन्न नयो की अपेक्षा वस्तु स्वरूप के कथन करने का नाम ही स्याद्वाद है। जैनधर्म की महत्ता इसी स्याद्वाद से है। एक ही अपेक्षा से वस्तु स्वरूप को पकडने पर जैन नही कहला सकता, क्योंकि अनेकान्त दृष्टि से ही धर्म है।

तत्त्व का स्वरूप

आज पर्युषण पर्व का पहिला दिन है। आज के दिन ज्ञानावरणीय कर्म को तोडना है, उसे कमजोर करना है और उसके क्षयोपशम का प्रयत्न करके अपनी आत्मा को निर्मल ज्ञानवान् बनाना है। इसके लिए पहिला कारण बताया कि देव, गुरु और धर्म की सेवा-भक्ति करो। देव कौन हैं? जो वीत-राग हैं, जिन्होने राग द्वेष, मोह आदि समस्त दोषो को जीत लिया है, सर्वज्ञ हैं अर्थात् ससार के त्रैलोक्य और त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्यो के गुण-पर्यायो को हस्तामलकवत् जान रहे है और ससार के प्राणियो को हित के उपदेष्टा—शास्ता हैं, ऐसे जिनेन्द्र अरहन्त-सिद्ध भगवान् ही सच्चे देव हैं। गुरु वे हैं जिन्होने कनक-कामिनी का त्याग कर दिया है, विषयो की आशा से रहित हैं, आरम्भ-परिग्रह से रहित हैं और ज्ञान-ध्यान एव तप मे लगे रहते हैं, वे ही सच्चे गुरु हैं। जिन्होंने ससार की समस्त माया को पीछे कर दिया और मोक्ष को आगे रखकर उसे पाने का अहर्निश प्रयास करते रहते हैं। पाच समिति, तीन गुप्ति और पच महाव्रत रूप साधु के आचार में जिन्होने अपने शरीर को केशरिया किया हुआ है। यदि मरण भी आ जाय तो भी जिन्हें उसकी कोई परवाह नही है परन्तु व्रतो के परिपालन मे दृढ हैं। ऐसे साधु-सन्त पुरुषो को ही गुरु माना गया है। तथा धर्म किस मे है? दया मे धर्म है। सारे चराचर जीवो पर समभाव रखे और यह समझे कि जैसी हमारी आत्मा है, वैसी ही दूसरो की भी आत्मा है। यदि हमको समय पर भोजन पानी नही मिले तो हमे दुःख होता है, मकान—बर्तन, वस्त्र आदि नही मिलें, तो

हमे दु ख होता है, वैसे ही दूसरे जीवो को भी दु ख होता है । हमको समय पर आवश्यक वस्तुओ के मिलने से जैसे मन मे सुख होता है, इसी प्रकार ससार के अन्य प्राणियो की आवश्यकता पूरी होने पर उन्हें भी सुख होता है । इस लिए हमे किसी को दु ख नही पहुँचाना चाहिए । किन्तु सभी को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए । ऐसा विचार करके भाइयो, अपनी ममता उतारो और जिनको जिस वस्तु की आवश्यकता है, उसे वह वस्तु पहुचाने का प्रयत्न करो । यदि सव लोग ऐसा सोचकर सव को सुखी वनाने का प्रयत्न करने लगे तो आज जो कम्युनिस्ट और नक्सलवादियो का वातावरण वन रहा है, उसके वनने का अवसर ही नही आयगा । आज आप लोगो के सामने कैसी कैमी वातें आ रही हैं कि जिनको आज तक न कभी सुना और न कही पढा भी है । आज का वातावरण तो यह है कि जिसके पास जमीन अधिक है, उससे छीन लो और जिसके पास नही है, उसे दे दो । यह अवसर क्यो आया ? इसीलिए आया कि एक के पास हजारो वीघा भूमि है और एक के पास एक हाथ भी जमीन नही है और वे खेती वाडी के विना भूखे मर रहे हैं । यदि तुम ही अपने पास सैकडो वीघा जमीन रखना चाहोगे तो यह वात अव चल नही सकती है । आज का जमाना कहता है कि सवके पास उसके निर्वाह के योग्य भूमि होना चाहिए । आज भूमि-हीन लोगो को भूमि देने के लिए आन्दोलन हो रहा है कि भूमिवालो से भूमि छीनो और भूमि-हीनो को दो । जव ऐसी अवस्था है, तव क्या वे थोडे समय के वाद मकान देने के लिए नही कहेगे क्या ? आज जो आधी, अन्धड या प्रवाह चल रहा है, वह किसी के रोके रुकेगा नही । अव आप चाहे हमे भला कहें या वुरा ? मगर जो प्रवाह आ रहा है, उसे रोकने की शक्ति किसी मे नही है । ससार मे सदा से ही यह होता आया है कि अन्याय के युग में अन्याय का प्रवाह आया और न्याय के युग मे न्याय का प्रवाह आया । धर्म के युग मे धर्म का प्रवाह वहा और अधर्म के युग मे अधर्म का दौरदौरा रहा । इसीलिए भगवान् ने पहिले से ही हमे सचेत करते हुए कहा कि भाई, अपनी तृष्णा का नियमन करो, अपनी आवश्यकता से अधिक का सग्रह मत करो तो शान्ति रहेगी और कभी दुखी नही हो सकोगे ।

शास्त्र विनय क्या है?

ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम का तीसरा कारण है कि ज्ञान के जो उपकरण शास्त्र-पुस्तक आदि हैं, उनका विनय करो, जिनको इनकी आवश्यकता हो, उन्हें शास्त्र-पुस्तक आदि प्रदान करो, पाठशालाए और विद्यालय खुलवाओ, जिससे ज्ञानार्थी जीव उनमे जाकर ज्ञान का अभ्यास कर सकें। ज्ञान के साधनो की आशातना मत करो। पोथी—शास्त्र या पुस्तको को मत फाडो, उन्हें यतना से रखो। यदि हमारे पूर्वज इन पोथी-शास्त्रो की इस प्रकार से आशातना करते होते, तो क्या आज सैकडो वर्ष पुरानी प्रतिया मिल सकती थी? नही मिल सकती थी। उन्होंने बडी सावधानी से उन लिखित प्रतियो को सभाल कर रखा तो आज हमारे ये ज्ञान-भण्डार विद्यमान हैं। आज के लोग तो यह विचार करते हैं कि इन पुराने पत्रो मे क्या है? इनको रद्दी मे बेच दो। यह तो ओटाले के वास्ते अटाला है। परन्तु जो इनके महत्त्व को समझते हैं, वे इनकी कद्र करते है। इस ज्ञान के बिना क्या जाति, देश, समाज और धर्म टिक सकता है? कदापि नही।

किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

> **अन्धकार है वहां जहां आदित्य नहीं है।**
> **मुर्दा है वह कौम जहां साहित्य नहीं है॥**

भाई, जहां आदित्य (सूर्य) नहीं है तो वहां अन्धकार है। जिस जाति का ज्ञान—साहित्य नही है, वह जाति तो मुर्दा ही है। इसलिए हमे ज्ञानी पुरुषो की, ज्ञान के उपकरणो की, ज्ञान के साधनो की भक्ति करना चाहिए। पोथी पत्रो को खराब नही होने देवे, उनकी पूरी सभाल रखें। ससार का अन्य सर्व वस्तुओ का मिलना सुलभ है, परन्तु ज्ञान का भण्डार मिलना बहुत कठिन है। कहा है—

> **करे है गावड दोवड़ी, कर-कर नीचा नैन।**
> **इण कष्टे पोथी लिखी, जतना रखिए सैन॥**

जिस समय लेखक लोग इन पोथियो को लिखते थे तब अपनी गर्दनो को नीचे किये रहते थे, नेत्र पत्रो पर जमाये रखते थे और एकाग्र चित्त होकर

लिखने का कठिन श्रम उठाते थे, तब कही बडे कष्टो से ये लिखी जाती थी। उन्होंने तुम्हारे फाडने या खराब करने के लिए नही लिखी। किंतु उन लोगों के लिए लिखी जो कि ज्ञान के जिज्ञासु थे, पिपासु थी और विद्यार्थी थे। पुरानी पोथियो के अन्त मे लेखक गण अपनी करुण कष्ट कथा को बडे ही विनम्र शब्दो मे लिखते आये हैं कि—

तैलाद् रक्षेद् जलाद् रक्षेद् रक्षेच्छिथिलबन्धनात्।
मूर्खहस्ते न दातव्यमेव वदति पुस्तिका॥

लेखकगण कहते हैं कि भाई इस पुस्तक को तेल से बचाना, पानी से बचाना और ढीले बधन से बचाना तथा मूर्ख के हाथ मे भी न देना, ऐसा यह पोथी कह रही है।

पुस्तक देने का काम पडे तो ज्ञानी और चतुर पुरुष को ही देना। परन्तु मूर्ख के हाथ मे मत देना। जो इन पोथियो का महत्त्व जानते हैं, उन्हे दूसरो के द्वारा इनमे की गई गडबडी सहन नही होती है।

मैं एक बार पाली गया। वहाँ पर फकीरचन्दजी अच्छे होशियार वैद्य थे। उन्होने अनेक हस्तलिखित धर्मग्रन्थो का सग्रह किया था। उन्होने एक सूत्र की टीका मुझे दिखाई और कहा कि यह प्राचीन है। मैंने उसे लिया और उसके एक पत्र को जरा असावधानी से उठाया—जिससे कि उसके टूटने की सभावना थी—तो उन्होंने देखते ही कहा—आप बडे कहलाते हैं, परन्तु आपको पुस्तक रखने का ध्यान नही है। मैंने देखा कि वास्तव मे उसका एक पन्ना मेरी असावधानी से फट गया था। वे बोले—क्या यो ही पन्ने फाडते चले जायेंगे ? सुनकर मुझे कुछ धक्का सा लगा। यद्यपि उनके वचन कुछ कठोर थे, परन्तु उनके कहने मे हित-बुद्धि थी। फिर कहा —कि पन्ना ऐसे नही, ऐसे रखना। भाई, यह पाटी क्यो रखते हैं ? इसीलिए कि पोथी के पन्ने खराब नही हो जायें। उन्होने कुछ कडवे वचनो मे मुझे कहा था, परन्तु मुझे अभी तक याद है कि मैंने गल्ती की थी, अत उन्होंने उपालम्भ दिया। इसलिए पुरानी पोथी-पत्रो की अवहेलना न करके बहुत सँभाल के रखना चाहिए। यह भी ज्ञान का विनय है। जो मनुष्य इन पाच कारणो से ज्ञान और ज्ञान के उप-

करणो की सावधानीपूर्वक रक्षा करते हैं, स्वयं उन्हें पढते हैं और दूसरो को पढाते है, उपदेश दे कर दूसरो को सम्वोधते हैं और उन्हें सन्मार्ग का परिज्ञान कराके उस पर चलाने का प्रयत्न करते हैं, उनके वँधे हुए ज्ञानावरणीय कर्म के वन्धन ढीले पडते हैं और ज्ञान का क्षयोपशम प्रकट होता है। जो लोग एक दिन मे पचास, सौ और दोसौ श्लोक भी याद कर लेते हैं, उनके ज्ञान का क्षयोपशम वहुत अधिक जानना चाहिए। यदि उनके ऐसा क्षयोपशम न हो, ज्ञान का अन्तराय टूटा हुआ न हो तो इतना याद नही रह सकता है। आज आपको कोई वात वताई और आपने तोता के समान 'वोल सुआ, राम-राम' कह दिया, पर राम के भाव की भावना जैसे तोते को नही है, वैसे ही आपको भी नही है तो ऐसे तोता-रटन्त ज्ञान से कोई लाभ नही है। परन्तु जिनके ज्ञान की अन्तराय टूटी हुई है, वे एक पद या वाक्य को सुनकर ही उसमे से अनेक ऐसी रहस्य भरी वातो को निकाल लेते हैं कि जिन्हें सुनकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं। और कहने लगते हैं कि न जाने इसके दिमाग मे कितनी वातें भरी हुई हैं। यह सव ज्ञान के क्षयोपशम का ही चमत्कार है।

एकपद : एक मास में

कोटा-सम्प्रदाय के पूज्य दौलतराम जी स्वामी अनेक शिष्यो के गुरु थे। उन्होंने सुना कि दिल्ली मे दलपतरायजी चौरडिया शास्त्रो के वडे धुरन्धर जानकार श्रावक हैं। अत उन्होंने सोचा कि दिल्ली जाकर दलपतरायजी श्रावक से शास्त्रो की वाचना लेनी चाहिए। कहाँ वे साधु और कहाँ वे श्रावक! पर ज्ञान-प्राप्ति की भावना से प्रेरित होकर वे कोटा से विहार करके दिल्ली पधारे। उनके दिल्ली पहुँचते ही दलपतराय जी उनकी सेवा मे उपस्थित हुए। भाई, आज तो किसी को थोडा सा ज्ञान हो जाय, तो कहता है कि मैं वडा पडित हो गया। परन्तु पुराने समय मे पुरुषो को ज्यो ज्यो अधिक ज्ञान की प्राप्ति होती थी, त्यो त्यो वे विनयवान और भक्तिमान होते जाते थे। उन्हे ज्ञान का अहकार नहीं आता था। दिल्ली मे जो भी सन्त-सती गण पधारते थे तो वे उनका व्याख्यान सुनते और सोचते कि ये हमारे पूज्य

हैं तो कोई न कोई नई वात अवश्य सुनने को मिलेगी। वे पूज्य दौलतरामजी स्वामी के पास गये, दर्शन-वन्दन किया। दोपहर को वे फिर स्वामीजी के पास गये तो स्वामीजी ने कहा—दलपतरायजी, मैं कोटा से यहाँ इस भावना से आया हू कि भगवतीसूत्र की आपसे वाचना लूँगा। उन्होंने वडे विनम्र शब्दो मे कहा- स्वामिन्, सेवक आपकी सेवा मे उपस्थित है। मेरे पास जो कुछ है, वह सव आप गुरुजनो के प्रसाद से ही प्राप्त हुआ है। यदि यह आपके उपयोग मे आता है तो यह मेरा सौभाग्य है। पर महाराज, यह तभी सभव है, जव आपका यही पर चौमासा हो। क्योंकि ,दस-पाँच दिन में शास्त्र की वाचना का आनन्द नही मिलेगा। उनके कहने पर पूज्यश्री ने चौमासा वही कर लिया। अव पूज्यजी ने भगवतीसूत्र का पाना उठाया। तव दलपतरायजी ने पूछा—स्वामिन्, ये किस शास्त्र का पाना है। उन्होने कहा—भगवतीसूत्र का। दलपतरायजी वोले—पहिले आप दशवैकालिक लेवें और भगवतीसूत्र रख देवें। स्वामीजी वोले—इसकी तो वाचना हमारे पोते-पर-पोतेओं को देदी है, अव उसकी वाचना क्या लेना है ? मैं तो भगवतीसूत्र की वाचना लेने को आया हू। दलपतरायजी ने कहा—मेरा निवेदन है कि पहिले इसकी वाचना तो लीजिए। पीछे आपकी समझ मे आवे तो लीजिए, अन्यथा फिर सोचा जायगा। पूज्यजी को भी जँच गई और दशवैकालिक की वाचना लेनी प्रारम्भ कर दी। पहिली गाथा आई—**'धम्मो मगल-मुक्किट्ठ'**। इस एक गाथा के ऊपर सारा सावन मास समाप्त हो गया। आखिर पूज्यजी को कहना पडा कि ओ हो श्रावकजी, आपका इतना गहन ज्ञान है ? उन्होंने कहा ज्ञानियो का ज्ञान तो अथाह है, उनके सामने मेरा ज्ञान क्या है ? पूज्यजी ने कहा—अभी तो पहिली गाथा मे ही एक महीना पूरा हो गया। उन्होने कहा—स्वामिन्, आप कहे वैसे गाडी चलाऊँ ? पूज्यजी ने कहा—दशवैकालिक तो पूरा होना ही चाहिए। चार मास मे छह जीवणीकाय पूरी हुई और उनको वत्तीस सूत्रो की जानकारी करा दी। अव कोई कहे कि छह जीवणी मे सव कह दिया तो पीछे क्या रहा ? आरे के पाचवे उतरते समय मे एक छह जीवणी (अध्ययन) रहेगी। यदि वह नही रहे, तो साधु-साध्वी अपना साधुपना

कैसे पाल सकेंगे ? भाई, दलपतरायजी जैसे वाचना देने वाले और पूज्यजी जैसे वाचना झेलने वाले थे तो इतना ज्ञान मिला। जब ज्ञान का ऐसा विशिष्ट क्षयोपशम था, तभी ऐसा ज्ञान प्राप्त हुआ। यद्यपि पढते सभी हैं, तथापि ज्ञान का विकास तो क्षयोपशम के अनुसार ही होता है।

क्षयोपशम का चमत्कार

वि० स० १९८४ की साल मे आपके यहाँ वाडीलाल भाई आये थे, जब कि वे वीकानेर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स-अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप मे जा रहे थे। यहाँ की स्थानकवासी समाज ने उनका वडा भारी सन्मान किया। उस समय वाडीलाल भाई ने एक गाथा पर भाषण दिया।

न सा जाई न सा जोणी, न तं ठाण न त कुल।
न जाया न मुआ जत्थ, सव्वे जीवा अणतसो ॥

अर्थात् ऐसी कोई जाति नही, कोई योनि नही, कोई ऐसा स्थान और कुल भी नही, जिसमे जाकर सभी जीव अनन्तवार न जन्मे हो और अनन्त-वार न मरे हो।

इस गाथा के ऊपर वे लगातार छत्तीस घटे तक एक आसन से वोलते रहे। हाँ, वीच मे कई वार चाय की प्याली अवश्य ली थी। वे इतने प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होने गुजराती भाषा मे जो अनेक लेख लिखे हैं, उन्हे जब वडे वडे तत्त्ववेत्ता दार्शनिक विद्वान् पढते हैं, तो कहते है कि वाह रे वाडी लाल, तेरे भीतर कितना अगाध ज्ञान भरा था। यह ज्ञान की विशालता कहाँ से आई ? इसका उत्तर एक मात्र यही है कि उसके ज्ञानावरणीय कर्म का ऐसा विशिष्ट क्षयोपशम हुआ, तब उनमे यह अगाध विद्वत्ता आई। यदि ज्ञान का क्षयोपशम न हो तो दो चार वाते वताने पर भी उनका स्मरण नही रहता है। इसका कारण यही है कि प्रथम तो ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नही है। दूसरे ससार की दूसरी वातो मे मन लगा हुआ है। इसी से पढी वात भी याद नहीं रहती हैं। यदि वाहरी वातो मे मन न जाय और ज्ञान का क्षयोप-शम प्रकट होवे तो आत्म-कल्याण की वातो मे आनन्द आयेगा और वे सदा याद रहेगी।

आज मैंने आप लोगो के समक्ष पर्युषण पर्व के प्रथम दिवस के उपलक्ष मे ज्ञान के विषय पर बात कही है। आप मे और हममे ज्ञान आयेगा, तो चाँदनी हो जायेगी और प्रत्येक वस्तु स्पष्ट रूप से दिखने लग जायेगी।

अब मुझे आपके लिए यह बताना है कि अभी आपके सामने मुनिजी ने अतगडसूत्र मे बताया कि द्वारका नामकी नगरी थी, वहाँ पर श्रीकृष्ण का राज्य था। वहाँ पर भगवान् नेमिनाथ पधारे, रानियो ने, राजकुमारो ने और सेठ-साहूकार आदि ने उपदेश सुना और ससार से उद्विग्न हो साधुपना लेकर कितने ही मोक्ष पधारे और कितने ही स्वर्ग गये। परन्तु आपके मन मे यह शका नही आई कि यादव लोग द्वारका मे कहाँ से आये थे ? जब कि यादवो का राज्य शौरीपुर और मथुरा मे था ? वे लोग क्यो शौरीपुर और मथुरा छोडकर द्वारका मे गये और किस प्रकार वहाँ पर बसे ? इस बात का थोडे समय मे दिग्दर्शन कैसे कराया जा सकता है ? यह सब तो समय मिलने पर ही विस्तृत रूप से कभी बताया जायगा कि किस समय और क्यो यादव लोग अपनी वश-परम्परागत राजधानी को और अपनी मातृभूमि को छोडकर द्वारका में गये।

आज तो आप लोग इस बात पर ही विचार करे और अपने जीवन का सिंहावलोकन करें कि हमारा ज्ञान उत्तरोत्तर बढ रहा है, या घट रहा है ? यदि बढ रहा है तो सत्य ज्ञान की दिशा मे बढ रहा है, अथवा मिथ्या ज्ञान की दिशा मे बढ रहा है, यदि मिथ्या ज्ञान की दिशा मे बढ रहा है, तब तो हमे ससार मे और भी रुलना पडेगा और जन्म-मरण के दु खो को भोगना पडेगा। आज यद्यपि मनुष्यो का ज्ञान बढ रहा है, तथापि वह आध्यात्मिकता की ओर न बढ कर भौतिकता की ही ओर बढ रहा है, जो कि अनन्त दु खो का कारण है। अत हमे आत्मलक्षी होकर सत्य ज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए, तभी ससार से हमारा बेडा पार होगा।

● ●

२ | सम्यक् श्रद्धा ही सार है

जिनशासन के प्रेमियो, आज पर्युपण पर्व का दूसरा दिन है। मैं आपसे कह रहा था कि आत्मा स्वतत्र है। परन्तु कर्मों के द्वारा परतत्र बनी हुई है। हमने इन कर्मों को किस प्रकार बाँधे और किस प्रकार इन्हें तोडना चाहिए, यह बात हमे एक-एक दिन बतलाना है। कल आपके सामने ज्ञानावरणीय कर्म के सम्बन्ध मे विस्तार से बतलाया गया था।

दर्शनावरण का अर्थ

आज दूसरे दर्शनावरणीय कर्म के सम्बन्ध मे आप से कुछ बातें करनी हैं। दर्शन नाम देखने का है। अब देखना क्या ? आप सभी ने बाग-बगीचे भी देखे हैं, बडे-बडे महल, किले, मकान बगले भी देखे हैं, पानी के सरोवर, भाखडा-नागल जैसे बाध, नदी-नाले और झरने भी देखे हैं। इस प्रकार मनुष्य-निर्मित और प्राकृतिक वस्तुओ को देखने मे आपने कोई कसर नहीं रखी है। क्या इनके देखने को ही हम 'दर्शन' कह दें। परन्तु हमारा प्रयोजन उनके देखने से नही है। हमारा प्रयोजन तो अपने आत्मस्वरूप से है। हमारा जो निज का रूप है, जिसे देखने की हमे बडी आकाक्षा लगी हुई है, उसको देखने का नाम ही वास्तव मे दर्शन है। उस दर्शन से ही हमारा

प्रयोजन है। दर्शनावरणीय कर्म उसे आवृत्त करता है अर्थात् अपनी आत्मा के दर्शन नही करने देता है।

जैसे आप को किसी राजा, महाराजा, राष्ट्रपति, प्रधानमत्री, मुख्यमत्री, राज्य के वडे अधिकारी या वडे श्रीमन्त सेठिया से मिलना आवश्यक हैं, आप वहा जाते हैं। परन्तु उसके महल, मकान या वगला के वाहिर सन्तरी या पहरेदार वन्दूक लिये खडा है। वह आपको ऐसे ही सीधे जाकर दर्शन नही करने देता है और कहता है कि यही पर रुक जाओ। आप अन्दर नही जा सकते हैं। मैं पहिले जाकर सूचना दे दूँ और महाराजा की या अपने अधिकारी की आज्ञा लाकर दूँ, तव आप—भीतर जासकते हैं। यद्यपि आप को उनसे मिलना वहुत आवश्यक है, परन्तु उसने वीच मे आप के मिलने मे व्यवधान खडा कर दिया, अडगा डाल दिया। अत मिलने मे वाधा आगई और जव तक यह वाधा दूर नही होगी, तव तक आप जिससे मिलना चाहते हैं, उसके दर्शन भी नही कर सकेंगे। इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म हमारे-आपके पीछे ऐसा लगा हुआ है कि वह आत्मा के दर्शन नही करने देता है। इस दर्शनावरणीय कर्म का बधन कव और कैसे हुआ है, इस वात पर विचार किया जाता है।

दर्शनावरण के नौ प्रकार

दर्शनावरणीय कर्म का वन्धन नौ प्रकार का होता है—

निद्दा तहेव पयला निद्दानिद्दा पयल-पयला य।
तत्तो य थीणगिद्धी उ, पंचमा होइ नायव्वा।
चक्खु मचक्खु ओहिस्स दसणे केवले य आवरणे।
एवं तु नव विगप्प नायव्व दसणावरण।

—**उत्तराध्ययन** ३३। ५-६

निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, यह पाच प्रकार की निद्रा, तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, और केवल दर्शनावरणीय। इनमे पहिली है निद्रा। आप पूछेंगे कि महाराज, नीद तो एक ही है, फिर आपने उसके पाच भेद कैसे कहे ? भाई, आपके

लिए एक भले हो, परन्तु जैनागमो मे पाच प्रकार की निद्रा वताई गई है। उनका स्वभाव भी भिन्न भिन्न है। वैद्यकग्रथ चरक सूत्र २१।५८ मे भी छह प्रकार की नीद वताई है।[1] आज के मनोविज्ञानवेत्ता भी इस वात को स्वीकार करने लगे हैं कि नीद की जातियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। जो नीद सुखपूर्वक ली जाती है और सुख पूर्वक ही खुल जाती है, ऐसी आराम की नीद को निद्रा कहते हैं। अर्थात् जो नींद विस्तर पर लेटते ही आजाय और जिस समय उठना चाहें, उस समय अपने आप खुल जाय, अथवा किसी की जरासी भी आहट या आवाज के पाते ही खुल जाय, उसी नीद को आगम मे निद्रा कहा है। यथा—**सुह पडिवोहा णिद्दा**।

—निद्रा वाला पुरुप सुख से जगाया जा सकता है या सुख से जग जाता है।

दूसरी नीद का नाम है—निद्रा-निद्रा। आप विस्तर पर जाकर सोयें। परन्तु घटे-आध घटे तो नीद आती ही नही। कई वार करवट वदले और पैर पटके, तव कही वडी कठिनाई से नीद आई। फिर ऐसी गहरी नीद आई कि जागने का समय हो जाने पर भी अपने आप नही खुलेगी। जव कोई घर वाला आकर आवाज और पानी के छीटे मुख पर डाले, तव कही उठेंगे। दु ख से नीद आना और दु ख से कठिनाई से जागना, ऐसी नीद को ही निद्रा-निद्रा कहते हैं। शास्त्र मे कहा गया है कि **'णिद्दा-णिद्दाय दुक्खपडिवोहा'**। निद्रा-निद्रा वाले पुरुप को वडी कठिनाई से ही जगाया जा सकता है। इसका वर्णन करते हुए शास्त्रकारो ने कहा कि—

'णिद्दाणिद्दुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घाडिय सक्को'।

अर्थात् निद्रा-निद्रा कर्म के उदय से इतनी गहरी नीद आती है कि दूसरे के द्वारा उठाये जाने पर भी दृष्टि को उघाड नही सकता है—प्रयत्न करने पर ही वडी कठिनता मे आखो को खोल पाता है।

तीसरी नींद का नाम है प्रचला। इसका स्वरूप इस प्रकार है—

पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तो वि।
ईस ईसं जाणदि मुहुं मुहुं सोवदे मद॥

---

१ १. तमोभवा—मरण के समय आनेवाली, २ कफवृद्धि से आनेवाली, ३ शरीर श्रम से, ४ विना कारण से, ५ रोग के कारण से तथा ६ रात्रि मे आनेवाली।

प्रचला कर्म के उदय से जीव कुछ-कुछ आखो को उघाड कर सोता है और सोते हुए भी थोडा-थोडा सा जानता रहता है। वार-वार मन्द नीद मे सोता है। जैसे कुत्ते की नीद होती है, वह सोते हुए भी कुछ-कुछ जागता रहता है, ऐसी वहुत हलकी नीद को प्रचला कहते हैं। यह पाचो प्रकार की निद्राओ मे सवसे उत्तम कही गई है।

चौथी जाति की नीद का नाम है प्रचला-प्रचला। इसका स्वरूप शास्त्रो मे इस प्रकार का कहा है—

पयला पयलुदयेण य वहेदि लाला चलति अगाइं।
णिद्दुदये गच्छतो ठाइ पुणो वइसइ पड़ेइ ॥

प्रचला-प्रचला कर्म के उदय से सोते मे या वैठे-वैठे ऊघने पर मुख से लार वहने लगती है, हाथ-पैर चलते रहते हैं। इस निद्रा वाला पुरुप चलते-चलते, खडे-खडे या वैठे-वैठे ही नीद लेने लगता है। आपने भी कितने ही लोगो को हाथी, घोडे, ऊट आदि पर नीद मे ऊघते हुए देखा होगा। हमने भी ऐसे लोगो को देखा है और यहा तक देखा है कि दोनो हाथो मे घी की चरी लेकर आदमी चल रहा है और नीद भी ले रहा है। इस नीद वाला पुरुप गमन करते हुए भी कभी खडा हो जाता है, कही पर वैठ भी जाता है और कभी कही पर गिर भी पडता है। यह नीद खतरनाक है और मृत्यु तक को निमत्रण देने वाली है।

पाचवी जाति की नीद का नाम है स्त्यानगृद्धि। यह नीद इतनी गहरी आती है कि नीद मे वडे से वडा भयकर काम कर डालने पर भी जागने पर उसे उसका कुछ भी भान नही रहता है। अभी कुछ दिन पहिले 'नवनीत' नामक मासिक पत्र मे नीद के विपय मे एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमे वताया गया था कि एक शिकारी अपने दल-वल के साथ जगल मे शिकार खेलने को गया। शिकार हाथ न लगने पर उसने रात मे जगल मे ही डेरा डाल दिया। वह अपने साथियो के साथ तम्वू के भीतर सो गया और घोडे को तम्वू के वाहिर वाघ दिया। सोते मे उसने स्वप्न देखा कि शेर वाहिर आया हुआ है। वह सोती अवस्था मे ही उठा और अपनी वन्दूक लेकर तम्वू

से बाहिर निकला और अपने घोड़े को ही शेर समझ कर उसे गोली मार कर वापिस जाकर सो गया। प्रातःकाल जब उठा तो घोड़े को मरा पाया। फिर भी उसे अपने द्वारा मारे जाने की याद नही आई। साथ के लोगों ने कहा—हजूर, आप ही रात मे उठे थे और बन्दूक लेकर बाहिर गये थे और गोली दागी थी। उनके कहने पर भी उसे विश्वास नहीं हुआ। तब उन लोगो ने बन्दूक उठाकर उसे खाली बतलाया। भाई, ऐसी निद्रा के विषय मे ही शास्त्रकारो ने कहा है कि—

दिण चिंतियत्थ करणी थीणद्धी अद्धचक्कि अद्धबला।

जो दिन मे चिन्तवन किये हुए कार्य को रात्रि मे सोते हुए कर डाले, ऐसी निद्रा को स्त्यानगृद्धि निद्रा कहते हैं। इस निद्रा के तीव्र उदय होने पर मनुष्य कुम्भकर्णी निद्रा लेता है अर्थात् लगातार छह मास तक सोता रहता है। ऐसी निद्रा के उदय मे कभी-कभी किसी पुरुष को आधे चक्रवर्ती अर्थात् त्रिखण्डेश्वर नारायण जैसा भी बल प्राप्त हो जाता है।

ये पाचो प्रकार की निद्राऍ जीव के दर्शन गुण का घात करती हैं। इसलिए इनकी गणना दर्शनावरणीय कर्म के भीतर की गई है।

इनके अतिरिक्त दर्शनावरणीय कर्म के चार भेद और है। उनमे पहिला भेद है चक्षुदर्शनावरणीय कर्म। आप आखो से देखना चाहते हैं, किन्तु देख नही सकते। आखो मे छाया आ जाय, वादी आ जाय, फूला पड जाय और मोतिया बिन्दु हो जाय। या इसी प्रकार के अन्य नेत्र सबन्धी रोग हो जायें। मनुष्य इन दुःखो से छटपटाता है और चाहता है कि मैं देखू। परन्तु देख नही सकता। एकेन्द्रिय जीवों से लेकर तीन इन्द्रिय जीवो तक के इस कर्म का प्रबल उदय रहता है, इसलिए उनको तो चक्षु इन्द्रिय ही नही प्राप्त होती है। चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीवो के जो आख प्राप्त है, वह चक्षु दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त है। किन्तु उन जीवो मे भी सभी के एक-सा क्षयोपशम नहीं होता है। जिसे जैसा हीनाधिक क्षयोपशम प्राप्त होता है, वह उसी प्रकार से हीन या अधिक देख सकता है।

दूसरा भेद है अचक्षुदर्शनावरणीयकर्म। चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त स्पर्शन,

रसना, घ्राण और कर्ण इन चार इन्द्रियो के द्वारा जो सामान्य आभास या वस्तु का दर्शन होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं। इसको आवरण करने वाला कर्म अचक्षुदर्शनावरण कहलाता है। आख से नही देखने पर भी दूसरे के पैरो की आहट से, उसी की छीक लेने से या उवासी लेने पर हमे जो यह ज्ञान हो जाता है कि अमुक व्यक्ति आ रहा है, या अमुक व्यक्ति छीक रहा है, इस प्रकार का जो ज्ञान होता है, वही अचक्षुदर्शन है। इस प्रकार की शक्ति को अचक्षुदर्शनावरणकर्म रोक देता है।

तीसरा भेद यह है अवधिदर्शनावरणीय कर्म। अवधि-ज्ञान होने के पूर्व उसके विषयभूत पदार्थ का पहिले जो सामान्य दर्शन या आभास होता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं। उसे आवरण करने वाले कर्म को अवधिदर्शनावरणीय कहते हैं। हमारे आपके अवधिज्ञानावरणीय और अवधिदर्शनावरणीय कर्म का उदय है, इसलिए हम अवधिज्ञान के विषयभूत परोक्ष पदार्थों को और पर भव की पर्यायो को न जान पाते हैं और न देख ही पाते हैं। जिन जीवो को अवधिज्ञान प्राप्त होता है, उन जीवो को ही अवधिदर्शन प्राप्त होता है अन्यो को नही।

चौथा भेद है केवलदर्शनावरणीयकर्म। सर्व लोकालोक के पदार्थों को जानने की शक्ति का नाम केवलज्ञान है और उन्हें देखने की शक्ति का नाम केवलदर्शन है। प्रत्येक प्राणी मे सभी पदार्थों को देखने की शक्ति है, किन्तु केवल दर्शनावरणीयकर्म ने उस शक्ति पर आवरण डाल रखा है, इससे हमे ससार की सर्व वस्तुओ का प्रत्यक्ष दर्शन नही होने पाता है।

बंधन के कारण

अव जानने की प्रयोजन भूत वात यह है कि कैसे काम करने से दर्शनावरणीय कर्म का वन्ध होता है? भाइयो, जो कारण कल ज्ञानावरणीय कर्म के वतलाये थे, वे ही कारण जव दर्शन गुण के विषय मे किये जाते है, तव उन्ही कारणो से दर्शनावरणीयकर्म का वन्ध होता है। दूसरो को शास्त्र नही देखने देता, ज्ञान-प्राप्ति मे विघ्न करना, पढने वालो को नही पढने देता, विद्यालय और पाठशाला आदि के सचालन मे वाधाए उपस्थित करना, ग्रन्थो के प्रचार और प्रकाशन को नही होने देना, किसी की देखी हुई वस्तु मे दूषण

लगाना, शास्त्रो के पठन-पाठन के साधनो को नष्ट कर देना, पढने लिखने वालो के काम मे विघ्न-बाधाए उपस्थित करना, दूसरे को पढता-लिखता देख कर हर्ष नही करना, बल्कि ईर्ष्याभाव करना, अनादर करना, ज्ञानी जनो को देखकर प्रमुदित नही होना, उनको आता हुआ देखकर मुख फेर लेना, किसी तत्त्व के रहस्य को जानते हुए भी दूसरे के पूछने पर कहना कि मैं इस बात को नही जानता हूँ, पठन-पाठन की सामग्री अपने पास होने पर भी दूसरे को देखने के लिए मागने पर भी नही दिखाना, अथवा यह कह देना कि मेरे पास नही है, बाहिर गई हुई है, अपने गुरुजनो का अपमान करना, गुरु का नाम नही बताना, गुरुजनो से पढने पर भी यह कहना कि मैंने किसी गुरु से नही पढा है, मैंने स्वय ही पढा है, अथवा अनेक गुरुजनो से पढने पर भी अपने को अप्रसिद्ध गुरुओ का शिष्य न बताकर प्रसिद्ध गुरुओ का शिष्य बतलाना, किसी की प्रशसा योग्य बात की भी प्रशसा नही करना, किसी उच्च कुलीन व्यक्ति को नीचे कुल का दिखाना, दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करना, अस्वाध्यायकाल मे पठन-पाठन करना, दर्शनीय वस्तुओ को छिपा कर रखना, किसी को देखने नही देना, तथा दूसरो के दिखाने पर उन्हे दिखाने से रोक देना, आलसी जीवन बिताना, इन्द्रियो के विषयो मे मग्न रहना, शराब, भाग, चरस, गाजा आदि नशीली वस्तुओ का सेवन करना जमीकद लहसन, प्याज आदि का भक्षण करना, अधिक निद्रा लेना, दिन मे सोना, दूसरो की दृष्टि मे दोष लगाना, देखने के साधन—चश्मा आदि चुरा लेना, इत्यादि कार्यों से इस दर्शनावरणीय कर्म का बन्ध होता है। अत हमे अपने दर्शन गुण को प्रकट करने, तथा उसके उत्तरोत्तर विकसित करने के लिए ऊपर बतलाये हुए कामो को नही करना चाहिए।

आज धर्मध्यान भी हो रहा है, त्याग-तप और प्रत्याख्यान भी हो रहे हैं, सन्त-सेवा भी हो रही हैं और यथाशक्ति आप लोग पैसो से ममता भी उतार रहे हैं। इतना सब कुछ करते हुए भी उसका उपयोग हमारी दृष्टि मे समुचित प्रतीत नही हो रहा है। इसका कारण क्या है? इसमे और कोई कारण नही है। इसमे हमे अपनी ही भूल का अनुभव करना चाहिए कि हमने उन वस्तुओ को ठीक रीति से नहीं परखा है। यही कारण है कि

अन्य कार्यों को करते हुए जो फल मिलना चाहिए वह नही मिल रहा है

आज सिंहपोल मे आप सामायिक लेकर मेरे सामने बैठे हुए वडे सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। मुझे यह दृश्य देखकर वडा आनन्द आ रहा है। इसका कारण क्या है ? यदि इसी प्रकार आप लोग नित्यप्रति सामायिक करते रहे तो शासन कितना चमक उठे और शासन की कितनी प्रभावना होवे ? परन्तु दुःख है कि इस पर्व के पवित्र एव सुन्दर अवसर पर भी ये पगडी और साफे वाले नजर आ रहे हैं, ये इन दिनो मे अच्छे नहीं लगते हैं। ऐसा जान पडता है कि या तो इनके पास उपकरण नही होंगे, या सामायिक करने मे इनको लज्जा प्रतीत होती होगी। अथवा ये दुनिया से निराले सवसे वड़े आदमी होंगे—जो सोचते होंगे कि हमे सामायिक करने की क्या आवश्यकता है ? हम क्यो करें ? परन्तु उन्हे सोचना चाहिए कि हम जा रहे हैं, और नया दिन है तो इस दिन के अनुरूप नया रूप, नया वेष तो धारण करना ही चाहिए। अरे, ये पगडिया और साफे तो सदा वाँधते ही रहोगे ? यदि कहो कि हमारे तो तीन करण और तीन योग से त्याग किया हुआ है, तो फिर कोई वात नही है। यदि भूल गये हैं तो आज की भूल माफ की जाती है किन्तु कल से याद रखना।

सत्यपूर्ण श्रद्धा—सम्यग् दर्शन

अव वात यह है कि हमारे भीतर एक ही वस्तु एक दृष्टि से आनी चाहिए कि हम देव, गुरु और धर्म मे पूरी श्रद्धा, पूरा विश्वास और पूरा यकीन रखें। इसी को कहते हैं—शुद्ध दर्शन या सम्यग्दर्शन। सम्यक्त्व भी इसी का नाम है। तत्त्वो की शुद्ध श्रद्धा का नाम ही सम्यक्त्व है। तत्त्व का निरुपण करना और निर्णय करके उस पर दृढ होना इसी का नाम सम्यग्दर्शन है। ससार मे हजारो पन्थ या मत है, परन्तु प्रसिद्ध दर्शन तो छह ही हैं—जैनदर्शन, वौद्धदर्शन, कणाददर्शन, साख्यदर्शन, मीमासकदर्शन और चार्वाक-दर्शन। मूल दर्शन तो ये छह ही हैं। हा इनकी शाखा-प्रति-शाखाए अनेक निकल गयी है। परन्तु दर्शन शास्त्र जिसको कहते हैं, उसका नाम लेने पर तो न्याय के ग्रन्थ ही सामने आते हैं। आज के समय मे प्रत्येक मत न्याय

की तराजू पर तोला जाता है कि इसकी क्या मान्यताएँ हैं और ये एकातवादी हैं, या अनेकान्तवादी हैं। इसका निर्णय पढ़े विना नही हो सकता है, यदि आप लोग धर्म मे दृढ होना चाहते हैं, तो न्याय को पढ़ें, दर्शन को पढें। इनके ग्रन्थो को पढने से वडा आनन्द मिलेगा। जो श्रीमन्त हैं और जिन्हे सब सुविधाए प्राप्त हैं, वे लोग ही पढ सकते हैं। क्योकि पढने के लिए समय चाहिए, वडी-वडी पुस्तकें चाहिए। आज अन्य दर्शन वालो मे भी कुछ लोग ऐसे मिलते हैं जो रुचि के साथ दर्शन और न्याय के ग्रन्थ पढते हैं।

आज जोधपुर के एक विद्वान मिले। जव उनसे पूछा कि कहा गये थे तो उन्होने वताया कि मेहता साहव के पास गया था। क्यो गये थे ? यह पूछने पर उन्होने कहा कि आजकल मेहता साहव जैमिनीय दर्शन पढ रहे हैं। वे योगशास्त्र के वहुत उच्चकोटि के विद्वान हैं। साख्य दर्शन के और वेदो के भी ज्ञाता हैं। मेहता जी पजावी के विद्वान और घराने के मुसद्दी हैं। क्या जोधपुर मे कोई कमी है ? ये मेहता जी जोधपुर के खानदानी नहीं हैं, किन्तु किशनगढ के खानदानी हैं। देखो— ये वाहिर से आये हुए मुसद्दी और सिद्धान्त जानने के इतने प्रेमी हैं। परन्तु वहुत दु ख की वात है कि जोधपुर के सरदारो मे कोई ऐसा दर्शन शास्त्र का प्रेमी नही है। आप लोग पढ-लिखकर के वडे-वडे वकील और हाईकोर्ट के जज वन गये। फिर भी रविवार तक को भी मु ह नहीं दिखाते हैं ? आज हम देखते हैं कि जो पाच-पच्चीस हजार का माल लेकर के वैठे हैं और जो जोधपुर के धनाढ्य वने हैं और जिन्हें नई पू जी मिली है, वे लोग कहते हैं कि साहव, हमसे आठ दिन व्यापार वन्द रखना नही वन सकता है। जो वेचारे पाच सौ का माल लेकर वैठे हैं उन लोगो ने तो आठ दिन की ममता को छोड कर अपने व्यापार को वन्द कर दिया। किन्तु पू जीपति कहते हैं कि हमारे कारखाने तो इसी प्रकार चलेंगे। वलिहारी है आपकी। और धन्यवाद है आपको कि आप लोग अनूठे ही पू जीपति वने ? और रोटिया मौज से मिल रही हैं। फिर भी कहते हैं कि यह काम हमसे नही वन सकता है। मैंने अष्टमी को सूचित किया था कि हमारी समाज के जैन दिवाकर श्री चौथमल जी

महाराज ने यह परम्परा कायम की थी और स्थानीय समाज उसे निभाते आ रहे हैं, तो आज भी ठीक तरह से निभाओ। इसमे भूल मत करो। आप लोग प्रतिदिन सुनते है। फिर भी कल एक भाई ने कहा कि महाराज सा० ने इस विषय मे कहा ही नही ? अरे भाई, यदि तुम प्रतिदिन आते, तो मालूम होता। कभी आप आते भी होगे तो किसी कोने मे इस प्रकार छिप कर बैठते होगे कि महाराज की निगाह मे न आजायें। महाराज ने तो उस दिन भी कह दिया था और दो-एक धनवानो को बुरा भी लगा कि महाराज तो खारा बोलते हैं। भाई, आप लोग ऐसी आशा भी मत रखना कि महाराज मीठा बोलेंगे। महाराज तो खरा ही बोलेंगे और खरा, खारा लगता है। मेरे गुरुजी का मोमर नही बिगडता है कि मैं मीठा बोलू ? मेरे पास पचास तो क्या पाच सौ भी आयेंगे, तो उनको भी खरी ही सुनाऊगा। मुझे अपनी झोली मे किसी से कुछ लेना नही है। जिनके हृदय मे गुरु के वचनो के प्रति आदरभाव नहीं और जो रात-दिन हाय धन ही रोया करते हैं, वे लोग याद रखे कि इन दिनो मे कितना धन इकट्ठा कर लेंगे। आज तो पर्युषण के दिन हैं और व्रत पालते हुए भी हिचकिचाहट कर रहे हो। परन्तु यदि कल हडताल हो गई, तो नाक रगड करके कारखाने बन्द करना पडेंगे। देख लो—आज कलकत्ते मे क्या हो रहा है ? अरे जिनके भाग्योदयसे थोडी सी पूजी मिल गई तो मेढक के समान कूदने लगे और कहने लगे कि महाराज साहब ने ऐसा कह दिया ? भाई, महाराज क्या तुम्हारे नौकर हैं कि तुम्हे जैसा अच्छा लगे, वैसा ही बोलें और करें, तथा तुम्हारे हुक्म मे चले। मेरा तो एकमात्र यही कहना है कि अपनी जो धार्मिक परम्परा चली आ रही है उस पर आप लोग कायम रहें और दुकानो को इन दिनो मे खोलने का विचार छोड देवें। जो खोलते हैं, यह उनके कर्मों की बात है। कल यदि कोई यह कह देवे कि अमुक मुनि साधुपना नही पालता है तो उसके पीछे मैं भी अपना साधुपना छोड दू क्या ? यदि आप लोग पूज्य चौथमलजी स्वामी के प्रेमी हैं और उनके कृतज्ञ एव आभारी हैं, तब तो उनके द्वारा चलाये गये नियम को बराबर पालन करना। आप दूसरे की परवाह मत करे। कल मैंने छह बडे आदमियो को बुलाया, परन्तु वे लोग नही आये। उन्होने मन मे सोचा होगा

कि महाराज कुछ कह देंगे। अरे, आज मैं बुलाना चाहू तो राष्ट्रपति और प्रधानमत्री भी आ सकते हैं। फिर आप तो उनसे वडे नही हैं। मैं तो बुला कर दो वचन कह देता कि जो मर्यादा चली आ रही है, उसे पालना चाहिए। महाराज के पास कोई हुकूमत का डडा नही है कि तुम्हे जवरन् पालना ही पडेगा। यह मर्यादा तो सवको प्रेम से और अपना कर्त्तव्य समझ कर पालना है। उपस्थित भाइयो, आप लोग उन्हे ही लखपति और करोडपति वनने दो। पूजी काम ही आयगी। सवकी अलग-अलग प्रकृति होती है। परन्तु आप लोग तो अपने कर्तव्य-पालन मे दृढ रहना। आज का युग ही खराव है, आज तो रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार का जमाना है। आज के युग मे वे ही लोग आगे आते हैं जो कि धर्म का पालन नही करते हैं। किन्तु याद रखो कि पाप का फल अच्छा नही होता है।

सच्चाई पर डटे रहो ?

वन्धुओ, मुझे तो आप लोगो से एक ही वात कहना है कि देव पर आस्था रखो, गुरु पर आस्था रखो और धर्म पर आस्था रखो। इसी को कहते हैं शुद्ध दर्शन। शुद्ध दर्शन के प्रकट होने पर सव काम स्वयमेव सम्पन्न होते हैं और आनन्द के काम मे तो सदा आनन्द ही प्राप्त होता है। और विघ्न के काम मे विघ्न ही आते है। मिश्री खाते दात नही गिरा करते। पर थोडा देर के लिए मानलें कि किसी का हिलता दात मिश्री के कडक होने से खाते समय यदि गिर भी जाय तो यह कोई नही कहेगा कि मिश्री खाने से दात टूट गया। यदि पडता है, तो पडने दो। कहा भी है कि—

भलाई करते जग हसे तो हसने दो।
सीरा खाते दात घिसे तो घिसने दो॥

भले काम के लिए जो अपने पास है, उसको अर्पण कर दो। उसकी ओर लक्ष्य मत दो। आज आप कारखाने वाले कहते हैं कि हमारे पास वहुत आदमी हैं। कारखाना वन्द करने पर उनका क्या होगा ? भाई, वम्वई मे सैंकडो मील-कारखाने हैं, अहमदावाद और कानपुर मे भी मील-कारखाने चलते हैं। परन्तु जव जिस धर्मवाले का धार्मिक पर्व दिन आता है तो उस

दिन वे अपने मील-कारखाने वन्द रखते हैं, या नही ? यदि आप लोग इतने दयालु और विवेकवान हैं कि काम करने वाले गरीव मजदूरो का क्या होगा, तो आठ दिन का विना काम किये ही उन्हें वेतन दे दो। धर्म के कार्य मे उदारता वरतने पर कभी घाटा पडने वाला नही है। जिनके हृदय मे श्रद्धा हो, उनको ही उपदेश दिया जा सकता है और उनके ही हृदय मे ठहर सकता है। परन्तु जो हमे ही गुरुघटाल और खारा कहते हैं, उनको कैसे सुधारा जा सकता है ! यदि लकडी कोमल हो तो उस पर करोत चलती है। परन्तु जो निरा ठूठ हो, गाठवाला काठ हो तो उस पर तो करोत भी टूट जाती है। जिनके हृदय मे देव, गुरु और धर्म के प्रति आस्था नही है, उनके लिए तो कोई उपदेश और कोई आदेश कारगर नही हो सकता है।

भाइयो, मैं तो जैनधर्म का एक भिक्षुक हू। मेरे भीतर तो क्या शक्ति है ? किन्तु यदि भ० महावीर भी साक्षात् उठकर आ जायें तो ऐसे जड और मूढ व्यक्तियो को वे भी नहीं सुधार सकते है। जो मिट्टी कोमल और चिकनी होती है, उसमे जो वनाना चाहो—जैसा वर्तन वनाना चाहो—वैसा वना सकते हैं। परन्तु वालू-रेत से नही वना सकते है। जो अच्छा कपडा हो तो दर्जी टुकडे करके सी सकता है। परन्तु जो काम का ही कपडा नही है, उसे क्या वह सी सकता है ? नही। हमारे पास चाहे कोई अमीर आवे और चाहे गरीव आवे, परन्तु हमे वे प्यारे नही हैं कि जो धर्म को नही पालते हैं। परन्तु हमे प्यारे हैं, जो धर्म पर आस्था रखते हैं। हमें धर्म-द्रोहियो से कुछ लेना-देना नही है। कुछ लोग वहुत अहंकार करते हैं कि चौमासे की पानडी में मोटी ओलिया किसने चढाई है ? मैं पूछता हू कि इक्यावन हजार की ओली किसी की है क्या ? जैसी कि मुणोत परिवार के थानचन्द्र जी ने चढाई है। यदि किसी ने चढाई हो तो कहे ? चौमासा करा दिया और दो-चार सौ की ओली चढाते हैं। अरे, जो छोटी पूजी वाले हैं और प्रतिदिन कमाते और खाते हैं, वे लोग भी इतना दे रहे हैं। मैं तो कहता हू कि ऐसे अभि-मानियो के पास से लेकर क्यों चौमासा विगाडते हो ? ऐसे लोगो का पैसा किसी काम का नही है। उन लोगो के भरोसे चौमासा नही है, उसे तो हमारे ये गरीव भाई ही करा देंगे ! और समाज मे कोई कमी नही है। फिर ये

अपने को वडा समझनेवाले क्या देंगे ? पाच सौ, या हजार से आगे देने वाले नही हैं। अभी मैं अपनी मर्यादा मे हूँ। ये जो चूडिया पहिनने वाली वैठी हैं, इशारा करने पर तो ये भी हजार पाच सौ झोली मे डाल देंगी। आज तो हजार-पाच सौ की ओली मे ही सेठपना आ गया है। मुकुन्दचन्द जी वालिया ने पाली मे रहकर पूजी कमाई तो वहा पर स्कूल वनवा करके दी या नही ? उनकी सन्तान आज भी यहा मौजूद है। किसी भी काम के लिए सवकी ओलियाँ मड जाने पर वालिया जी के पास जाते हैं तो उसी समय रकम दे देते हैं। ये कभी-कभी सामायिक करते थे। परन्तु समाज का काम पड जावे तो उनकी ओली जोघपुर वालो से ऊँची ही रहती है। तभी समाज मे अपना नाम रखते हैं। परन्तु आज तो वे लोग ही घोटाला कर रहे हैं जो कि पूज्य चौथमल जी के खास भक्त वने और चेले वन गये। वे मेरे तो स्वामी जी हैं—उन्ही की तो मर्यादा है, मेरी तो नही है। भाई, मेरे वचन तो खारे लगे होगे और मैं खमत-खामणा भी करता हूँ। परन्तु मैं तो हितकारी ही वचन कहता हू। मैं किसी की खुशामद नही करता हू। जव कोई कहने का अवसर होता है तभी कहता हू। कोई भी मेरे कहने से तो नही करेगा। जो करेगा, वह अपने मन से ही करेगा। पर एक वात आप सव लोगो से अवश्य कहूगा कि जो धन के मद मे अन्धे हो जाते हैं, उन लोगो का आप अन्धानुकरण मत करना। क्योकि किसी पहुंचे हुए सन्त ने कहा है कि—

न शृण्वन्ति न वुध्यन्ति न प्रयान्ति च सत्पथम्।
प्रयान्तोऽपि न कार्यान्ति धनान्धा इति चिन्त्यताम्॥

अर्थात् जो धन के मद से अन्धे हैं, वे लोग सर्वप्रथम सन्मार्ग की वात को सुनते ही नही है। यदि सुन भी लेवें तो उसे समझते नही हैं कि इसका क्या महत्त्व है। यदि किमी प्रकार किमी गुरु के जोर से समझ भी लेवें तो उस पर चलते नहीं हैं। यदि किसी साथी के आग्रह पर चले भी, तो कार्य के सम्पन्न होने तक उस पर नही चलते हैं। भाई, धनान्धो की ऐसी प्रवृत्ति होती है। ऐसा सोच करके कभी भी उनका अन्धानुकरण मत करना।

अब मैं अपने विषय पर आता हू कि आप लोग ऐसे धनान्धो का अनुकरण करके इन दिनो मे दुकानें मत खोलना और न कोई व्यापार-धन्धा ही करना। किन्तु अपने नियम पर कायम रहना। सूरजमल जी सखलेचा आते हैं और कहते हैं कि चौमासा होना चाहिए। और कहते हैं कि नौ दिन के अखते मे बाधा नही पड जाय, इसकेलिए आया हू। परन्तु भाई, जो उपकार बाहिर गावो मे होता है, वह यहा नही होता है। परन्तु इन दिनो मे व्यापार बन्दी का जो नियम यहा है, वह सारे भारत मे भी नही है। इसे तोडना मत। यदि नियम पालोगे तो आज भले ही दोरे (नाराज) हो जाओगे, परन्तु कल सोरे (सरल-प्रसन्न) हो जाओगे। धर्म का फल सदा मीठा ही होता है।

धर्म का प्रभाव

इस समय धर्म के प्रताप या प्रभाव की एक कथा याद आ रही है। एक नगर मे एक सेठजी थे। उनके चार लडके थे। उनमे तीन लडके धन्धे मे बहुत कुशल और होशियार थे और खूब कमाई करते थे। सेठजी उन लोगो को यही शिक्षा दिया करते कि एक तो धन्धा अपना घर देख करके करना और दूसरा अन्याय का पैसा मत लेना, जो न्याय-नीति का हक हो, उसे ही लेना। देखो—मैंने कभी भी अन्याय का पैसा नही लिया है और तुम लोग भी मत लेना। तीन बडे लडके व्यापार-धन्धा करते और दुकान का काम देखा करते थे। छोटा लडका धर्म के विचार का था। वह सोचा करता कि प्रत्येक धन्धे मे पाप लगता है। विना पाप का तो कोई व्यापार-धन्धा है ही नही? कोई ऐसा व्यापार नजर नही आता कि जिसमे पाप न लगे और अपना गुजारा भी चल जाय। इस प्रकार विचार करते-करते बहुत वर्ष बीत गये। परन्तु न उसे कोई निष्पाप धन्धा ही दिखा और न उसने कुछ कमाया ही। हां, धर्म-साधन वह त्रिकाल नियमपूर्वक करता था। भाग्य से उसको धर्मपत्नी भी ऐसी ही धर्म-परायण मिली। वह धर्म साधन के सिवाय घर पर अपनी सासू और तीनो जिठानियो को घर का कोई काम नही करने देती। उनसे कहती कि आप साधु-सन्तो के व्याख्यान सुनें, उनकी सेवा करें और शास्त्र-स्वाध्याय आदि करें। इस प्रकार छोटे लड़के की स्त्री उन सबको

भरपूर आराम देती थी। मगर जिठानियो का स्वभाव बहुत बुरा था। वे उसकी कुछ न कुछ नुक्ता-चीनी किया ही करती थी। जैसे नये लखपतियो मे टह्लका आता है, वैसा ही उनको भी आ गया। छोटी वहू के इतना काम करने और सबको आराम पहुँचाने पर भी वे कहने लगी कि घणी तो अन-कमाऊ है, फिर यह घर का सारा काम-काज न करे ? इस प्रकार उसे ताने मारती और उसके काम मे कुछ न कुछ दोप निकालती रहती थी। पर छोटी वहू वहुत शान्त और गम्भीर स्वभाव की थी। अत वह सब सहन करती जाती थी। एक दिन विना किसी भूल के अकारण ही वे तीनो जिठानिया उस पर उवल पडी। उन्होंने आपस मे सलाह कर ली कि इसको किसी प्रकार घर मे निकाल देना चाहिए। परन्तु विना आडे टेढ़े वोले लडाई नही होती है, विना गाडी-वैल के खेती नही होती है और गाढ़े रहे विना धर्म नही होता है। इसलिए उन जिठानियो ने वात वात पर उसे छेडना शुरू कर दिया। कहा है—

> **सज्जन विचारा क्या करे दुर्जन केडे लग्ग।**
> **अति मथियातीं निकरै चंदन माय थी अग्ग।**

वह वेचारी छोटी वहू वहुत शान्त, गम्भीर और धर्मपरायण थी। परन्तु जितनी वात सहन करने की होती है, उतनी ही सहन की जा सकती है। एक दिन जव उन जिठानियो ने पुन उसके पति को अनकमाऊ और वैठे-वैठे खाऊ कहा, तो उसे वहुत वुरा लगा। उस दिन उसने भोजन भी नही किया। काम से निवृत्त होकर रात्रि मे वह अपने कमरे मे गई और अपने पति से जिठानियो के द्वारा कही गई वात कह दी। पति के चुप रह जाने पर वह फिर वोली कि-हम मजदूरी करके पेट भर लेंगे, परन्तु अव जिठानियो के ऐसे ताने नही सहेगे। मैं अपने लिए सव कुछ सहन कर सकती हूँ। परन्तु आपके लिए कोई अनुचित शब्द कहे तो उसे मैं सहन नही कर सकती हूँ। स्त्री की वात सुनकर उसका पति वोला—श्रीमतीजी, शान्त रहो। जो जो पुद्‌गल फरसना है, वह तो, होगी ही। पति के वचन सुनकर स्त्री चुप हो गई और कई प्रकार के सकल्प-विकल्प करती हुई सो भी गई। किन्तु

पति को नीद नही आई। उसने सोचा कि मेरे कारण इसे ससुराल मे इतने कष्ट उठाना पड रहे हैं। अव मेरा घर पर रहना ठीक नही है, मुझे यहाँ से अन्यत्र चले ही जाना चाहिए। यह निर्णय कर उसने एक पत्र पिता के नाम और एक पत्र पत्नी के नाम लिखा और लिफाफा मे वन्द करके मेज पर रख दिया। उसमे उसने लिखा कि मैं अपनी इच्छा से जा रहा हूं और कहाँ जा रहा हूं, यह अनिश्चित है। परन्तु मैं आत्मघात करने के लिए नहीं जा रहा हू। मुझे अपने भाग्य की परीक्षा करनी है, इसलिए जा रहा हू। अत आप मेरे लिए किसी भी प्रकार की चिन्ता न करना। इसी प्रकार स्त्री को भी लिखा कि मैं जा रहा हू। अव तेरे से कष्ट सहन होवे तो सहन करना। अन्यथा मा सा० की सेवा से वचित मत होना और पिताजी की भी सेवा करना। ये दोनो उत्तरदायित्व निभाना। ये दोनो पत्र रखकर वह आधी रात को ही घर से चुपचाप चल दिया। उसने इस वात की कोई चिन्ता नही की मैं कहाँ रहूँगा और क्या खाऊँगा। वह यह सोचता हुआ आगे जा रहा था कि –

> दुनिया के कारखाने का खुदा खुद खानसामा है।
> न कर तू फिक्र रोटी की गरचे मर्ददाना है॥

अर्थात् सारी दुनिया का कारोवार उसके भाग्य पर चलता है, उसके लिए रोटी की चिन्ता करने की जरूरत नही है। उसका भाग्य समय पर रोटी स्वय ही जुटायगा। जव सूर्योदय हुआ और तीनो लडके पिताजी के के पास मुजरा करने को गये, तव छोटे लडके को नही देखकर सेठ ने पूछा कि वह क्यो नही आया? इसी समय छोटी वहू ने आकर उनके नाम का पत्र सेठजी को दे दिया। उन्होंने उसे खोल करके जो पढा तो वहुत दु ख हुआ। सेठ मन मे सोचने लगा—लडका वडा सीधा-सादा और सदाचारी है, वह अवश्य ही इन तीनो के कुटिल व्यवहार से ऊवकर चला गया है। भाग्य उसका भला ही करेगा। पुन प्रकट रूप मे उन तीनो लडको से कहा कि तुम लोगो को धन की लालसा वहुत वढ गई है। अरे, तुम तीनो कमाने वाले थे और मैं भी वैठा नही हूँ। यदि वह नही कमाता था, तो इसका तुम लोगो

को क्यो दुःख हुआ ? वे तीनो बोले—पिताजी, आपने तो लाड-प्यार मे उसे बिगाड दिया। अब वह चला गया तो इसमे हमारा क्या दोष है। इधर उनकी माँ ने तीनो बीदणियो मे कहा कि वह तुम तीनो की प्रतिदिन लडाई देखता था, इसी से ऊबकर वह चला गया है। वे तीनो बोली—मासूजी, आपको भी चुपचाप रहना हो तो रहे, अन्यथा हम मे अलग हो जावे। भाई, जब कोई बडो को बडा समझें, तब तो विवेक रखे। नही तो क्या विवेक रखेगी। जब यह बात मेठ के कान तक पहुँची तब उन्होंने सेठानी से कहा कि जितने गहने पहिने हो वे सब खोल दो और सादे कपडे पहिनकर यहाँ से चलो। सब कुछ इन लडको और बहुओ को ही सौंप कर यहाँ से चलो। जब मेठ और सेठानी घर छोडकर जाने लगे तब वह छोटी बहू भी उनके पीछे चल दी। लडके और तीनो बहुए खडे-खडे देखते रहे, मगर किसी ने भी उनको रोका नही। वे लोग तो मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि चलो हमारी झझट सदा के लिए दूर हो गई।

सेठ, सेठानी और छोटी बहू तीन नगर के किसी अच्छे मोहल्ले मे पहुँचे। वहा एक खाली अच्छे मकान को देखकर उसके मालिक से पूछा कि क्या आप इसे हम लोगो को किराये पर देंगे ? मकान-मालिक ने कहा - सेठ साहब, आप मे क्या किराया लेना उचित है ? आपका ही मकान है। आप यहा खुशी से रहिये। सेठ ने कहा—नही भाई, जो दूसरे से किराया लेते रहे हो, वह हमसे भी लेना। मजूरी पाकर तीनो उस मकान मे रहने लगे। सेठ ने किराया नामा लिख दिया। जैसे ही यह चर्चा गाव मे फैली कि सेठ के रिश्तेदार और व्यापारी लोग मिलकर सेठ के पास आये और कहने लगे कि आप बिना कुछ लिये हुए ही घर से कैसे चले आये। हम पचो को इकठा करके इसकी पचायत करेगे और आपको हिस्सा दिलावेंगे। तब सेठ ने कहा पचो, हमने आपको बुलाया नही, फिर भी आप लोग बिना बुलाये ही पचायत करने को आ गये ? सेठ का यह कथन सुनकर सब लोग वापिस चले गये। सेठ, सेठानी और बहू ने एकान्त स्थान मे बैठकर निराकुलतापूर्वक सामायिक की। तत्पश्चात् छोटी बहू ने कहा—मासा० और पिताजी, आप लोग

किसी भी प्रकार की कोई चिन्ता न करें। मुझे इतना हुनर आता है कि मैं सबका पेट अच्छी तरह भर लूगी। सेठ ने कहा—अरी, तू सेठाई गवाकर क्या सबका पेट भरेगी ? वहू ने कहा—नही, मैं ऐसा कोई काम नही करूगी, जिसमे कि आपकी इज्जत को वटा लगे। उस दिन तो तीनो निराहार रहे। रात्रि मे वहू ने अपने हाथ से एक नई वस्तु वनाई और सवेरा होने पर सेठ जी से कहा कि इसे वाजार मे वेच आइये। जव सेठ वेचने गया तो सव लोग देखकर चकित ही रह गये। उन्हें उस वस्तु की अच्छी कीमत मिली। जो दाम मिले उतने से सेठ भोजन-सामग्री घर ले गया। वहू ने रसोई तैयार की और सवने अच्छी तरह से भोजन किया। अव वह वहू रात्रि मे तो काम करती है और दिन मे सेठाई रखती है। आने-जाने वाले मेहमानो का सत्कार भी करती है और अपने घर की मान-मर्यादा भी रखती है। उस वहू से काम करने की चतुराई को देखकर सेठ और सेठानी वहुत आनन्दित हुये। वे आपस मे कहने लगे कि यह कैसे ऊँचे घराने की लडकी है ? अपने घर मे तो गृहलक्ष्मी वनकर आई है जो घर की मान प्रतिष्ठा को वढा रही है और सवको अपने हुनर से खिला-पिला रही है।

भाइयो, आप लोग माफ करना मुझे। आप लोगो के कमाई का कोई पार नही है। फिर भी आप लोगो के हाड सूखते जा रहे हैं और पीले चेहरे दिखाई दे रहे हैं। इसका कारण केवल आपका घर है। वह एक अनाथालय वना हुआ है। इसका मतलव यह है कि कमाने वाला तो एक है और खाने वाले आठ हैं। अव आप ही वतायें कि वह सव कैसे ऊचा उठेगा ? आज हमाल और मजदूर लोग खुश हैं, क्योकि उनके घर मे जितने आदमी हैं, सभी कमाने वाले हैं। आपकी ये माताए, और ये श्रीमती देविया ऐसी होशियार नही है जो घर का खर्च निकाल देवें। यदि ये घर का खर्च निकालने लगें तो फिर आपके सूखने का क्या काम रहें ? परन्तु भारी कमी तो यह है कि आप इन्हें कोई हुनर ही नही सिखाते हैं, और न इन्हें होशियार वनाते हैं। इसीकारण आप लोगो की यह हालत है। अरे, दूसरी जातियां तो कैसी उन्नति कर रही हैं। परन्तु वे आपकी दृष्टि मे क्या नही है ? आपकी समाज के एक

कार्यकर्त्ता ने आगे होकर एक पापड कारखाना खोला, तो वहा भी कोई नही जाता है। न वहा कोई देख-रेख। परन्तु आप लोग याद रखें, कि कला-हुनर सीखे विना आगे काम चलने वाला नही है।

आपके जोधपुर मे चूदडी का धधा जोर-शोर से चलता है। और सारे भारत मे जोधपुर की चूदडी प्रसिद्ध है। और जो जोधपुर के झरझरिया और वादले वनते हैं वे भी सारे भारत मे मशहूर हैं। यदि आपके भी घरो मे ये काम करने वाली हो, तो पेट भली-भाति से भरा जा सकता है। परन्तु वात यह है कि इन देवियो को तो लडाई झगडे करना याद हैं और निन्दा-विकथा करने से ही अवकाश नही मिलता है। जो भाई वहिनें अपने हुनर के काम मे लगे रहते हैं, वहुत आनन्द मे हैं।

हा, तो मैं कह रहा था कि वह छोटी वहू अपने खानदान की मान-मर्यादा रखते हुए अपना काम करती और सव का निर्वाह आनन्द से होता था। इस प्रकार कार्य करने हुए उसे छह माह हो गये। एक दिन वहूने कहा—सासूजी, आपकी आज्ञा हो तो मैं पीहर हो आऊ ? सासूने कहा— हा वेटा, जा आओ। मेरी माताओ और वहिनो, आप लोग भी ऐसी ही सासू और वहुए वन जाओ। यदि ऐसी वन जाओ तो फिर क्या तुम्हारा घर स्वर्ग से कम रहेगा ? अरे, जो जन्म को देने वाली हैं, उनके यहा तो वेटी अठारह वर्ष तक ही रहती है, परन्तु वहुए तो तुम्हारे घर मे जीवन भर रहती हैं। ये आपकी वेटिया नही है क्या ? छह माह के वाद वह वहू सासूकी आज्ञा लेकर अपने पीहर जाने को उद्यत हुई। जाते हुए उसके मकान से आगे की गली के नुक्कड पर एक सेठ जी की दुकान थी। उनका वही एक वडा कोठा था, जिसमे माल भरा रहता था। भाव अच्छा आने से सेठ ने उस कोठे का सारा माल वेंच दिया। वर्षों से सफाई न होने के कारण उस कोठे मे धूल भी वहुत भर गई थी, जिसे सेठ जी ने साफ करा के कोठे के वाहर ढेरी लगवा दी थी। वे सोच रहे थे कि कोई गाडी वाला आये तो उसे भरवा करके वाहिर फिकवा दू। भाई, पहिले जमाने मे स्त्रिया वाजार मे होकर नहीं निकलती थी। वल्कि गली मे से होकर जाती आती थी। आज तो वह रिवाज समाप्त हो गया है। अव तो अकेली स्त्री वाजार मे

जाकर वहा से हर एक वस्तु खरीद करके ले आती है अब उसे किसी प्रकार की रोक-टोक नही है।

हा, तो पीहर जाते हुए उस वहू की दृष्टि उस कूडे के ढेर पर पडी। उसे देखते ही वह वापिस घर लौटी और आकर सेठ से कहा—पिता जी, अमुक गली के नुक्कड पर जो दुकान है और उनके वाहिर जो धूल का ढेर लगा हुआ है, उसे आप खरीद करके ले आइये। यह सुनते ही सेठ अवाक् सा रह गया। उसने पूछा—वहू, आज यह क्या तेरे मनमे आई है। तू समझदार होकर के भी यह वच्चो जैसी क्या वात कह रही है। वहू ने कहा—नही पिता जी, मेरे कहने से आप उस धूल के ढेर को अवश्य खरीद लेवें। सेठ ने सोचा कि जव वहू उसे खरीद ने का इतना आग्रह कर रही है, तो उसमे अवश्य कुछ रहस्य होना चाहिए, अत उन्होने उससे खरीदने की 'हाँ' भरली।

हा, तो वहू के आग्रह करने पर सेठ जी वाजार मे गये और उस दुकान के मालिक से मिले। दोनो मे जुहार-रामासामा हुआ। उसने पूछा कि कहिये आज आपने पधारने का कैसे कष्ट उठाया ? मेरे योग्य कोई सेवा हो तो कहिये। सेठ ने कहा—आपने जो दुकान के वाहिर यह धूल का ढेर लगा रखा है उसे खरीदने को आया हू। सुनकर वह वोला कि आप इसका क्या करेंगे ? सेठ ने कहा—इससे आपको क्या प्रयोजन है। आपको जो इसका मूल्य लेना हो, वह ले लीजिए और यह मुझे दे दीजिए। उसने कहा—मैं तो इसे मजदूर लगा करके फिकवाने वाला था। आप इसे यो ही ले जाइये। सेठ ने कहा—नही भाई, मैं विना मूल्य दिये नही लूगा। आखिर दस रुपये मे वह ढेर ले लिया और गधे वाले से उसे उठवा करके अपने घर मे डलवा लिया। छोटी वहू ने उसे उठाकर भीतर तहखाने मे रख लिया। उसके सासु और ससुर विचारने लगे कि यह इसका क्या करेगी ? यह तो वाहिर-फेंकने योग्य अटाला है। वहू ने एक वडी भट्टी वनाकर के एक वडा कढाव उस पर चढाया और उसे तेल से भर दिया। तेल के खौलने पर एक टोकरी भर धूल साफ करके उस कढाव मे डाल दी और एक रसायन उसमे डाली। जैसे आप लोग वेसन की चक्किए चूंठिए वनाते हैं, उस प्रकार से वह

खुरपा लेकर उसे हिलाने चलाने लगी। इस प्रकार उबालते-उबालते जब वह खूब गाढा हो गया तो उसे उतार करके सोने की दो-तीन ईंटे जमा ली। पुन उसने दूसरा घान चढाया और तैयार होने पर उससे भी सोने की ईंटें बनाईं। इस प्रकार नये नये घान चढा-चढा करके उसने उस धूल के ढेर को तेल मे पका-पकाकर सोने की ईटो का ढेर लगा दिया। उसकी इस चतुराई को देखकर सेठ ने पूछा—वहू, यह कला तूने कहा मे सीखी ? उसने कहा—आपकी कृपा से। मैं कही वाहिर तो सीखने को गई नही हू। सेठ ने सोने की कुछ ईटे वेंचकर एक दुकान मोल लेली, गादी-तकिये लगवा दिये और मुनीम-गुमास्ते रखकर व्यापार-धन्धा चालू कर दिया। उसका व्यापार खूब धूम-धाम से चलने लगा, सेठ धर्मात्मा और दयालु तो थे ही, अत दान-पुण्य भी खूब होने लगा और गरीव असहायो की सहायता करके हजारो का पेट भरने लगे। जो भी जिस प्रकार की मदद मागता, उस प्रकार की मदद देने लगे।

उधर तो सेठजी का कारोवार दिन दूना रात चौगुना वढने लगा और उसके लडको का कारोवार दिन पर दिन गिरने लगा। जो पूँजी सेठ से पाई थी, धीरे धीरे वह सव समाप्त हो गई। जव उन्होंने अपने पिता का कारोवार वढता हुआ देखा तव वे सोचने लगे और आपस मे कहने लगे कि पिताजी जाहिर पूँजी को तो लेकर नही गये हैं किन्तु जो उनके पास गुप्त पूँजी थी, उसे लेकर वे अवश्य गये हैं, अन्यथा यह कारोवार कहाँ से फैलता। अतएव हमे भी वहाँ चलकर उस पूजी पर अधिकार करना चाहिए। ऐसी आपस मे सलाह करके वे तीनो लडके सेठ के पास गये और उनका घेराव करके कहने लगे कि पिताजी साहव, आप महाजनी से पूजी हमे देदो, अन्यथा आपका यह सारा वडप्पन धूल मे मिल जायगा। लडको का यह कथन सुनकर सेठ ने कहा—भाई, मैं वहाँ से तुम्हारा क्या लेकर आया हू ? लडके कहने लगे—पिताजी, आप वगुलाभेषी धर्मी ठग हो। सारी पूजी तो आप ले आये और दिवालिया दुकान हम लोगो को सौंप दी। उन लोगो का यह कोलाहल सुन कर के वाजार के अनेक महाजन लोग आ गये और कहने लगे कि

कुवर साहवो, आप लोगो ने तो खाली हाथ सेठजी को निकाल दिया था। फिर भी यहा आकर के लडते हो। यह आप लोगो के लिए वडी शर्म की वात है। वे तीनो लडके वोले—हमारे घर के काम मे आपको पचायत करने की कोई आवश्यकता नही है। हम अपने में वोलें, लडें, या जूतमपजार करें हमारे वीच मे आप लोगो को वोलने का कोई अधिकार नही है। इन लोगो की वातो को सुनकर छोटी वहू भीतर से निकल कर वाहिर आई और अपने जेठो से कहने लगी— आप लोग लडे नही। यदि आपको धन ही चाहिए है तो ये पडी हैं सोने की ईटें, जितनी चाहिए—उतनी ले जाइये। ऐसा कहकर उसने वहुत सी ईटें लाकर सामने रख दी। दर्शक लोग आपस मे कहने लगे कि लडको का कजिया सत्य प्रतीत होता है। वहू ने ईटो की चार पक्तियां वरावर की लगा दी और तीन पक्तियां उन लोगो को सभला दी। तत्पश्चात् उसने कहा यदि और भी इच्छा हो तो इस चौथे हिस्से को भी ले जाइये। उसके वचन सुनकर ये लोग उस चौथे हिस्से को भी उठाकर अपने घर ले आये। इस प्रकार सव सोने की ईटें दे देने के वाद भी उसके यहा कोई कमी नही आई। उसने उद्यम करके और भी ईटें पुन वनाली। और भाई, उद्यमी व्यक्ति के लिए ससार मे क्या कमी है। कमाने वाला उदारतापूर्वक दूसरो को धन दे सकता है, वह सोचता है कि कल फिर कमा लेंगे। परन्तु जो कमाने वाला नही होता है और पराये माल पर आजीविका चलाने का भाव रखता है, उसे ही देते हुए दुख होता है।

यह तो इधर की वात कही। अव उधर छोटा लडका जो परदेश चला गया था, उसका हाल सुनिये। घर से निकलने के वाद वह इधर-उधर भटका, पर न कही कुछ काम ही मिला और न खान-पान का ही कुछ ठिकाना पडा। चौथे दिन जव वह आगे जा रहा था, तव उसने देखा कि एक कसाई एक हस को पकड करके लेजा रहा है। उसने कहा--इसे वेचूगा और अपनी गुजर चलाऊँगा। इसने पूछा—क्या मोल लोगे? उसने कहा—जो भी तुम्हारे पास हो, वही दे दो। उसके पास रुपये-पैसे तो कुछ थे नही। हा, हाथ मे पहिनी हुई एक अगूठी थी सो उतार कर इसने उस शिकारी को दे दी और उसने हस को ले लिया। वह हस भी भूखा था। हस या तो दूध

पीता है, अथवा मोती चुगता है। आखिर वह कुवर उस हस को लेकर एक सेठ के घर गया। सेठ ने इसे भला पुरुष समझकर स्वागत करते हुए कहा—पधारिये कुवर साहब, भोजनपान कीजिए। कुवर ने कहा—सेठ साहब, यह हस भूखा है, इसे दूध पिलाये बिना मैं भोजन नही कर सकता हूँ। सेठ उसे लिवाकर घर पर गया और ज्यो ही दूध का बर्तन लेकर हस के सामने रखा कि उसकी भवानी देवी भडकी और तडककर कहा—तुम सब कुँए मे जाकर पडो, क्या यह दूध इसलिए रख छोडा है? सेठ ने कहा—अरी भाग्यशालिनी, कमाता तो मैं हूँ? सेठानी गरजती हुई बोली—पर, घर का काम तो मैं करती हूँ। यहा पर तुम्हारा क्या है? सेठानी की फटकार सुनकर सेठ चुपचाप हस को लेकर बाहिर आया और किसी हलवाई के यहा जाकर हस को भरपेट दूध पिलाया और उन दोनो ने भी वही पर खाया-पिया। अब वह कुवर हस को लेकर आगे चला। उस हस के जो साथी बिछुड गये थे, वे जंगल मे मिले। अपने साथियो को देखकर हर्ष से उस हस ने आवाज लगाई और कुवर से अपनी बोली मे कहा—आपने मुझ पर बडी कृपा की है। आपने मेरे प्राण बचाये हैं। मैं आपके उपकार को कभी नही भूल सकता हू। अब इतनी कृपा और करें कि मुझे छोड देवें तो मैं अपने साथियो मे जाकर मिल जाऊ? उसकी यह बात सुनते ही इसने उसे छोड दिया। वह हस उडकर अपने साथियो से जा मिला और अपने पकडे जाने वा छुडाये जाने का सब हाल साथियो से कहा। उसने कहा कि यदि ये सज्जन मुझे न छुडाते, तो मैं मारा जाता। अत अब हमें भी इसकी कुछ सेवा करनी चाहिए। हसने आकर अपनी बोली मे इस कुवर से कहा—आप कुछ दिन यही पर ठहरिए और हमारी सेवा स्वीकार कीजिए। कुवर वही ठहर गया। वह हस अपने साथियो के साथ समुद्र के किनारे गया। सब हस अपनी चो-चो मे मोती और रत्न दाबकर आये और जहा यह ठहरा हुआ था, वहा पर सब मोती और रत्नो को डाल गये। इस प्रकार उन हसो ने एक ही दिन मे मोती और नाना प्रकार के रत्नो के ढेर उसके पास लगा दिये। यह सोचने लगा कि इन सारे मोतियो और रत्नो को कहा रखू? मेरे पास तो इनको भरकर रखने के लिए कोई साधन भी नही है। इतने मे उसका ध्यान गाय-भैंसें जो वहा

चरने को आया जाया करती थी उनके पोठो की ओर गया। उसने वहुत से पोठे इकट्ठे किये और उनमे उन मोती और रत्नो को मिलाकर थेपडिया थेपदी और उनको एक दो दिन मे सुखाकर एकत्रित कर अपने पास रख ली। दो-तीन दिन के वाद एक जहाज समुद्र के इसी किनारे पर आकर लगा। इसने उसके मालिक के पास जाकर कहा— भाई, मैं भी आपके साथ चलना चाहता हू, मुझे ले चलो। उसने स्वीकृति दे दी। इसने कहा—अपने साथ मे इन छानो को भी ले चलू गा। जहाज के मालिक ने कहा—भाई,यह क्यो ले चलते हो ? तव कु वर ने कहा—मेरी तो यही कमाई है। वह उसने छानो को जहाज मे रख लिया। जहाज समुद्र में आगे चलने लगा। कुछ दिनो चलने पर जहाज का ईंधन समाप्त हो गया। तव जहाज के मालिक ने कहा—कि तुम अपने छाने दे दो। इसने कहा—मैं छाने तो दे सकता हूँ, वैसे ही वापिस लू गा। कुछ दूर आगे जाने पर जहाज किनारे जा लगा। तव कु वर ने जहाज मालिक से कहा— भाई, मेरे छाने दो। उसने किनारे पर से दूसरे छाने मगाकर उसे दिये। कु वर ने कहा—इन्हे मैं नही लू गा। मेरे जैसे ये दूसरे छाने हैं, वैसे ही लू गा। उसने अपने पास के एक छाने को तोडकर दिखाया। उसके भीतर तो मोती और रत्न चमकते दिखाई पडे। जहाज-मालिक ने कहा—भाई, ऐसे छाने हम कहा से दे सकते हैं ? तव कु वर ने कहा—अच्छा, कोई वात नही। मैं तुम्हें माफ करता हूँ। वह वचे हुए छानो को किसी गधे वाले के गधे पर रखा करके अपने गाव की ओर चला। जव गाव के पास पहुचा तो उसने छाने वही उतरवा करके उसे वापिस भेज दिया और घर पर अपने आने का समाचार भेजा। सेठ-सेठानी और उसकी पत्नी ने वडा हर्ष मनाया और सवारी लेकर सेठ गाव के वाहिर आया। सव आपस मे मिलकर वहुत प्रसन्न हुए। जव गाडी मे वैठकर ये सव चलने लगे तो उसने कहा—पिताजी, इन छानो को भी गाडी मे रखा लीजिए। सेठ वोला वेटा, इनसे तो अपशकुन होता है। लडके ने कहा—पर मेरी तो यही आज तक की कमाई है। खैर, छाने भी गाडी मे रख लिये गये। घर पहूचकर उसने उन छानो को सुरक्षित रख देने के लिये कहा और वे सुरक्षित रख दिये गये। देखने वाले कहने लगे कि यह तो अभी तक भोला ही वना है। कही

छाने भी सुरक्षित रखे जाते हैं, आदि। समय पाकर सेठ ने बेटे से कहा—तेरी यह वहू वडी सुपात्र और भाग्यशालिनी है। इसने तो तेरे जाने के पश्चात् घर को सोने की ईटो से भर दिया। तव लडका बोला- मैं भी कोई उससे कम नहीं हूँ। यदि उसने घर को सोने से भर दिया है, तो मैं भी घर को रत्नो और मोतियो से भरे देता हू। यह कहकर उसने उन सव छानो को पानी की गगाल मे डलवा दिया। पानी मे पडते ही गोवर गल गया और मोती—माणिक आदि रत्न चमकने लगे। पिता ने इनके पाने का हाल पूछा तव उसने सारा वृतान्त आद्योपान्त कह सुनाया। पिता ने अति हर्षित होकर कहा तू तो वहू से भी वढकर निकला है।

उधर क्या हुआ कि जिस दिन वे तीनो भाई वाप के पास से ईंटें लेकर गये थे, तभी कुछ वदमाशो ने इस वात को जान लिया। रात को जव ये आनन्द की नीद मे मस्त होकर सो रहे थे तव उन वदमाशो ने सेंध मारकर सारी सोने की ईटें चुरा ली। भाई, हराम का माल किसके पास रहा है? चोरी का माल तो मोरी मे ही जाता है। सवेरे जव वे लोग उठे और सोने की ईटो को नही देखा तो माथा पीटकर रह गये। उनका हाल पहिले से भी वुरा हो गया। यह खवर उनके पिता के पास भी पहुँची। छोटी वहू ने अपने पति से कहा—जाकर अपने भाई-भोजाइयो की भी तो कुछ खवर लो—कैसे हैं? यह उनके पास गया और उनकी वुरी हालत देखकर पूछा कि यह क्या हो गया है? उन्होंने कहा- भैया, जव से तुम गये हो, तभी से हमारी हालत खराव होती गई है। छोटे भाई ने कहा—भाई, साहवान, आप लोग अपनी नीति सुधारिये और न्याय मार्ग से चलिये, तो दशा सुधरते भी देर नही लगेगी। यदि आप अव भी न्याय नीति पर चलें तो मैं आप सवकी सेवा करने के लिए अव भी तैयार हूँ। उन्होंने कहा—हम लोग प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से सव न्याय मार्ग पर चलेंगे और धर्म को भी नही छोडेंगे। यह सुनकर छोटे भाई ने एक ओडी जवाहिरात उनके यहा भिजवा दिये। धीरे-धीरे उनका कारोवार भी सुधर गया और सव लोग आनन्द से रहने लगे।

वन्धुओ, मैं आप लोगो से पूछता हूँ कि यह आनन्द किससे हुआ ? उसमें यही कहा जायगा कि धर्म के प्रताप से । जो धर्म पर श्रद्धा रखते हैं और उस पर आचरण करते हैं, उन्हे कभी धोखा नही है । धर्म तो दुखों का विनाशक है और सव सुखो का दातार है । धर्म जव देता है तव छप्पर फाड़ कर देता है । इसलिए आप लोग धर्म का मार्ग कभी नही छोड़ें और देव, गुरु, धर्म पर अटल श्रद्धा रखकर न्यायनीति से धन उपार्जन करें तो सदा आनन्द ही आनन्द है ।

वि० म० २०२७ भाद्रपद कृष्णा १४
जोधपुर

●●

३ | सुख-दुख का कारण

सज्जनो, अतगडसूत्र का तीमरा वर्ग अभी आपके सामने आया और आज पर्युषण पर्व का दिन भी तीसरा है। आपने गजसुकुमाल जी के विषय मे सुना। उन्हे दीक्षा के प्रथम दिन ही सोमिल ब्राह्मण के निमित्त से महान् उपसर्ग का सामना करना पडा, जिससे उन्हे असह्य वेदना हुई।

परन्तु मैं आपसे पूछू कि गजसुकुमाल को यह असह्य वेदना क्यो सहन करनी पडी ? उन्हे इस कष्ट के आने का क्या कारण था ? क्योकि विना कारण के कोई कार्य नही होता है, यह तर्कशास्त्र का नियम है। भाई, प्रत्येक प्राणी अपने पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से साता-असाता या सुख-दु ख को भोगता है। आप पूछेंगे कि सुख-दु ख को देने वाला कर्म कौन सा है ? उसका नाम है वेदनीय कर्म। आज मैं इस कर्म के विषय मे आपके सम्मुख प्रकाश डालू गा।

वेदनीय कर्म का स्वरूप

वेदनीय कर्म का स्वरूप वतलाते हुए शास्त्रकारो ने कहा है—

वेयणीय पि य दुविह सायमसाय च आहियं

उत्तराध्ययन ३३।७

वेदनीय कर्म दो प्रकार का है, सुख (साता) रूप और दुःख (असाता) रूप। आचार्यों ने विस्तार करके बताया है—

अक्खाणं अणुभवणं वेयणिय सुहसरूवय साव।
दुक्खसरूवमसावं त वेदयवीदि वेयणिय ॥

जो कर्म इन्द्रियो के अच्छे या बुरे विषयो का अनुभवन करावे, उसे वेदनीय कर्म कहते है। उनमे से जो सुखरूप इन्द्रिय-विषयो का अनुभव करावे, उसे साता वेदनीय कर्म कहते हैं और जो दु खस्वरूप इन्द्रिय-विषयो का अनुभव करावे, उसे असाता वेदनीय कर्म कहते हैं।

इसी बात को दृष्टान्तपूर्वक स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

महुलित्तखग्गधारा लिहणं व दुहा उ वेयणियं।
महुआसायणसरिसो सायावेयस्स होइ हु विवागो।
ज असिणा तहि छिज्जइ सो उ विवागो असायस्स ॥

मधु से लिप्त खड्ग की धारा को चाटनेके समान दो प्रकार के विपाक (फल) को वेदनीय कर्म देता है। उनमे से मधु के आस्वादन के सदृश साता-वेदनीय कर्म का विपाक होता है। तथा तलवार से जीभ काटने के सदृश असातावेदनीय कर्म का विपाक होता है। अर्थात् जैसे शहद-लपेटी हुई तलवार की धार को चाटने से शहद तो मीठा लगता है। किन्तु तलवार की धार से जीभ कट जाती है और दु ख होता है। इसी प्रकार सातावेदनीय कर्म के उदय से जीव को सुखदायक सामग्री प्राप्त होती है और सुख का अनुभव होता है। किन्तु असातावेदनीय कर्म के उदय से दु ख देने वाली सामग्री मिलती है और जीव को दु ख का अनुभव होता है।

सुख के कारण

अब आप लोग विचार रहे होंगे कि कैसे काम करने से साता वेदनीय कर्म बंधता है और कैसे काम करने से असाता वेदनीय कर्म बधता है। शास्त्रकारो ने इसका बहुत उत्तम और स्पष्ट विवेचन किया है। तत्त्वार्थसूत्रकार कहते हैं—

भूतव्रत्यनुकम्पादान सराग सयमादियोग क्षान्ति· शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥

अर्थात्-प्राणिमात्र पर दया भाव रखना, उनके दु ख देखकर द्रवित होना, उनके दु खो को दूर करने का प्रयत्न करना, दान देना, सराग सयम पालन करना, क्षमा भाव रखना, हृदय को पवित्र रखना इत्यादि कार्यों से साता वेदनीय कर्म का वन्ध होता है।

इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कर्म ग्रन्थकार कहते हैं—

गुरुभत्ति-खति-करुणा-वयजोग-कसायविजय दाणजुओ।
दढधम्माई अज्जइ सायमसाय विवज्जयओ ॥

जो सच्चे गुरु की भक्ति करता है, क्षमा धारण करता है, जिसके हृदय मे करुणा की धारा वहती है, व्रत पालता है, दश प्रकार की समाचारी मे युक्त है, अपनी कषायो को जीतता है, दान देता है और धर्म मे दृढ है, ऐसा पुरुष साता वेदनीय कर्म का उपार्जन करता है।

दु.ख के कारण

जो उक्त कारणो से विपरीत आचरण करता है—अर्थात् गुरु की भक्ति नही करता, क्षमा भाव नही रखता, जिसके हृदय मे करुणा नही है, जो व्रत-शीलादि को नही पालता, समाचारी को धारण नही करता है, कषायो को नही जीतता है, दान भी नही देता है और धर्म मे भी जो दृढ नही है, ऐसा जीव असाता वेदनीय कर्म को वाधता है।

तत्त्वार्थ सूत्रकार ने इन कारणो के अतिरिक्त कुछ और भी कारण वतलाये हैं। यथा—

दु ख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य।

इसी वात को कर्म प्रकृतिकार भी वतलाते हैं—

दुक्ख-वह-सोग-तावाकन्दण-परिदेवणं च अप्पठिय।
अण्णट्ठिय मुभयट्ठियमिदि वावधो असादस्स ॥

अर्थात् दु ख, शोक, वध, सन्ताप, आक्रन्दन और परिदेवन स्वय करने से, अन्य को कराने से, तथा स्वय करने और दूसरो को कराने से असातावेदनीय कर्म प्रचुरता से वधता है। जो जीवो पर क्रूरता पूर्ण व्यवहार करते हैं,

स्वय तो धर्म का पालन नही करते । किन्तु धर्म-पालने वालो के प्रति भी दुर्भाव रखते है, मदिरा, च स, भाग आदि नशैली वस्तुओ का सेवन करते हैं, अडे और मास खाते हैं, व्रत शील और तपश्चरणादि के करने वालो की हसी उडाते हैं, पशु-पक्षी आदि का वध-वन्धन और छेदन-भेदन करते हैं, वैल आदि को वधिया करते हैं, मन, वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति रखते हैं, पाचो इन्द्रियो के विषय सेवन की तीव्र लालसा वाले हैं अत्यन्त क्रोधी, मानी मायाचारी और लोभी हैं, तथा हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाचो ही पापो मे अत्यन्त आसक्त हैं, ऐसे जीव असाता वेदनीय कर्म का अत्यधिक वन्ध करते हैं। ऊपर कहे गये सूत्र और गाथा मे जो सबसे अधिक ध्यान देने की वात कही है, वह यह है कि ये सभी कार्य चाहे मनुष्य स्वय करे, चाहे दूसरो से करावे और चाहे करते हुए की अनुमोदना करे, उसे सभी दशाओ मे असातावेदनाय कर्म का तीव्रता से वन्ध होगा। आजकल कितने ही लोग ऐसा समझते हैं कि जो जीव-घातक कसाई है, उसे ही पाप-वन्ध होगा, मास-भक्षियो को नही। पर यह विचार एकदम भ्रान्त है। जिस परिमाण मे कसाई पापी है, उसी परिमाण मे मास-भोजी भी पापी है और उसके भी उसी विपुलता से असातावेदनीयकर्म का तीव्र वन्ध होता है। इसके अतिरिक्त अपने आश्रित दासी-दास या पशु-पक्षियो को समय पर भोजन-पान नही देना, उनकी शक्ति से अधिक उन पर भार लादना और उनसे अधिक काम लेना आदि कार्य भी असातावेदनीयकर्म का वन्ध कराते हैं।

अव आप लोगो के ध्यान मे आगया होगा कि कैसे काम करने से जीव सातावेदनीय कर्म को वाधता है और कैसे काम करने से असातावेदनीय कर्म को वाधता है। अभी विवेचन किये गये सारे कथन का साराश यह है कि जिनका ध्यान शुभ रहता है, विचार अच्छे रहते हैं, कार्य उत्तम करते हैं और जिनकी भावना प्रत्येक प्राणी को सुख पहुचाने और उनका दुःख दूर करने की रहती है, वे जीव साता वेदनीय कर्म का वन्ध करते हैं। परन्तु जिनका ध्यान बुरा, परिणाम खोटे, वचन कठोर और कार्य प्रत्येक व्यक्ति के

लिए दुखदायक हैं और जो सदा दूसरो को दुख पहुँचाने मे लगे रहते हैं, उनके असातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

कृत-कर्म भोगना ही पड़ेगा

भाइयो, जो कर्म आप लोग हसते-हसते बाधते हैं, वे भी भोगने पडेंगे। और जो रोते-रोते बाधे हैं, वे भी भोगने पडेंगे। क्योकि आगम मे कहा है कि **'कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि'** अर्थात् किये हुए कर्मों का फल भोगे विना उनसे छुटकारा नही मिल सकता है। परन्तु देखिये-आज चलते हुए, वैठे हुए, और प्रत्येक कार्य को करते हुए आपको कर्मों का वन्ध करते किसी वात का विचार नही है। आप लोगो के तो ये विचार हैं कि शास्त्र क्या हैं, गुरुजन क्या हैं और भगवान् की वाणी कहा है ? हमे तो जीवन का आनन्द और खान-पान का मजा लेने दो। परन्तु भाई, यह जीवन का मजा नही, कजा है, क्योकि इसके फलस्वरूप आगे वडी भारी सजा मिलने वाली है। आज जो आपको थोडा सा छोटा वीज दिखाई देता है, वही आगे जाकर वडा भारी पहाड वन जायगा।

आप लोगो ने अभी मेरे से पहिले मुनि जी से सुना कि गजसुकुमालजी के केश-लुचन किये हुए मुडित मस्तक पर सोमिल ब्राह्मण ने चिकनी मिट्टी की पाल वाधकर खैर के धधकते हुए अंगारे रख दिये। अव कहो-उनके कष्ट का कोई पार था क्या ? पर विचारने की वात यह है कि उन्हे इतना महान् कष्ट क्यो भोगना पडा ? वात यह है कि गजसुकुमाल जी के जीवने ९९ लाख भवो के पहिले ऐसे ही असातावेदनीय कर्म का वन्ध किया था, जिसका फल इस भव मे उन्हे उसी प्रकार से भोगना पडा।

गजसुकुमाल के कर्म वध का कारण

वहुत पुराने समय मे एक नगर मे एक सेठ था। उसकी शादी एक स्त्री से हो गई थी, परन्तु उससे कोई सन्तान उत्पन्न नही हुई। तव उसने दूसरा विवाह किया। भाग्य से उसके एक पुत्र उत्पन्न हो गया। इसलिए उसका सन्मान वडी सेठानी से अधिक होने लगा। यह देख वडी के मन मे ईर्ष्या भाव पैदा हो गया। वह सोचने लगी कि 'यदि किसी प्रकार मेरे भी पुत्र

उत्पन्न हो जाय तो मेरा भी सन्मान होने लगे। पर भाई, यदि लडका होने का योग होता, तो सेठ दूसरा विवाह क्यो करता ? धीरे-धीरे उसके मन मे ईर्ष्या की अग्नि वढती गई और वह सौत के लडके को मारने की घात मे रहने लगी। दुर्भाग्य के उदय से उस वालक के सिर मे छोटे-छोटे अनेक फोडे पैदा हो गये। उसकी वेदना से वह वालक कराहने लगा। अनेक उपचार कराने पर भी वे फोडे मिटे नही। तव किसी ने वताया कि बाजरे के आटे की मोटी रोटी वनाकर गर्म-गर्म रोटी से माथे के फोडो को सेंकने से वच्चे को आराम मिलेगा और फोडे भी साफ हो जावेंगे। छोटी सेठानी इसी से उसका उपचार करने लगी। और वच्चे को भी वहुत कुछ आराम मिला। एक दिन छोटी सेठानी को किसी पडौसी के यहा गीत गाने का बुलावा आया। तव उसने वडी सेठानी से कहा—वडी जीजी, मैं अमुक के घर गीत गाने को जा रही हू, आप इसके सिर को वाजरे की रोटी से सेंक देना, जिससे कि यह सो जाय। वडी सेठानी ने कहा—तुम चिन्ता मत करो, मैं सव कर दूगी। इधर तो छोटी सेठानी गई और उधर वडी सेठानी ने बाजरे का आटा उसना, रोट वनाया और गर्म गर्म रोट मे पहिले तो खूव सेंका और फिर खूव गर्म-गर्म रोट को सिर पर रख के कपडे से कस कर वाध दिया। अव आप लोग स्वय ही सोच सकते हैं कि वह छोटा सा मासूम वच्चा उस गर्मी को कैसे सहन कर सकता था ! अत वह सदा को सो गया।

उस वाल हत्या के महापाप से मर कर उस सेठानी का जीव लाखो योनियो मे असख्य दु खों को भोगता हुआ किसी पुण्य योग से श्रीकृष्ण के यहा गजसुकुमाल के रूप मे उत्पन्न है। परन्तु उस सेठानी के भव मे वाधा हुआ वह असातावेदनीय कर्म का निकाचित वन्ध ज्यो का त्यो पडा हुआ था। उसका व्याज वढता गया, जिसके फलस्वरूप इसके सिर पर धधकते खैर के अगारे रखे गये। निकाचित रूप से वधे कर्म जिस रूप से वधते हैं, उसी रूप से उदय मे आते हैं। गजसुकुमाल के जीव ने उस वच्चे के माथे पर वह रोट वाधकर उसके प्राण लिये थे तो इस भव मे उनके भी मस्तक पर रोट से भी कई गुने गर्म अगारे रखकर उनकी इह जीवन-लीला समाप्त हुई। यह दूसरी वात है

कि उन्होंने उस ब्राह्मण के द्वारा दिये कष्ट को अपने ही पूर्वोपार्जित पाप का परिपाक माना और उस महा कष्ट को शान्ति से सहन करके सब कर्मों का नाश कर वे मोक्ष पधारे।

भाइयो, अभी तो आप लोग हसी-मजाक के वशीभूत होकर चलते-फिरते हुए मजा-मौज से कर्मों का बन्ध कर लेते हैं। परन्तु अभी के बधे हुए ये कर्म जब उदय मे आवेंगे, तब उनका भोगना कठिन हो जायगा। आप किसी अन्धे को जाते हुए देखते हैं और यह भी देख रहे हैं कि सामने एक खड्डा है। उस बेचारे को तो दिखता नही है। परन्तु आप बैठे हुए उसकी मजाक करते हैं और कहते हैं कि सूरदास जी लकडी के हाथ जाओ। (जिधर कि खड्डा है।) बेचारा वह आपके कथनानुसार उसी हाथ जाता है और गड्डे मे धडाम से गिर पडता है, उसके हाथ-पैरो मे चोट आ जाती हैं, और माथे मे खून बहने लगता है। फिर भी आप लोग बैठे बैठे हसते है, खुश होते हैं और कहते हैं कि वाह, वाह, खूब गिरा! पर आप लोगो को यह ध्यान नही है कि हमने इस जरा सी हसी-मजाक मे कितने घोर दुःखदायी कर्मों का बन्ध कर लिया है। जब इनका परिपाक काल मे फल मिलेगा तब याद आयेगा कि हाय, ऐसे दुष्कर्म हमने कब और कैसे बाध लिये? आज तो चलते-फिरते इस प्रकार के अनेक पाप कर्मों का आप नित्य बन्ध करते रहते हैं। अब तो आप लोगो को न तो खाने की मर्यादा रही है और न बैठने-उठने की ही, अकारण ही आप लोग कर्म बन्ध करते रहते हैं।

अविवेक से व्यर्थ ही कर्मबध

आजकल बरसात का मौसम है। त्रस जीवो की उत्पत्ति इन दिनो मे अधिक होती है। घर मे पडी लकडी और रखे कोयले मे भी जीव आकर बैठ जाते हैं। आपने उन्हें बिना देखे ही चूल्हे और सिगडी मे जला दिये। लकडी और कोयले की पडिलेहना-प्रमार्जना नही की और उनमे रहे हुए जीवो के प्राण ले लिये। यह आपके विवेक की कमी है। आप चलते हुए वृक्ष की डाली पकड कर उसे तोड देते हैं, घास को उखाडने जाते हैं और पत्र-पुष्पादिक को अकारण या निष्प्रयोजन ही छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। यह सब अनर्थदण्ड

है। इसके द्वारा भी आप व्यर्थ के पाप बाधते रहते हैं। कभी मार्ग मे जाते समय किसी वृक्ष को हरा-भरा देखकर कहने लगते हैं कि इसका तना कितना मोटा और सीधा है, यदि इसे काटा जाय तो इसमे से अनेक लम्बे चौडे पाटिये निकलेंगे। यह बकरा कितना मोटा है, इसमे दो मन मास निकलेगा। भाइयो, बोलो—ऐसे अनर्थकारी बोल बोलने से आपको क्या लेना-देना है? अरे, भाग्यशाली पुरुष तो कर्मों को हटाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु दुर्भागी लोग व्यर्थ मे ही कर्मों का बन्ध करते रहते हैं। किसी सेठ की दुकान पर मुनीम काम कर रहा है, तब कहता है—मुनीम जी, व्याख्यान का समय हो गया है, आप व्याख्यान सुन आओ। मुनीम कहता है कि सेठ सा०, यह काम का समय है। सेठ फिर कहता है कि भाई, घटे-दो घटे मे मेरे कौन सी अधिक कमाई हो जावेगी? आप काम रहने दे और जाकर व्याख्यान सुन आवें। एक तो ऐसा भला सेठ है जो मुनीम आदि को धर्म साधन एव व्याख्यान-श्रवण की स्वय सुविधा प्रदान करता है। और दूसरा ऐसा है कि मुनीम के व्याख्यान-श्रवणार्थ जाने की पूछने पर कहता है कि देखो—यह नौकरी है, भाई चारा नही है। यदि व्याख्यान सुनने की अधिक इच्छा है, तो छुट्टी लेलो और फिर खूब सुनो। यदि नौकरी करना है, तो समय पर आना पडेगा और पूरे समय काम करना पडेगा। बीच मे इधर-उधर कही भी नहीं जा सकते। देखो - ऐसा कह कर वह कितना अन्तराय कर्म बाधता है?

आप लोग गृहस्थी के भीतर भी देखते हैं कि बहू के लिए कपडे-गहने बनवाये गए हैं। फिरे भी कई माँ-बाप ऐसे होते हैं जो कहते हैं कि क्या तेरे बाप का माल है? इन्हें खोल दे, मत पहिन! बेचारी बहू को खोलने पडते हैं। भले ही वे वस्त्राभूषण पडे-पडे सड जाये, बिगड जाऍं, परन्तु वे उसे काम मे नही लेने देंगे। एक बार मैं एक गाव मे था। वहा के एक सेठ का लडका तभी दिसावर से आया। वह एक बढिया साडी लाया था सो अपनी स्त्री को दे दी। वह उसे पहिनकर सासू के सामने गई। उसे पहिने हुए देख कर सासू ने हजार गालियाँ सुनाई और कहा—राड, तू यह कहाँ

से लाई ? उस बेचारी ने उसे खोलकर रख दी। दुर्भाग्य से तीसरे दिन लडका बीमार पडा और पाचवें दिन मर गया। बताओ—ऐसी माँ को माँ कहा जाय, या डाकिन कहा जाय ? किसी के भोग--उपभोग मे आड देना, दूसरे का काम बिगाड देना और झगडा-टटा करना ठीक नही है। इससे असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है। कितने ही दुर्भागी मनुष्य ऐसे होते हैं कि अन्य साधारण दिनो मे तो शान्ति रख लेते हैं, किन्तु होली, दिवाली और राखी आदि त्यौहारो के दिनो मे घर वालो को शान्ति मे खाने नहीं देते हैं, कलह करते हैं और कोई न कोई झगडा-फिसाद की बात उठाकर घर मे कुहराम मचा देते है, जिससे बनी हुई खाद्य-सामग्री भी कुत्तो और गधेडो को ही डालनी पडती है। इस प्रकार के सहज मे बाधे गये कर्म जब उदय मे आते हैं, तब कहते हैं कि हमने इस भव मे तो बाधे नही, न मालूम कब के बाधे हुए कर्म उदय मे आये हैं। अरे, जब बाधे थे तब तो हस-हस करके बांधे थे, और अब जब वे उदय आये हैं तो भोला बनता है और कहता है कि इस जन्म मे तो मैंने बाधे नही हैं ? अभी गुरुजन सावधान कर रहे हैं, फिर जब ये ही कर्म उदय मे आयेंगे, तब रोयेगा और कहेगा कि हाय, मैंने ये कैसे कर्म बाधे ?

आजकल लोग अपने धन का, परिवार का, रूप का, अधिकार का, बल का, ज्ञान का, ऐश्वर्य का, कुल का और जाति का अहकार करते है कि मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हू ? मेरे जैसा कोई नही ? इस प्रकार मदान्ध होकर अभी तो पुण्य-पाप की कुछ परवाह करते नही और नाना प्रकार के असाता देने वाले पाप कर्मों को बाधते रहते हैं। पीछे इन्ही कर्मों के उदय आने पर रोते हैं कि हाय भगवान् मेरे पर यह क्या आपत्ति का पहाड टूट पडा। दीन-बन्धो, मेरी रक्षा करो, मुझे बचाओ। पर दीनबन्धु भगवान् कहते हैं कि भाई जब मैं तुम्हे पुकार-पुकार कर बुरे कामो को करने से रोक रहा था, तब तो तुमने मेरी एक न सुनी एक भी बात मानी नही ? अब मैं क्या कर सकता हू। अब तो तुम्हे किये कर्मों का फल भोगना ही पडेगा। यदि अब भी आगे के लिए अपना भला चाहते हो तो ऐसे कामो के करने का

परित्याग करो और जो काम कर चुके हो, उनके लिए अपनी आलोचना, निन्दा और गर्हा करो, तथा उदयागत कर्म को शान्ति से सहन करो तो अवश्य ही तुम्हारा भविष्य सुधर जायगा।

साता देने से साता

जो जीव पूर्व भव से साता वेदनीय कर्म को वाध करके आये हैं, उन्हे पिता, पुत्र, माता, भाई, बहिन, स्त्री, नौकर, चाकर और मुनीम-गुमास्ते आदि सभी अच्छे मिलेंगे, पडौसी और नगर-निवासी तक उत्तम मिलेंगे। वे जिधर दृष्टि डालेंगे, उधर साता ही साता नजर आयगी। जैसे कि तीर्थंकरादि महापुरुषो को प्राप्त होती है। भ० महावीर ने कहा है—

समाहिकारए ण तमेव समाहिं पडिलब्भई।

—भगवतीसूत्र ७।१

समाधि-सुख देने वाला समाधि सुख पाता है। किन्तु जो असातावेदनीय कर्म को वाध कर आए हैं उन्हे प्रथम तो धन, परिवार आदि मिलेंगे ही नही। यदि मिल भी गये तो एक समय के लिए भी साता नसीव नही होगी। भाई, जब दूसरो को जो असाता पहुचा कर आया है, वह अब साता कैसे प्राप्त कर सकता है। हम भले ही आज ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण आदि कुलो मे जन्मे न हो, परन्तु भीतर जिनके विचार बुरे हैं, दूसरो को कष्ट पहुचाने के हैं और दूसरो के साथ छल-कपट कर नीचा दिखाने के भाव रखते हैं, वे सातावेदनीय कर्म को किस प्रकार वाध सकते हैं ? कभी नही वाध सकते हैं। वे तो अपनी पापमयी भावना के फल से आगे दुःख ही भोगने की सामग्री सचय कर रहे हैं। उन्हे तो उसके फल से इसी जन्म मे भी दुःख भोगने पड़ेंगे और आगामी जन्म भी नरक-निगोदादि के दुःख भोगना पड़ेंगे।

दो भाई

मारवाड के एक गाव की बात है। गाव का नाम मैं नही बताऊगा। दो भाइयो के पास पांच-सात लाख की पूजी थी। उनकी आपस मे नही बनी तो वे न्यारे-न्यारे हो गये। यह सब कुछ औरतों की लड़ाई-झगड़े के कारण

हुआ। न्यारे होने के वाद वडे भाई की पुण्यवानी प्रवल थी, अत उसके और भी लक्ष्मी वढती गई। परन्तु छोटे भाई की पुण्यवानी हल्की होने से उसके घाटा ही घाटा होता गया। घर में खर्च ज्यो का त्यो चले और दुकान मे टोटा ही होता रहे, तो घर कितने दिन वना रह सकता है ? आखिर ऐसा समय आया कि दुकान वन्द हो गई और रहने का मकान भी विक गया। खाने के लिए घर मे कासे के वर्तन भी नही रहे। इधर वडा भाई पहिले भी लखपति था, और अव चौगुनी लक्ष्मी वढ गई, तो ठाट-वाट से रहने लगा। मोटर भी रख ली और नौकर-चाकर भी वढ गये। एक दिन छोटा भाई वडे भाई के पास गया और वोला—भाई साहव, आप और हम एक ही मा के पेट से उत्पन्न हुए हैं। परन्तु आज मेरी ऐसी स्थिति हो गई है, इसलिए कुछ मेरी सहायता करें तो मैं अपना काम चला सकू। यह सुनकर वडा भाई वोला—देखो, मैंने तुम्हारा हिस्सा वाटकर तुम्हें दे दिया। अव तुम निर्धन हो गये तो यह तुम्हारी तकदीर की वात है। मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नही कर सकता हूँ। छोटे भाई ने वहुत अनुनय-विनय करके कहा कि यदि आप मेरी सहायता नही करेंगे तो हम सव लोगो को भूखा मरना पडेगा। वडा भाई वोला—मेरी तरफ से तुम कल मरते थे तो आज मर जाओ। इसकी मुझे कुछ परवाह नही है, पर मैं कुछ भी मदद नही दूगा। जव छोटे भाई ने वडे भाई के ऐसे वचन सुने तो वह हताश होकर अपने घर चला आया। कुछ दिन किसी प्रकार उसने काम चलाया। आखिर एक दिन ऐसा आया कि घर मे आटा-दाल कुछ भी नहीं रहा। दो दिन स्त्री और पुरुष को उपवास करते वीत गये। तीसरे दिन छोटे वच्चा वच्ची भूख के मारे तिल मिला उठे और रोटी-रोटी चिल्लाने लगे। भाई, भूख की पीर भी कम नही होती। एक कवि ने कहा है कि—

खोटी रोटी की है पीर, हाल सुन नैना वरसै नीर।
दुखियो की हालत को सुनकर जाय कलेजो चीर।

वन्धुओ, पैसे को हाथ-पैर नही कमाते हैं, दिमाग नही कमाता है, परन्तु भाग्य कमाता है। यह ठीक है कि उद्योग करना मनुष्य का

कर्त्तव्य है। किन्तु सफलता मिलना भाग्य के अधीन है, वह अपने हाथ मे नही है।

हा, तो वे वच्चा वच्ची विलख रहे हैं और कहते हैं कि मा, रोटी दो, रोटी दो। मा कहती है कि वेटा, अभी लाती हू। अव उसने धनी से कहा कि रोटी का कुछ न कुछ उपाय करो। वह घर से निकला। उसने अपने जीवन मे आज तक कभी किसी के आगे हाथ नही फैलाया था। वह समाज के कितने ही वडे लोगो की दुकानो पर गया। पर जव कोई उसे नौकर रखने को भी तैयार नही हुआ, तव सहायता देना तो वहुत दूर है। ऐसे तो अपनी जाति वडी ऊंची रही है, और समाज भी ऊचा है। परन्तु आज समाज मे ऐसे लोग पैदा हो गये है कि दुखियो का कोई धनी धोरी नही रहा है। कहा भी है—

सव ही सहायक सवल के, कोई न निवल सहाय।
पवन जरावत आग को, दीप हि देत वुझाय॥

सभी लोग मोटो के—लाठो के—सहायक हैं, परन्तु दीन-पुरुषो का सहायक कोई नही है। अरे, आप जैनी लोग ही दया नही पालेंगे, तो क्या कसाई पालेंगे? कोई भाई अपाहिज है, स्त्री वुड्ढी है, आदमी अपग है और घर मे कोई पानी पिलाने वाला भी नही है। ऐसी अवस्था मे यदि आप ढाढस वधाकर कह दें कि भाई, घवराओ नही, मैं तुम्हारा यह काम कर दूगा और खाने-पीने का भी प्रवन्ध कर दूगा। तो इतना कहने भर से उसको कितनी शान्ति मिलती है। पर आज इतना कहने वाले भी समाज मे नहीं दिखाई देते हैं।

हा, तो वह भाई कई लोगो की दुकानो पर गया, काम करने की प्रार्थना भी की। मगर कही भी काम नही वना। आखिर उसने घर लौट कर कहा—अभी तो मा सा० जीवित हैं। और जेठ-जिठानी भी है, तू उनके पास जा और सेर-दो-सेर आटा उधार ही ले आ। उसके कपडे भी फट गये थे। वह अपनी लाज भी नही वचा सकती थी। अत पति की बात सुनकर वडी चिन्ता मे पडी कि ऐसी हालत मे मैं कैसे सासू और जिठानियो के सामने

जाऊ ? अरे, गरीवो पर कैसी वीतती है, यह मालदारो को पता नही है। कहा है कि—

'जिसके घर में हो कगाली, सवरग विगड़ जाता है।
कोई मूंढे नहीं लगावे, अजी उलटा उसे फसावें
वेचें लोटा थाली, जिस के घर मे हो कंगाली।

भाइयो, जिसके घर मे यह कगाली-दरिद्रता-घुस जाती है, फिर उसकी आत्मा ही जानती है। गरीवी आने पर लोग इस पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए घर के नये वर्तनो को भी तोड-फोड कर वेंचने लगते हैं। कहो कि किस दुःख से वेचते है ? अरे, इस पेट की ज्वाला को तो शान्त करनी ही पडती है।

हाँ, तो छोटे भाई की स्त्री अपने फटे कपडो को ठीक-ठाक करके जेठ की हवेली मे गई। उसे देखते ही जिठानी आखे फाडकर देखने लगी की यह यहा क्यो आई ? आखिर वह सासूजी के पास गई और उनके पैरो मे पडकर कहा कि आपके वच्चे भूखो मर रहे है। इसलिए दो सेर आटा चाहिए। वह माग रही है और आँखो से आसू टपाटप गिर रहे हैं। परन्तु वह सासू भी जले पर नमक छिड़कने को करती हुई पहले तो वुरी गालियाँ वकी। पीछे किसी प्रकार जलते-भुनते हुए उसने दो सेर आटा दे दिया। परन्तु जेठानी कहती है कि सासू जी, यह आटा क्यो गवा रही हो ? परन्तु छोटे भाई की वहू ने तो उनका एहसान ही माना और उनके द्वारा अपमान किये जाने का कोई विचार नही किया। वह आटा लेकर घर पर आई और परात मे डाल कर उसे उमनना शुरु किया। इधर तो वह आटा उसन रही है और उधर उसका जेठ अपनी हवेली पर पहुँचा। पत्नी को वडवडाती देखकर पूछा कि क्या वात है ? उसने कहा कि मा सा० ने देवरानी को दो सेर आटा दे दिया है। यह सुनते ही वह अपनी माँ से वोला—क्या तेरी भी मोत आ गई है ? तूने उस चडालिन को आटा क्यो दिया ? वह पीछे पैरो लौटा और छोटे भाई के घर पहुचा। वहू को आटा उसनते हुए देखकर भद्दी-भद्दी गालियाँ देने लगा। उससे वे महन नही हुई तो शर्म छोडकर उसने कहा—

जेठ सा०, आप पिता के समान हैं, आपको ऐसी गालिया देना शोभा नही देता है। आटा तो मैंने उसनलिया है। यदि आपको नही देना है, तो ये रहा आटा। वडे भाई ने विना कुछ आगा-पीछा सोचे ही परात उठाया और बाहिर आकर आटा कुत्तो को फेंककर और परात को फोड के घर के भीतर फेंकता हुआ अपने घर चला आया।

कहो भाइयो, क्या यही ओसवालों की दया है ? क्या यही हरी वनस्पति की रक्षा करने वाले और पानी छानकर पीने वाले जैनियो की दया है ? अव कहो कि ऐसा अपमान-जनित दु ख कैसे सहन किया जाय ? इधर वच्चा वच्ची कह रहें है कि मा रोटी दो ! वच्चो के ये शब्द सुनते ही उस वहू की आखो से आसुओ की धारा वह निकली, फूट-फूट कर रोने लगी और रोते हुए वोली—हे प्रभो, यह आपत्ति का पहाड कहा से टूट पडा ? आज वच्चे रोटी के विना विलख रहे हैं और उन्हे रोटी का टुकड़ा भी देने मे समर्थ नही हू। ऐसे जीने से तो मर जाना ही अच्छा है। यह सोचकर किसी से कुछ कहे विना ही वह अपने लडके - लडकी को लेकर घर से निकली और गाव के वाहिर वावडी पर पहुची। उसने वच्चो को वावडी के पाल पर बैठाकर कहा कि मैं रोटी लेकर आती हू। और स्वय वावडी के भीतर जाकर पानी मे कूद पडी और मर गई। मनुष्य को जव असह्य दु ख हो जाता है तव वह आत्मघात कर बैठता है।

इधर छोटा भाई गाव मे गया था सो किसी की मिन्नतें करके सेर-सवा सेर अनाज लेकर घर आया। घर को खुला और सूना पडा देखकर उसने पड़ौसियो से पूछा तो एक ने वताया कि तेरा वडा भाई अभी कुछ समय पहिले तेरे घर आया था। वह तेरी वहू से लडा और उसना हुआ आटा कुत्तो को खिलाकर चला गया। इसके वाद तेरी वहू दोनो वच्चो को लेकर इधर चली गई। यह सुनते ही उसका दिल दहल गया और वह सीधा गाव के वाहिर उसे ढूढने निकला। वापडी पर जाकर देखा कि दोनो वच्चे बैठे हुए रो रहे हैं। वच्चो को देखते ही उसने उन्हे छाती से लगा लिया और उनसे पूछा तुम्हारी मा कहा गई है ? वच्चो ने रोते हुए वताया कि वावडी मे रोटी

लेने को गई है। और हमे यहा पर कह गई है कि रोटी लेकर अभी आती हूँ। उसने वावडी मे झाक कर देखा उसने स्त्री की लाश पानी के ऊपर तैरती दिखाई दी। यह देख उसने भी सोचा कि अब मैं भी जिन्दा रहकर क्या करूगा ? वस उसने दोनो वच्चो को दोनो वगलो मे दवाया और धडाम से वावडी मे कूद पडा। हाय री गरीवी, तुने कितना जुल्म किया और एक पूरे घर को ही समाप्त कर दिया !!!

भाइयो, उस वडे भाई के हीन दृष्टिकोण और बुरे व्यवहार से चार जीवो को विना मौत के मरना पडा और एक पूरा घर समाप्त हो गया। थोडी ही देर मे यह समाचार सारे गाव मे विजली के समान फैल गया। सारे गाव के लोग हाहाकार करने लगे, सव अपने-अपने घरो मे उस दुष्ट भाई की नीचता को धिक्कारने लगे। परन्तु उस लखपति भाई के घर जाकर किसी को भी यह कहने का साहस नही हुआ कि अरे नीच, आज तेरी नीचता के कारण ही चार जीवो के प्राण गये हैं और तू ही इन चार हत्याओ का अपराधी है। यदि तू जरासा सहारा दे देता और आज उसना आटा फेंककर कुत्तो को न खिलाता तो यह नौवत क्यो आती ? भाई, यदि किसी गरीव के द्वारा यह अनर्थ हुआ होता, तो दुनिया उसे अग्नि मे होम देती। परन्तु आज पू जी वालो से ऐसे ऐसे अनर्थ कर देने पर भी कौन कहने की हिम्मत करता है ? कौन कह सकता है कि यह दोपी है। ऐसी दशा आज कितने ही स्थानो पर हो रही है, परन्तु इस पर कोई विचार नही करता है।

अन्धेर नहीं, देर

परन्तु भाइयो, आखिर बुरे का फल बुरा ही होता है। कुदरत के घर मे देर हो सकती है, पर अन्धेर नहीं हो सकता। जो जैसा करता है, उसे एक न एक दिन वैसा ही भोगना भी पडता है। तुलसीदास जी कह गये हैं कि '**जो जस करहि सो तस फल चाखा**। वस, फिर क्या था ? पाच वर्ष के वाद जव उसके भी पाप का घडा भर गया, तो वह फूट गया। उसे भी व्यापार मे ऐसी टक्कर लगी कि सारी पूंजी ठिकाने लग गई और शरीर मे भी असाध्य रोग लग गया। उसके शरीर से राध और रक्त झरने

लगा और शरीर मे कीडे पड गये। अन्त मे भयकर वेदना से कराहते हुए वह मर गया। भाइयो, ससार का हाल देखो कि घर मे सब कुछ होते हुए भी सगे भाई के लिए उसका दिल कितना कठोर बन गया कि दो सेर आटा देना भी सहन नही हुआ। और उन चार प्राणियों को पेट की ज्वाला मे जलकर असमय मे मरना पडा। बताओ, ऐसे निन्द्य एवं घृणित कार्य करने वाले लोग क्या साता वेदनीय कर्म बाध सकते हैं ? कभी नही ? वे तो ऐसे तीव्र असातावेदनीय कर्म का बन्ध करेंगे कि अनेक भवो तक कुयोनियो मे अनन्त दु खो को भोगते रहेंगे। जीवो के द्वारा उपार्जन किये गए छोटे या बडे सभी पाप कर्म समय पर उदय आते ही हैं। जो मनुष्य जिस व्यक्ति के साथ जैसा खोटा व्यवहार करता है, वह परभव मे उसका बेटा-बेटी होकर साझेदार होकर या गाय-भैंस बनकर बदला लेता ही है। भाइयो, याद रखो कि ऋण और वैर ये दो कभी नही छूटते हैं। इनको तो भोगना ही पडता है।

आज आप लोग छोटी-छोटी बातो के लिए भी कितना छोटापना दिखाते हैं कि जिसकी कोई सीमा नही है। आपके लडके की सगाई होती है तो पहिले से ही पच्चीस-पचास मोहरें तय कर लेते है। लडकी वाला मजबूरी मे कबूल कर लेता है। मगर घर मे न होवे तो कहा से देगा। यदि कोई कबूली हुई मोहरो मे से कुछ कम दे पाता है, तो आप लोग क्या करते है कि लडकी को वापिस नही भेजते हैं। इस प्रकार के कार्यों से क्या आप अन्तराय कर्म नही बाधते हैं और क्या असातावेदनीय का बन्ध नही कर रहे हैं ? आज आपके इस बडे समाज मे बीस-पच्चीस वर्ष की बडी बडी अनेक लडकिया पीहर मे बैठी हुई अपने भाग्य को रो रही है और आप लोगो को कोस रही हैं। हे समाज के सिर मौर और धर्म के अनुयायियो, क्या आप लोगो को इस बात का जरा भी विचार है कि हमारे समाज की क्या हालत हो रही है ? और कितनी बुरी दशा से समाज गुजर रहा है ? तुलसीदासजी ने कहा है कि—

तुलसी हाय गरीब की, कबहु न निष्फल जाय ।
मरे बैल के चामसे, लोह भस्म हो जाय ।।

भाई, गरीबो के अन्तरग से निकली हाय कभी निष्फल नही जाती है । वह एक न एक दिन अपना रग दिखा करके ही रहती है । इन गरीबो के शाप मे जाति का बडा बिगाड हो रहा है । आज जाति में बडा ओछापन आ रहा है । यदि इसी प्रकार दिन पर दिन बिगडते ही चले गये तो फिर सुधार की आशा दुराशा मात्र होगी । लोगो को अपने पेट की ज्वाला तो शान्त करनी ही पडेगी । आपके सामने छत्तीसो ही जातिया अपना पेट भर रही हैं और आपके नौजवान लोगो के सामने जावें और कहे कि ठेकेदार सा०, मिहरबानी करो और हमको भी नौकर रख लो । अरे, पहिले वे लोग आपके यहा से पेट भरते थे और आज आपके लडके उनके यहा पेट भरने के लिए जावें ? यह आप-लोगो के लिए बडे शर्म की बात है । आपकी समाज के भाई आपकी दुकान पर काम करने के लिए आजायें तो आप उनको रखने के लिए तैयार नही । भले ही आप अन्य समाजवालो को रख लेंगे फिर चाहे वे आपके घर का सफाया ही कर देवें और चोरिया करे । परन्तु उनको आप रखते हैं । इसका यही मतलब है कि आपके हृदय मे जाति का प्रेम नही,अपने घर वालो मे प्रेम नहीं, साधर्मियो से स्नेह नही है । फिर बताओ—सातावेदनीय कर्म कैसे बधेगा ?

बांधने वाले आप ही हैं

भाइयो, हम सातावेदनीय को बाधने वाले हैं और हम ही असातावेदनीय को बाधने वाले हैं । जैसा कि अभी पहिले बता चुके हैं—भले कामो से—शुभ कार्य करने से सातावेदनीय कर्म बंधता है और बुरे कामो से—अशुभ कार्य करने से असातावेदनीय कर्म बध जाता है । असातावेदनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा-कोडी सागरोपम की है । एक बार का तीव्र दुर्भावो से बधा हुआ कर्म इतने लम्बे काल तक फल देता हुआ चला जाता है । सभी नारकियो के जीवन भर असाताकर्म का उदय चलता है और सभी देवो के जीवन भर साता कर्म का उदय रहता है । किन्तु मनुष्य और तिर्यंचो

के इन दोनो का उदय धूप-छाया के समान वदलता रहता है। यदि आप लोग अपने असाता कर्म के तीव्र उदय को ढीला करना चाहते हैं, उन्हे चाहिए कि वे दीन, अनाथ, अपाहिज और रोगी पुरुषो की सेवा करें। भगवान् ने मुनिराजों तक को परस्पर मे वैयावृत्य करने का उपदेश दिया है। श्रावको के लिए सेवा करना वताया और मुनियो के लिए वैयावृत्य करना कहा। मगर दोनो शव्दो का अर्थ एक ही है। अलग-अलग दो शव्द कहने का अभिप्राय यह है कि मुनिजन सेवा-टहल यतनापूर्वक करते हैं, इसलिए उनका यह कार्य वैयावृत्यतप हो जाता है और आप खुले हैं। अत आपकी सेवा-टहल तप का अग न होकर पुण्य की साधना है।

आप लोगो को यह वात अव ध्यान मे आगई होगी कि साता वेदनीय कर्म उत्तम विचारो से, प्रिय वचन वोलने से, काया से दूसरो की सेवा टहल करने से और धन के द्वारा दूसरो को सहायता पहुचाने से साता वेदनीय कर्म वधता है। आज कितने ही स्थानो पर ऐसे-ऐसे पुण्यवान् पुरुष भी मौजूद हैं कि जिनकी दुकान पर कोई गरीव जरूरतमन्द आया और उसने कहा कि सेठ जी, गेहू की जरूरत है। सेठ जी कहते हैं कि ले जाओ भाई। वे यह नही पूछते हैं कि पैसे लाये हो, या नही? वे अनाज तौलते-तौलते दो मोहरें डाल देते हैं। जव वह अनाज को घर ले जाकर साफ करता है और उसमें से मोहरें निकलती देखता है तो ले जाकर सेठ जी को देता है। तव सेठ जी कहते हैं कि भाई, मोहरें मेरी नही हैं। कही कोई अनाज मे मोहरें भी रखता है? जाओ-ले जाओ, ये तुम्हारे पुण्य से कहीं से आगई हैं। भाई, मदद पहुचाने का यह तरीका है। भाई, पच्चीसा काल पड गया पाली मे। उस समय वहा पर काकरिया जी का घर वडा जवर्दस्त था। उन्होंने लड्डुओ की प्रभावना वाटी तो उन्होने उनके भीतर मोहरें डलवा करके लड्डु वनवाये और उन्हे गरीव साधर्मी भाइयो के यहाँ वटवाये। वे काकरिया जी अव वहा नही रहे हैं। उनका एक घर यहा जोधपुर आ गया है और एक घर महामन्दिर मे चला गया परन्तु आज भी उनके काम का नाम चल रहा है। हालाकि कोई आदमी उनके घर का वहा नही रहा है

और अव उनके वशजो के पास पैसा भी नही रहा है। रतलाम मे भी एक नगर सेठ ऐसे हो गये हैं, जो राखी के त्योहार पर लड्डुओ मे मोहरे रखकर गरीव साधर्मी भाइयो के घर पाच-पाच लड्डू भिजवाते थे। जव कोई आकर के कहता कि सेठजी, लड्डुओ मे ये मोहरें निकली हैं, आपकी है,आप इन्हे ले लो। तव वे कहते—वावले हो गये हो ? क्या कोई लड्डुओ मे मोहरें रखता है। तुम्हारे पुण्य से तुम्हारे ही घर पर ये प्रकट हो गई हैं। इस प्रकार कह कर उन लोगो को लौटा देते थे। भाई, समाज सेवा का और साधर्मी वात्सल्य का यह तरीका पहिले अपनी समाज मे प्रचलित था। और यह तो अभी तक प्रथा चली आ रही है कि पर्व-त्योहार पर अपने घर वने पकवानो और लड्डूओ को लोग पडौसी एव गरीव साधर्मी भाइयो के यहा भिजवाते हैं। शायद वडे शहरो की चकाचौंधी मे आप लोग इस प्रथा को भी भूल गये होंगे। पर गावो मे यह प्रथा वरावर आज भी चालू है। आप लोग आज अपने पडौसी और भूखे वाल-वच्चो का तो ख्याल नही रखें और यहा हमारे पास आकर पाच-पाच सामायिकें करें और दया पाले। मैं पूछता हू कि यह कैसी दया करते हो ? अरे, वह तो दया दिल मे है कही वाहिर से लानी नही है। उसका तो हमे वहुत विचार करना चाहिए।

भाइयो, आज एक वात कहने हुए मुझे वडा दु ख हो रहा है। मेरे पास अभी सरदारपुरा के लडके आये और कहने लगे कि महाराज साहव, पहिले माथुर सा० हैडमास्टर थे तो वे पर्युषण पर्व मे आठ दिन की छुट्टिया रखते थे। परन्तु अव ओसवाल हेडमास्टर आये हैं तो उन्होने इन दिनो की छुट्टिया वन्द कर दी हैं। भाई वताओ कि हम आपके कैसे गुण-गान करें ? और कैसे मीठे वोलें ? यदि कडवा वोलते है तो आप लोग कहते हैं कि महाराज, आप तो कडवा वोलते हैं। जव माथुर सा० हेड मास्टर थे, तव वे पर्युषण पर्व का महत्त्व रखते थे। और अव ओसवाल साहव कहते हैं कि इन दिनो छुट्टियो की क्या आवश्यकता है ? यदि हडताल हो जाय तो दिनो के दिन और महीने ही पूरे हो जायें, तव तो उसका उन्हें रोना नही है। परन्तु पर्युषण की छुट्टियो पर अवश्य विचार करते हैं। सस्था के जो प्रेसीडेन्ट और

सेक्रेटरी हैं, क्या उनका कोई अधिकार नही है ? कहते हैं कि क्या करें, स्कूल का सारा अधिकार तो हेड मास्टर सा० को दे रखा है। बस, ऐसी ही बातो से उन्हें और भी शह मिल जाती है। फिर क्या है, भले ही जाति का सुधार हो, या बिगाड ? उसकी उन्हें क्या चिन्ता है ? जिस जाति के नाम पर आप अन्यत्र जाने पर पहिचाने जाते है और सन्मान पाते हैं, आज आपको और आपके ही द्वारा सस्थापित सस्थाओ के कार्यकर्त्ताओ को उस जाति के गौरव की कोई चिन्ता नही, उस धर्म के प्रभाव, प्रसार और प्रचार की कोई चिन्ता नही ? इससे बढकर और दु ख की दूसरी बात क्या हो सकती है ?

बंगाल का सूबेदार

बगाल का एक सूबेदार जो वहा का सर्वेसर्वा तथा बादशाह की नाक का बाल था। वही पर मारवाड के नागौर के पास के बाडली गाव के सेठ अमीचन्द जी थे। एक बार सेठजी की स्त्री पर सूबेदार की नजर पड गई। वह हाकिम था सो उसने षड्यन्त्र रच करके किसी प्रकार सेठानी को अपने बगले पर बुला लिया। परन्तु वह सेठानी बडी समझदार, और आन-बान पर मर मिटने वाली थी। अपने सतीत्व की रक्षा का उसे भरपूर ध्यान था। जब उसने अपने सतीत्व धर्म पर सङ्कट आते हुए देखा, तब वह भाग्यवती सती कटारी खाकर मर गई, परन्तु अपने धर्म पर दाग नही लगने दिया। और वह उस पापी तुर्क के घर मे नही रही। वह सेठ भी मरोड वाला था, ऐसा-वैसा नही था। जब उसे स्त्री के सूबेदार के यहा जाने की बात का पता चला तो वह भी वहा पहुचा और देखा कि स्त्री मरी हुई पडी है तो उसकी, नस-नस मे खून खोल गया। उसने कहा—अरे तुर्क, यदि मैं ओसवाल की मा का दूध पिया होऊगा तो तेरा खात्मा करके रहूँगा। फिर उसने वह खेल दिखाया कि मुसलिम सल्तनत नेस्तनाबूद हो गई और भारत सदा के लिए गड्ढे मे गिर गया और अग्रेजो के अधीन हो गया। भाई, क्रोध मे तो ऐसा ही होता है। जब उस सूबेदार ने ऐसी नीचता की बात सोची, तब उसे भी प्रतिशोध के लिए वैसा करना पडा। यदि अमीचन्द सेठ के स्थान पर अन्य कोई कुपात्र होता, तो बताओ जाति की नाक कटती, या नही कटती ? पर

अमीचन्द को यह अपमान सहन नही हुआ कि कोई नीच मेरी स्त्री को ले जावें और मैं चुपचाप बैठा देखता रहू। इसलिए उसने उसको उसकी करनी का मजा चखाना ही उचित समझा। परन्तु आज जाति का कोई गौरव और वीर्य नही रहा है। समाज और जाति मे ऐसी कमजोरी कैसे आ गई, इसी पर विचार करना है।

मैं कह रहा था कि पर्युपण पर्व का आज तीसरा दिन है। परन्तु आज हमारे भीतर कितने ही लोग तो तिथिया, कितने ही नितिया, कितने ही भदिया, कितने ही पजूपणिया और कितने ही सवत्सरिया भक्त हैं। कई लोग जो नित्य आने वाले हैं, वे तो व्याख्या व कथा कोई भी कहे, चाहे वे अपने साधु महाराज हो, चाहे अन्य मतावलम्बी साधु हो, सबसे सुनते अवश्य हैं। परन्तु समझते कुछ नही हैं। बैठके घिस डाले, अनेक मु हपत्तिया फाड डाली। परन्तु उनसे पूछो कि लेश्या कितनी है, तो वे नही बता सकते। कई तिथिया भक्त हैं, वे दोज, पचमी, अष्टमी, ग्यारस और चतुर्दशी को ही मुख दिखाते हैं। कई भादिया भक्त है, जो भादवा मास के लगते ही बैठका पूजनी को तैयार करते है। और कई हैं पजूपणिया भक्त। वे तो साल भर मे केवल पर्युषण के दिनो मे ही आते हैं। कितने ही सबसे बढकर है, वे हैं सवत्सरिया भक्त। वे तो केवल सवत्सरी के दिन हीं अपना नाम लिखाने को आ जाते हैं। परन्तु जो वर्ष भर मे एक भी दिन नही आते हैं, उनसे तो वे अच्छे हैं कि एक दिन आते तो हैं।

मैं परसो पदमसागर से वापिस आ रहा था, तो रास्ते मे एक भाई मिले। उनके साथ एक छोटा लडका था। उस बच्चे ने कहा—राम-राम महाराज! उसके बाप ने कहा—बेटा, ये अपने महाराज नही हैं। इनको तो वन्दना करने का कहना चाहिए। यह सुनकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ। अरे, ओसवाल के भाग्य! राज्य मे नौकरी करली तो वैष्णव धर्म भी स्वीकार कर लिया। जाति का जरा भी असर नही रहा और जाति का गौरव ही समाप्त कर दिया। मैं जब ऐसी बाते देखता और सुनता हू, तब कभी-कभी मन मे लहर आ जाती है कि मेरी जाति मे यह क्या हो रहा है? दूसरी

जातियो मे कोई आर्यसमाजी है, या ब्रह्मसमाजी हो गये हैं, या अन्यधर्मी हो गये हैं, परन्तु उन्होने अपनी जाति का गौरव नही छोडा है। परन्तु यहा तो पहिले जाति को छोडते हैं। फिर जरासा धापकर खाने को मिला नही, पेटिया और नौकरी मिली नही कि धर्म को छोडते भी देर नही लगती है। भाई, गये गुजरे कभी धर्म नही करते हैं परन्तु पुण्यवान लोग ही धर्म करते हैं। गीता मे भी कहा है -

'स्वधर्मे निधनं श्रेय. पर धर्मो भयावह .'

श्री कृष्ण जी अर्जुन से कहते हैं कि अपने धर्म मे मरना श्रेयस्कर है, परन्तु पर धर्म को धारण करना भयकर है।

भाइयो, इस गीता वाक्य का असली अर्थ यह है कि जो स्व अर्थात् आत्मा का धर्म है, हमारा कल्याणकारी धर्म है, वीतराग सर्वज्ञ देव ने कहा है जिसे निर्ग्रन्थ मुनिराजो ने बताया है, उस धर्म को पालन करते हुए मर जाना अच्छा है, अवसर आने पर प्राण दे देना भला है परन्तु पर धर्म को स्वीकार करना अच्छा नहीं है, क्योकि वह ससार मे परिभ्रमण का कारण है और इसीलिए वह भयावह है। इसलिए हमे कभी भी अपने धर्म से विचलित नही होना चाहिए। भले ही हम पर कैसे ही और कितने ही सकट क्यो न आवे ? यदि कोई विपत्ति की बात आये तो उसे सुधारना चाहिए। इसी से शाति मिलेगी, साता और आराम प्राप्त होगी।

आज के इस तीसरे दिन से यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हम ऐसे शुभ कार्य करें कि जिनसे दूसरो को साता पहुचे। दूसरो को साता पहुँचाने से आपके भी सातावेदनीय कर्म का वन्ध होगा, जिससे आप इस लोक मे भी साता पायेंगे और पर लोक मे भी साता पाने के अधिकारी बन जायेंगे।

वि स २०२७ भाद्रपद कृष्णा १५
जोधपुर

४ | मोह को जीते, सब जीते

सज्जनो, आज पर्युषण पर्व का चौथा दिन है। चार वस्तुओ के विना कार्य वनता नही है। कोई काम आपने हाथ मे लिया, उसे एक वार किया, दो वार किया और तीन वार किया। परन्तु फिर भी उसमे कोई न कोई कमी रह जाने पर दुनिया कहती है कि भाई, हिम्मत मत हारो और 'चौथे चावल सीझे' इस लोकोक्ति के अनुसार चौथी वार कार्य करने पर वह अवश्य सम्पूर्ण होगा और सफलता प्राप्त होकर रहेगी।

सब का राजा मोह कर्म

आत्मस्वरूप का आवरण करने वाले और उसके स्वरूप के विघातक कर्म आठ हैं। उनमे से आपके सामने ज्ञानावरणीय कर्म का स्वरूप वताया कि यह कर्म ज्ञान को प्रकट नही होने देता है। दर्शनावरणीय कर्म आत्मा के अनन्त दर्शन गुण का आवरण किये हुए है और वेदनीय कर्म आत्मा को सर्व वाधाओ से रहित निराकुल अव्यावाघ सुख की प्राप्ति नही होने देता है।

अव आज का विषय है मोहनीय कर्म। यह सव कर्मों का राजा है। यह सवका अध्यक्ष है। यदि यह मोहनीय कर्म पराजित हो जाय, समाप्त हो जाय, तो शेष सातो कर्मों का विनाश होते कोई देर नही लगती है। परन्तु

इस मोह कर्म का किला और झडा बडा मजबूत है। यह बहुत बलवान् राजा है। इसकी अट्ठाईस प्रकृतिया हैं। इसका स्वभाव मदिरा (शराब) के समान है। मदिरा पिया हुआ व्यक्ति अपना ज्ञान, ध्यान, होश-हवास, बुद्धि और चातुर्य सब नष्ट कर देता है। वह शराब के नशे मे पागल बनकर नाना प्रकार से बकना, लडना, झगडना प्रारम्भ कर देता है। यह सब शराब का ही प्रभाव है। जब उसका नशा उतर जाता है तब वह पहिली अवस्था मे आ जाता है और वह होश-हवास से काम करने लगता है। इसलिए आत्मा का सबसे भयानक शत्रु मोहनीय कर्म ही है। इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि—

मुह्यन्ति देहिनो येन मोहनीयेन कर्मणा।
निर्मितान्निर्मिताशेषकर्मणा धर्मवैरिणा ॥

यह मोहनीय कर्म धर्म का वैरी है। इसके रहते हुए आत्मा की प्रवृत्ति धर्म करने की होती नही है और आत्मा का यथाख्यात स्वभाव प्रकट नही हो पाता है। यह मोहनीय कर्म ही शेष सब कर्मों का निर्माण करने वाला है। इसके द्वारा निर्मित मोह से-राग-द्वेष-आज्ञानादि भावो से ससार के समस्त प्राणी मोहित हो रहे हैं। इसने ससार के किसी प्राणी को अपने अधीन करने से छोडा नही है। इसने बडे से बडे ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे देवताओ को भी अपने शिकजे मे जकड रखा है। आचार्य अकलक देव इस जगज्जयी मोह की महिमा और मोहजयी वीतराग देव की महामहिमा बतलाते हुए कहते हैं—

ब्रह्मा चर्माक्षसूत्री सुरयुवती रसावेश विभ्रान्तचेता
शम्भुः खट्वाङ्गधारी गिरिपतितनयापागलीलानुविद्ध.।
विष्णु श्चक्राधिप सन् दुहितरभगमद् गोपनाथस्य मोहाद् ॥
अर्हन् विध्वस्तरागो जितसकलभय कोऽयमेष्वाप्तनाथ ॥

यह ब्रह्मा जो ससार का सृष्टिकर्ता माना जाता है, वह सुर-युवति तिलोत्तमा के सम्भोग-रस के आवेश से विभ्रान्त चित्तवाला हो गया। यह शम्भु जो कामजयी माने जाते थे, वे गिरिपति हिमालय की पुत्री पार्वती के

अपाङ्ग (कटाक्ष) लीला से अनुविद्ध होकर उसे ही अर्धाङ्ग मे लेकर बैठे हुए हैं। और जो विष्णु सुदर्शन चक्र के स्वामी माने जाते हैं, वे भी मोह से गोपालो के स्वामी की पुत्री राधा के पीछे पडे हुए हैं। एक अरहन्त देव ही ससार मे ऐसे दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्होंने राग, द्वेष और मोह को विध्वस्त कर दिया है अर्थात् उन पर मोह का किसी भी प्रकार का प्रभाव नही है, और उन्होंने समस्त भयों को जीत लिया है, इसलिए वे शस्त्रादि को अपने पास नही रखते हैं। अकलकदेव ससार के लोगो से पूछते हैं कि बताओ इन ब्रह्मा, विष्णु, महेश और अरहन्त इन चारो मे से कौन सच्चा आप्तदेव कहलाने के योग्य है ? अर्थात् जगज्जयी कामदेव ने तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश को जीत लिया है। परन्तु वीतरागी अरहन्तदेव ने उस त्रिजगज्जयी कामदेव को भी जीत लिया है, अत सच्चे देवाधिदेव कहलाने का अधिकार अरहन्त देव को ही प्राप्त है।

इस विवेचन से आप लोगो की समझ मे आगया होगा कि आत्मा का सबसे सगीन-अति प्रबल शत्रु मोह कर्म ही है, क्योकि उसके प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे देवता भी अछूते नही बचे हैं। जितने भी तीन लोक मे प्राणी हैं, उन सबको इस मोह कर्म ने अपनी लपेट मे लिया हुआ है। इससे कोई भी नही बच सका है। इसी कारण ससार मे यह लोकोक्ति प्रचलित हो गई है कि इसका क्या कहना है ? इसने तो सबको मोह लिया है। कहा भी है कि 'मोह से अन्धी भईमरु देवी'। कहा जाता है कि मरुदेवी ने अपनी पैंसठ हजार पीढिया देखी और खूब साता भोगी। परन्तु उसके भी मोह के वशीभूत होकर 'ऋषभ, ऋषभ' कहते रहने से आँखो मे जाला आ गया था। गौतम स्वामी ने भी जब तक मोहदशा रही, तब तक केवल ज्ञान नही पाया। कहा जाता है कि भ० महावीर के निर्वाण होने पर उनके वियोग मे उन्होने भी भारी विलाप किया। अरे, जब यह मोह ऐसे ऐसे महापुरुषो पर भी अपना प्रभाव डालने से नही चूका, तब औरो से तो क्या चूकेगा ? जब प्रद्युम्न का हरण हुआ तो उसके वियोग-जनित दुख से, और जब उसका सोलह वर्ष बाद मिलाप हुआ, तब सयोग-जनित हर्ष से श्रीकृष्ण

जी के भी आखो मे आसू आ गये। लव-कुश भी जब सोलह वर्ष के बाद राम से मिले, तो उनके भी आसू आ गये। मोह ने जब ऐसे महापुरुषो के भी ऊपर अपना प्रभाव दिखलाया तो अन्य साधारण जनो की तो बात ही क्या है ?

मोह की छतरी

भाई, आप इतना उपदेश सुनते हैं और सुनते हुए भी आप गुरु-वचनो का आदर नही करते है, तो इसमे आपका कोई दोष नही है। आप करे भी क्या करें ? मोह मे आप लोग बुरी तरह से जकडे हुए हैं और इसी के का ण आप अपनी भलाई की बातें सुनते हुए भी उन्हे भूल रहे हैं। जैसे वर्षा होने पर लोक बाहर निकलते हैं तो छाता लगा लेते हैं, अब जो पानी गिरेगा वह छाते पर ही गिरेगा कपडे नही भीगेंगे इसी प्रकार मन पर यह मोह कर्म का छाता लगा हुआ है, उपदेश आदि की वर्षा मन को नही भिगा रही है, वह पानी ऊपर ही ऊपर उतर जाता है क्योकि मन पर मोह की छतरी जो लगी हुई है।

आपसे कहा गया है कि दया करो,दया पालो। परन्तु बीडी पीने का ऐसा व्यसन लगा हुआ है कि रोटी के बिना तो दो दिन रह जायेंगे, परन्तु बीडी के बिना दो घटे भी नही रहा जायगा। कितने ही लोग कहते हैं कि उपवास तो करें महाराज ! और भावना भी रहती है, तथा वह भी जानते हैं कि तपस्या किये बिना मुक्ति नही। परन्तु क्या करें ? भग के बिना हमसे रहा नही जाता। कितने ही लोग कहते हैं कि महाराज, कुछ भी फर्माओ, परन्तु शरीर लाचार हो जाने से हमसे दया नही पलती है। किसी किसी व्यक्ति के कोई व्यसन भी नही है, फिर भी कहते हैं कि महाराज, हमसे जमीन पर तो सोया नही जाता है और गादी-तकिया के बिना नीद नही आती है। कोई कहते है कि हमे तकिया नही चाहिए, किन्तु बिस्तर के बिना हम नही सो सकते हैं। कोई कहते हैं कि आठ दिन बाजार बन्द है तो हमको क्यो टूपा देते हो ? अरे, थोडी-बहुत उगाही तो करने दो। इन दिनों मे दो, चार, दस हजार इकट्ठा करेंगे तो आड़तियो को जल्दी भेज देंगे, जिससे

आगे काम-काज चलेगा। इस प्रकार दुनिया को एक दर्द नही, अनेक दर्द पीडित कर रहे हैं।

आप लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने कहना नही माना। भाई, उसने कहना माना, या नही माना। परन्तु आपको जो उस वस्तु मे मोह लगा हुआ है तो आप तो उसको छोडें। मोह छोडने से ही काम बनेगा। मोह के छोडे विना आत्मा का कार्य सिद्ध नही हो सकता है। लोभ छोडने मे क्या रखा है? परन्तु मैं कहता हू कि इसके छोड़ने मे ही सब कुछ रखा है। कहा है कि—

लोभमूलानि पापानि रसमूलानि व्याधयः।
स्नेहमूलानि दुखानि त्रीणि व्यक्त्वा सुखीभवेत्।

सोना-चादी, मकान-दुकान, बाग और बगीचेको छोडने-वाले तो बहुत हैं। तथा स्त्री तक को छोडने वाले भी अनेक हैं। परन्तु ईर्ष्या को छोडनेवाले बहुत कम हैं। अच्छे और धर्म के कार्यों मे भी कितने ही लोगो को निन्दा किये विना चैन नही पडती है। यही आपके यहाँ कई वर्ष पहिले पुखराज जी अब्वानी ने आँखो का इलाज कराने वालो के लिए कैम्प लगवाया और सैंकडों लोगो को लाभ मिला। वह परम्परा आज तक भी चल रही है। इससे कितने ही लोगो की आखें खुल गई और हजारो लोगो को प्रकाश मिला। यदि सैंकडो के आपरेशन मे से दो-चार की आखो खराब हो जायें, तो कोई असभव बात नही है। परन्तु लोग सैंकडो के लाभ की बात को कहकर इस व्यवस्था की प्रशसा नही करके दो चार की आखें खराब हो जाने की आड लेकर नाना प्रकार की टीका-टिप्पणी करेंगे और कहेगे कि व्यवस्था अच्छी नही है। मैं ऐसे लोगो से पूछू कि व्यवस्था क्या खराब है? कैम्प लगाने वाले सर्व प्रकार की व्यवस्था करते हैं और अपने जान मे अपनी शक्ति भर किसी प्रकार की कोई कमी नही रखते हैं। यदि सचमुच मे व्यवस्था खराब होती तो फिर दूसरी-तीसरी बार कैम्प नही लगता और लोगो को इतनी सफलता नही मिलती। अरे भाई, लोगो को आराम मिलता है, तभी तो आते हैं। यदि आराम नही मिले तो कौन आने को तैयार होगा? आदमी

काम करता है, परन्तु चौवीस घटे तो नही कर सकता, दो-चार घटे तो वह भी आराम करना चाहेगा ही। और अदल-वदल करके आराम भी कर लेते हैं और बीमारों की देख-रेख भी होती रहती है। फिर भी यदि आपकी दृष्टि मे कही किसी प्रकार की कमी नजर आती है तो उसकी पूर्ति आप भी कर सकते हैं? यदि आप ऐसे उत्तम कार्य मे किसी प्रकार का सहयोग देंगे तो कोई उसे अस्वीकार नही करेगा। परन्तु हमारे हृदय में तो ईर्ष्या-वृत्ति वढगई है और निन्दा करने की आदत पड गई है। यदि लोग सामने कहे तो विगाड होता है? पीठ पीछे कोई कुछ भी कहे, तो कौन देखने-सुनने को आता है? परन्तु यह विचारना ही बुरा है। नीतिकारो ने कहा है—

परोक्षे कार्य हन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृश मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥

जो परोक्ष मे—पीठ पीछे तो निन्दा करे और कार्य को विगाडें और प्रत्यक्ष मे मुख के सम्मुख प्रिय वचन वोलें, ऐसे मित्र का परित्याग कर देना चाहिए। क्योकि ऐसे लोग उस घडे के समान हैं, जिसमे भीतर तो विष भरा हुआ है, केवल ऊपर थोडा सा दूध दिखाई दे रहा है।

आप लोग कहते हैं कि महाराज, आपको भी तो मोह है न? भाई, हा मोह है! परन्तु किस वात का? हमे ईर्ष्या, निन्दा और चुगली करना छोडने का मोह है। पहिले बुरी वातो का, अशुभ एव लोक-निन्द्य कार्यों का त्याग करो, तभी यह अनादि काल से लगा हुआ प्रगाढ मोह पतला पडेगा और तभी विवेक जगेगा और मुक्ति का मार्ग प्राप्त होगा। ईर्ष्या, निन्दा, चुगल खोरी आदि को छोडे विना मुक्ति पाने की ओर वढना सभव नही है।

कवि विनयचन्द्र जी श्रावक थे। वे आखो से अन्धे थे। उन्होंने चौवीस तीर्थंकरो की चौवीस स्तुतिया वनाई है। उनमें वहुत आध्यात्मिक रस भरा है। उन मे सुविधिनाथ की स्तुति करते हुए उन्होंने कहा है कि—

अष्ट कर्म नो राजवी हो मोह प्रथम क्षय कीध।
सुध समकित चारित्रनी हो परम क्षायक गुण लीध।
श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो!

जवतक मोहनीय कर्म का क्षय नही होता है, तव तक न तो शुद्ध सम्यक्त्व ही प्राप्त होता है और न शुद्ध सयम ही। और न चारित्र ही प्राप्त होता है। सम्यक्त्व और चारित्र के विना ससार-सागर से जीव पार नहीं हो सकता। सवका आधार मोह को जीतने पर निर्भर है। एक मोह को जीत लिया, तो समझो कि सव कर्मों को जीत लिया दशाश्रुत स्कन्ध सूत्र (५) मे कहा है—

सेणावइमि निहते जहा सेणा पणस्सइ।
एवं कम्माणि णस्सति मोहणिज्जे खय गते।

जैसे सेनापति के मर जाने पर वाकी सेना भाग जाती है, उसी प्रकार मोहनीय कर्म के नष्ट होने पर शेप कर्म भी स्वत नष्ट हो जाते हैं। भाई, सुनने की थोडी क्षमता रखो, तव सुधार हो सकता है। परन्तु अभी तक आपका धर्म के प्रति प्रेम नही जगा है।

मोह कर्म के दो भेद

जिस मोहनीय कर्म की अभी तक आपके सामने चर्चा की है, उसके मूल मे दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्र मोहनीय।

मोहणिज्जपि दुविह दंसणे चरणे तहा।
—उत्तराध्ययन ३३।८

दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतिया हैं—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति। मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जीव को आत्म-हितकारी कार्य दु ख-दायक प्रतीत होते हैं। वह अधर्म को धर्म मानता है, कुदेव को सच्चा देव मानता है और कुगुरु को सच्चा गुरु मानता है। इसी प्रकार उसे जिन-भाषित जीव-अजीवादि तत्त्वो पर भी श्रद्धान या विश्वास नही होता है। सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से देव-गुरु-धर्म पर भी श्रद्धा करता है और कुदेव-कुगुरु और कुधर्म पर भी श्रद्धा करता है। अर्थात् यह सभी धर्मों को एकसा मानता है, उसके हृदय मे विवेक नही होने से सत्य-असत्य का निश्चय नही होता है। सम्यक्त्व प्रकृति के उदय होने पर जीव के हृदय मे सम्यक्त्व तो वना रहता है। परन्तु उसमे चल, मलिन और अगाढ दोप

उत्पन्न होते रहते है। जैसे—ये मेरे गुरु हैं, क्योकि इन्होने मुझे दीक्षा दी है और धर्म का स्वरूप वतलाया है। किन्तु अमुक मेरे गुरु नही, क्योकि उनसे मैंने दीक्षा नही ली है। सभी तीर्थंकरो मे समान सर्वज्ञता वीतरागता होते हुए भी यह मानना कि उपसर्ग दूर करने वाले तो पार्श्वप्रभु ही हैं और शान्ति के दाता तो शान्तिनाथ ही हैं। इस प्रकार तीर्थङ्करो मे भी भेद-भाव की वुद्धि इस सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से उत्पन्न होती है। ये मेरे सेठ है, इन्होने मुझे अपने यहा आश्रय दिया है अत मेरी इनसे ममता है। माता-पिता ने मुझे पाल-पोस करके वडा किया है, मेरी सभी सुविधाए जुटाई हैं, इनमे भी मेरी ममता है। ये मेरे साधर्मी भाई है, इन्होंने मेरे वुरे दिनो मे मेरी वहुत सहायता की है, इन्होने मुझे धर्म से नही गिरने दिया है, इसलिए इनके ऊपर भी मेरा मोह है। भाई, समकिती व्यक्ति समकिती की कितनी सहायता करता है और उसके ऊपर कितना वात्सल्य भाव रखता है, यह भी सोचने-समझने की वात है।

साधर्मिक-वात्सल्य

राजा कुणिक का नाना चेटक था। परिस्थिति वश दोनो को आपस मे लडने का अवसर आ गया। हार और हाथी के निमित्त को लेकर। कुणिक के पास विशाल सेना थी। उसके पास तेतीस हजार हाथी, तेतीस हजार घोडे, तेतीस हजार रथ और तेतीस हजार ही पैदल सैनिक थे चेटक के पास केवल तीन-तीन हजार हाथी, घोडे, रथ और पैदल सैनिक थे। अर्थात् कुणिक की सेना का ग्यारहवा भाग ही उसके पास था। चेटक ने सोचा कि इतनी वडी सेना का मै मुकाविला कैसे कर सकता हू ? तव उसने अपने समकिती साधर्मी भाई नौ मल्ली राजाओ को और नौ लिच्छवी राजाओ को याद किया। ये अठारह गणो के राजा लोग चेटक के परम मित्र थे। अत. समाचार मिलते ही वे सभी राजा लोग चेटक के पास आये और पूछा कि हम लोगो को कैसे याद किया है ? तव चेटक ने कहा कि हल और विहल को हिस्से मे हार और हाथी मिले थे। परन्तु उनके वडे भाई कुणिक को यह वात असह्य हुई। जव वह हार और हाथी को उन दोनो भाइयो

से लेने को तैयार हुआ, तब दोनो भाई हार और हाथी को लेकर मेरी शरण मे आये। अब कुणिक ने सन्देश भेजा है कि या तो हार और हाथी के साथ दोनो भाइयो को मेरे पास वापिस भेजो। अन्यथा लडने के लिए तैयार हो जाओ। अब मैं क्या करू, इस वात पर परामर्श करने के लिए आप लोगों को याद किया है। यदि आप लोग कहें तो मैं उन्हे अपनी शरण मे रखू और कुणिक के साथ लडाई करू? और यदि आप लोग कहें तो उन दोनो भाइयो को हार और हाथी के साथ कुणिक के पास वापिस भेज दूँ। यदि लडाई करता हू, तो हजारो-लाखो प्राणियो का सहार होगा। यदि शरण में नही रखता हू तो हार और हाथी के साथ दोनो भाइयों को वापिस भेजना होगा। ऐसी दशा मे शरणागत की रक्षा का धर्म जाता है?

राजा चेटक की यह वात सुनते ही अठारहो ही राजाओ ने कहा कि हम क्षत्रिय हैं, शरणागत की रक्षा करना हमारा परम धर्म है। अत दोनों भाइयो को हार और हाथी के साथ कैसे वापिस भेजा जा सकता है? तब चेटक ने कहा—भाइयो, युद्ध होने पर तो अगणित जीवो की हिंसा होगी? तव सव राजाओ ने कहा—हम गृह-त्यागी साधु नही है, किन्तु घरो मे रहने वाले श्रावक हैं। हम श्रावको का धर्म है कि निरपराध व्यक्तियो को नही मारें। किन्तु जो दूसरो से उनकी भूमि छीने, धन लूटे और बहू-बेटियो का अपहरण करे, या उनके साथ बलात्कार करे, वहा हमे उनकी आततायी से सर्व प्रकार रक्षा करनी चाहिए। यदि हम हिंसा के भय से उनकी रक्षा नहीं करे, तो यह वात हमारे धर्म के प्रतिकूल है। इसलिए इस का आप जरा भी विचार न करें। तव चेटक ने कहा—यदि आप लोगो का प्रस्ताव स्वीकार करके मैं युद्ध के लिए कुणिक को चुनौती भी दे दू, तो उसके साथ युद्ध मे विजय पाना कैसे सभव है? क्योकि उसके पास मेरे से ग्यारह गुणी सेना है। तव सभी राजाओ ने एक स्वर से कहा महाराज, हम और आप अलग-अलग नही हैं। हमारे पास जो सेना है, वह सव आपकी ही है और हम अठारह ही राजा आपके छोटे भाई है। इसलिए हमारी सारी सेना को आप अपनी ही समझें। उन सव राजाओ के पास भी चेटक के समान तीन-तीन हजार

हाथी, घोडे, रथ और पैदल सैनिक थे। इस प्रकार चेटक-सहित उन्नीस राजा, उन्नीस-तिया सत्तावन हजार हाथी, घोडे, रथ और पैदल सैनिक इस ओर हो गये। अव चेटक की सैन्य-शक्ति कुणिक से ड्योढी से भी ऊपर हो गई। चेटक की इतनी शक्ति कैसे हो गई? जवकि समकिती राजाओ का सहयोग मिला। तभी वे कुणिक से युद्ध करने को समर्थ हो सके। हार-जीत या जय-पराजय तो जिसके भाग्य मे जो लिखा होता है, उसे वही प्राप्त होता है। परन्तु यहा तो इस कथानक के कहने का आशय यह है कि समकिती भाई का समकिती भाई के साथ कैसा प्रेम होना चाहिए। यदि समकिती भाई विचार लेवें कि इसकी सहायता करके इसे ऊँचे चढाना है, तो वे चढा सकते हैं।

आपने सुना होगा कि पहिले पाली मे पल्लीवालो के एक लाख घर थे। यह एक स्वतत्र और व्यापारी जाति है। कोई कोई काश्तकारी भी करते हैं। उनमे जैन और वैष्णव भी हैं। हजारो पल्लीवाल जैन हैं। पल्लीवालो से ही पहले वसा हुआ 'पाटन' था। वह जव ध्वस्त हो गया, तव उसके वाद यह पाली नगर वसा। 'पालीवाल' इतना कौन कहे, इसलिए लोगो ने पाली-पाली कहना शुरु कर दिया और तभी से इसका नाम पाली प्रचलित हो गया। किसी समय वहा पर लाख घर पल्लीवालो के थे। उनकी जाति का यह नियम था कि कोई भी उनकी जाति का व्यक्ति—चाहे वह गरीव हो या मालदार—वाहिर से यदि वहा पहुचता, तो वे उसके स्थितीकरण के लिए घर पीछे एक-एक रुपया और एक एक ईट देते थे और इस प्रकार वे उसके रहने और व्यापार करने का प्रवन्ध करके अपने समान वना लेते थे। यह साधर्मीवात्सल्य का नमूना है।

अजमेर मे जो लाखनकोटडी है, वह कैसे वनी? भाई, मेडता से तीन हजार घर लखपति-करोडपतियो के भाग कर रातो-रात अजमेर आये और उन्होंने वहा पर लाखन कोटडी वनाई। मैं उदयपुर गया तो वहां ज्ञात हुआ कि यहा पर एक मालदारों की सेरी है। भाई, यदि आपस मे प्रेमभाव हो

कषाय मोह

मोहनीय कर्म का दूसरा भेद चारित्र मोह कर्म है। इसके भी दो भेद हैं—कषायमोहनीय और नोकषाय मोहनीय। कषाय मोहनीय के सोलह भेद हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यानावरण क्रोध, माया, मान लोभ और सज्वलन क्रोध,मान, माया, लोभ। इनमे अनन्तानुबन्धी चौकडी सम्यक्त्व गुण को और स्वरूपाचरण चारित्र को प्रकट नही होने देती। अप्रत्याख्यानावरण-चौकडी देशसयम या श्रावकव्रतो को धारण नही करने देती है। प्रत्याख्यानावरण-चौकडी सकल सयम या मुनिव्रतो को धारण नही करने देती है और सज्वलन-चौकडी यथाख्यात-वीतरागचारित्र को प्राप्त नही होने देती है। नोकषाय मोहनीय के नौ भेद हैं—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुसक वेद। ये नवो ही नो कषाय जीव मे राग भाव और द्वेष भाव उत्पन्न करती हैं और निराकुलता की बाधक हैं। इस प्रकार सोलह कषाय और नौ नो कषाय इस प्रकार पच्चीस भेद चारित्र मोहनीय कर्म के है। तथा अभी पहिले बतलाये हुए दर्शन मोहनीय के तीन भेद मिलाने पर मोहनीय कर्म के अट्ठाईस भेद हो जाते हैं। जिन महापुरुषो ने इस सबसे प्रबल शत्रु और सब कर्मों के सिरताज मोहराजा को जीत लिया है, उन्होंने सारे जगत को जीत लिया। फिर उसके ऊपर किसी भी प्रकार की सासारिक गडबडी, या विघ्न-बाधा नही आ सकती है। मोह को जीतने के पश्चात् मनुष्य अन्तर्मुहूर्त मे ही शेष तीन घातिया कर्मों को जीत कर उनका क्षय करके सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग अरहन्त परमात्मा बन जाता हैं। और आयु के अन्त मे चारो अघाति कर्मों का क्षय करके सिद्ध पद को प्राप्त होता है।

जिन गृहस्थो ने दर्शन मोहनीय कर्म और अनन्तानुबन्धी एव अप्रत्याख्यानावरण चौकडी को भी जीता है, उन्हें देवता लोग भी अपने धर्म से नही डिगा सकते हैं,इतनी परिणामो में स्थिरता और दृढता आ जाती है। आनन्द गाथा-पति, काम देव आदि श्रावकों के सामने देवताओ ने उनकी स्त्री और पुत्रो के घात करने और ताडन-मारण के भी मायावी रूप दिखाये और उनकी माता

रोती हुई और यह कहती हुई कि 'वेटा, वचाओ'। फिर भी वे अपने व्रतो से डिगे नही। परन्तु उन्होंने यही कहा कि—

अरे, किसके मात-पिता सुत वधव किसके परिवारा,
किसकी नारी किसके बच्चे झूठे ससारा
बिना मतलव सब खारा लागे मतलब से प्यारा,
ऐसे क्षणभगुर दुनिया से क्यो नहीं करते किनारा।

सव कहते हैं कि ये मेरे माता, पिता, स्त्री, भाई और वन्धु हैं। परन्तु यथार्थ मे देखा जाय, तो तेरा कौन है? क्या यहा पर कोई तेरा सगा-साथी है? यदि है तो मुझे दिखाओ। ये सारे स्वार्थ के साथी हैं। जहा पर जरा भी स्वार्थ मे कमी आती है तो फिर कोई किसी को सहारा देने वाला नही है।

स्वार्थ का खेल

एक सेठ जी की दिसावर मे अच्छी दुकान चल रही थी। उसने वहा पर खूब कमाई की। एक वार उसने सोचा कि अपने गाव तो हो आऊ? गाव से आये हुए वहुत समय वीत गया है अत अव तो सारे कुटुम्बियो से मिल तो आऊ? ऐसा विचार कर और खर्च के लिए आवश्यक रकम लेकर और घरवालो के लिए दो-तीन उत्तम आभूषण भी लेकर के वह परदेश से घर के लिये चला। कपडे साधारण ही पहिने और वेष भी वही पुराना मारवाडी। वह दिसावर मे भी अपने देश का ही वेष रखता था। आज जो लोग सिर उघाडा रखने हैं और पगडी नही वाधते हैं, वे कहते हैं कि हमे पगडीवाला देखकर के लोग लूट-खसोट लेंगे। इसलिए उन्होंने पगडी फेक दी। वे समझते हैं कि हमने पगडी फेंक दी, तो अव हमारी पैठ जम जायगी?

एक वार एक नौ जवान आया और वन्दना की, फिर कहने लगा कि महाराज, मैं वडा दुखी हू। अहमदावाद से आ रहा था तो रास्ते मे मेरे हैंडवैग मे मे किसी ने रुपयो का वटुआ निकाल लिया है। उसने यह सत्य कहा, या झूठ, यह तो वही जाने। पर उसकी लाज पगडीवालो ने रखदी और कुछ रुपया देकर उसे विदा किया। यदि विना पगडीवाले ऐसो की सहायता करेंगे, तो मैं आपके भी गीत गादूगा। पगड़ीवाले जिस जमाने

तो मुहल्ले और गाव के गाव लखपति वन जाते हैं। किसी किसी स्थान पर जिस कुए-वावडी के जल से सिचाई होकर लाख मन धान पैदा होता था, तो वह आज भी लाखीना वेरा कहलाता है।

नाम कैसे होता है ?

भाईयो, नाम भी दुनिया मे दो बातो से होता है काज व्यवहार से और गुणो से। पाली मे जहा पर पहिले घास विकता था, उसे आज भी घास मडी कहते हैं। उससे आगे वढे तो रुई का कटला आता है, क्योकि वहा पर रुई का ही व्यापार होता है,वहा रुई के सिवाय और कोई वस्तु नही मिलेगी। उससे आगे मिर्ची बाजार, तो वहा पर मिर्ची ही मिलती। इसी प्रकार गूद कटला, कपडा मडी आदि आदि। ये सव नाम एक एक वस्तु के लेन-देन के व्यवहार मे पडे। यहा जोधपुर मे जो गुजराती कटला है, तो गुजराती भाइयो के एक स्थान पर शामिल रहने से यह नाम पडा। परन्तु आज के लोग एक साथ रहना नही चाहते हैं। अव तो लोग हवा और रोशनी वाले स्वतत्र वगलो और कोठियो मे रहना पसन्द करते हैं। आज आप सरदारपुरा मोहनपुरा और पृथ्वीपुर मे जाइये, एक एक मकान स्वतत्र मिलेगा। परन्तु पहिले मकान एक से एक मिले हुए वनाते थे। इसलिए कि सवके साथ रहने से हमारा चोरो और लुच्चो से वचाव हो सकेगा, रक्षा हो सकेगी। घर पास-पास थे तो अवसर पर इधर से उधर जल्दी आ जा सकते थे। आज की नई रोशनीवाले जो फैशनेवुल वगलो मे अकेले रहना चाहते हैं, उनके यहा पर रात मे यदि चोर वदमाश आ जाय तो उनके चिल्लाने पर भी कौन उनकी सुनेगा ? आज इन वगलो मे किवाड जोडी कैसी लगती है कि यदि कोई तगडा आदमी लात मारे तो टूट जाय। मैंने देखा है कि जव मेरा चौमासा चाउडिया मे था, वहा पर जिसके भीतर से जाकर ऊपर चढते थे तो अकस्मात् वह आने का दरवाजा लग गया और सटकनी लग गई तो खुले कैसे ? अव भीतर जावें तो कैसे जावे,क्योकि कमरा वन्द होगया। इतने मे एक जाट आया। उसने पूछा कि क्या वात है ? लोगो ने वताया कि भीतर से सटकनी लग गई है, अव भीतर कैसे जावें ? उसने कहा कि खोल तो मैं दूगा, किन्तु

किवाटो का नुकसान होगा। लोगो ने कहा—कुछ भी हो, पर इन्हे खोल दो। उसने जोर से एक लात मारी तो किवाड जोडी दूर जाकर गिर पडी। भाई, आज ऐसी किवाड जोडी वाले स्वतन्त्र बगलो मे लोग मजा-मौज लेना चाहते हैं, परन्तु कभी-कभी उनमे चोरी डाके आदि के भयानक काण्ड भी हो सकते हैं, इनका आज ख्याल नही है।

भाइयो, हम साधु लोग भी एकान्त-प्रिय हैं और एकान्त-स्थानो मे रहना चाहते हैं। मगर किसलिए ? इसलिए कि एकान्त मे हम स्वाध्याय और ध्यान निराकुलता पूर्वक कर सकें। एकत्व भावना भा सकें और जन-सम्पर्क मे होने वाले दोषो से बच सकें। यदि इस भावना से आप लोग एकान्त और स्वतत्र बगलो मे रहना चाहते हैं, तब तो बहुत अच्छी बात है। परन्तु आप लोग तो ससार के सभी पचडो मे फसे रहकर भी अकेले रहना चाहते हैं, यह ठीक नही है। आप लोगो का तो मिले-हुए मकानो मे रहना ही ठीक है।

इस प्रकार जो समकिती-समकिती भाई की सेवा करता है, आपत्ति के आने पर उसकी सहायता करता है, तो यह समकिती का मोह है। आप कहेंगे कि यह मोह तो अच्छा है, इसमे क्या खराबी है ? तो देखो कि खस खस के जो दाने हैं और जिनको घोट कर आप ठडाई मे पीते हैं, तो इनसे क्या किसी को नशा आता है ? और इनके पीने से कोई मरता है क्या ? परन्तु यह तो सोचो कि यह बीज किसका है ? यह बीज है अमल का—अफीम का। अमल इन्ही से पैदा होता है। यद्यपि यह स्वय जहर नही है, तथापि जहर का बीज अवश्य है। इसी प्रकार सम्यक्त्व प्रकृति स्वय बुरी नही है, परन्तु बुराई का बीज अवश्य है। मिश्र प्रकृति और मिथ्यात्व प्रकृति तो साक्षात् ही विष तुल्य है, क्योकि इनसे जीव का श्रद्धान विपरीत होता है, और उसके फल स्वरूप वह ससार के दु खो को सहने के लिए विवश हो जाता है। अत इनसे बचे ही रहना चाहिए। धर्म मे भी मोह मत करो, परन्तु धर्म मे प्रेम रखो—उसके धारको मे वात्सल्य भाव रखो। यह सम्यक्त्व का गुण है।

मे थे, उस समय भी क्या आज के समान बेकारी थी ? आज तो बेकारी की चारो ओर भरमार है । किसी स्थान पर यदि एक व्यक्ति की आवश्यकता होती है तो हजारो आदमी पहुंचते हैं और कहते हैं कि मुझे ले लो - मुझे ले लो । भाई, यह बेकारी क्यो बढी ? क्योकि आपने देश और वेप की मर्यादा का ध्यान नही रखा । इसलिए बेकारी बढ गई ।

हा, तो वह सेठ अपने गाव को चला जा रहा था । जब उसका गाव केवल तीन कोस ही रह गया और दूर से गाव दिखाई दिया तो वह मातृ भूमि के दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके आनन्द का पारावार नही रहा । किन्तु जैसे ही वह कुछ आगे बढा कि एक बब्बर शेर छलाग मारकर सामने आकर खडा हो गया । उसे देखते ही सेठ के पैरो के नीचे की जमीन ही खिसक गई । वह बडा भयभीत हुआ और सोचने लगा कि यह तो साक्षात् काल आगया है । हे भगवन्, अब मैं कैसे बचू ? यहा पर अब मुझे इससे बचाने वाला कोई नही है । केवल तू ही शरण-सहायी है । ऐसा-सोचकर उसने णमोक्कार मन्त्र का जपना शुरू कर दिया । इतने मे शेर ने उसके पास मे आकर उसे मारने के लिए अपना पजा उठाया । उसे देखते ही वह भय से विह्वल होकर भूमि पर गिर पडा । शेर ने कहा—अरे, तू रोता क्यो है ? तब सेठ बोला—मरते समय कौन हसता है ? शेर ने कहा—मैं तीन दिन का भूखा हूँ । यदि भूखा न होता, तो तुझे छोड देता । पर मैं भूखा हू, इसलिए खाये बिना नही रहूँगा । सेठ सोचने लगा कि यह शेर मनुष्य की बोली बोल रहा है, तो इसे समझाऊ तो सही ? शायद यह मुझे छोड दे ? ऐसा विचार कर उसने कहा वनराज, केशरी, यदि तुम मुझे मारोगे तो तुम्हे चार हत्याए लगेंगी । क्योकि जब मेरे मारे जाने का समाचार मेरे माता-पिता और स्त्री सुनेंगे तो वे किसी भी हालत मे जीवित नही रहेगे । वे सब मेरे वियोग मे तडप-तडप करके मर जावेंगे । तब सिंह ने कहा—अरे पगले, वे किसी भी हालत मे नही मरेंगे । जो किसी के पीछे मरते हैं, वे लोग और ही होते हैं । पर कुटुम्बी लोग तो स्वार्थी होते हैं, वे दूसरो के पीछे अपनी जान नही देते हैं । सेठ ने पूछा—क्या आपको इसका पक्का विश्वास

है ? शेर ने कहा—हा, मोलह आने विश्वास है कि वे तेरे पीछे नही मरेंगे। सेठ शेर की वात मुन करके वोला एकवार मैं अपने माता-पिता और स्त्री से मिल करके इस वात की जाच करना चाहता हू। आप इस समय मुझे छोड दीजिए। जाच करके मैं वापिस आऊगा, तव तुम मुझे मारकर खा लेना और अपनी भूख को शान्त कर लेना। शेर ने कहा—अच्छी वात है, तू जाकर मवकी परीक्षा करले। मैं आज और भूखा रह जाऊगा। पर तू परीक्षा करके जल्दी ही वापिस आजाना। पर देख, मेरे साथ वनिया वाजी मत करना। क्योकि कहावत है कि नीमरिया और मन वीसरिया'। प्राय सर्वत्र यही होता है कि जहा रोटी मिली कि वहा कही वात भूली। भाइयो, कोई भी काम आपके यहा होता है, तो उस समय जोश रहता है, करने की गर्मी रहती है और कहते हैं कि हमे यह करना मजूर है। मगर जहा जोश ठडा पडा, तो कहते हो कि यह तो दुनिया है, ऐमा तो कहती ही रहती है। इसलिए तू सावधान रहना और आना भूलना नही। मैं औरो जैमा शेर नही हू। मैं तेरे घर पर आ करके भी तुझे सम्भाल लूगा। तुझे किमी प्रकार से छोड़ूगा नही। सेठ ने कहा—वनराज, वनिया-वनिया मत कहो, मुझे साहूकार का लडका कहो। मैं अपने वचन को अन्यथा नही होने दूगा। भाई, देखो उसके सामने मौत खडी है, फिर भी उमे इस वात का ख्याल है कि मैं सेठ का वेटा हूँ। मैं जवान देने के वाद वदलने वाला नही हूँ। तव शेर ने कहा—अच्छा, जा-चलाजा। और अपने वायदे के मुताविक शीघ्र लौट करके आना।

अव वह मेठ शेर के पास से घर को जाते हुए मार्ग मे सोचने लगा—हे भगवान्, आज तो मैं मारा ही जाता, किन्तु तेरे नाम स्मरण से वच गया। पर अव आगे क्या होगा ? यह शेर मनुष्य की वोली मे वोला तो मुझे घर तक जाने की मोहलत मिल गई। अन्यथा अभी समाप्त हो जाता और मनके मसूवे यही खत्म हो जाते। थोडी देर मे वह घर पहुँचा और पिता को नमस्कार करके वोला—पिता जी, मैंने आपको धोखा दिया जो विना कहे ही दिसावर चला गया। मैंने आपके हृदय को भारी आघात पहुचाया। पिता ने

कहा— तू आगया, यही बहुत खुशी की बात है। तेरे बिना तो मैं दिन-रात रोता ही रहा। लडके ने पिता से क्षमा मागी और जो अपने साथ एक लाख रुपये का कीमती कठा लाया था, वह उनके गले मे पहिना दिया। पिता ने कहा—बेटा, मेरे लिए इसकी क्या आवश्यकता थी। पिता ने जो लडके के मुख की ओर ध्यान से देखा,तो पूछा कि बेटा, तू उदासीन-सा क्यो दिख रहा है? तेरे मन मे क्या चिन्ता है? उसने कहा—पिताजी, आज से तीसरे दिन मेरी मौत हो जायगी, इसी से चित्त कुचित्त हो रहा है। पिता ने पूछा कि तूने कैसे जाना कि तीसरे दिन तेरी मौत हो जायगी? लडके ने आते समय शेर के मिलने आदि का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसकी बात को सुनकर बाप बोला—अरे, तू तो महाजन का बेटा है। फिर भी तू कहता है कि वह मार खायेगा। वह अब यहा थोडे ही आ सकता है? तब लडके ने कहा—पिताजी, मैं महाजन का बेटा हूं। और जब मैंने शेर को वचन दिया है, तब मुझे वहा पहुचना ही पडेगा। यह सुनकर बाप बोला—अरे, गाड़ी का पहिया और महाजन की जबान तो बदलती-फिरती ही रहती है। लडका बोला—पिताजी, मैं महाजन और साहूकार का बेटा हू, अत दिये हुए वचन से मैं विमुख नही हो सकता हू। मुझे मरने की जितनी चिन्ता नही है, जितनी कि अपने दिये हुए वचन की चिन्ता है। यदि आपको मेरे मारे जाने की चिन्ता है और मेरे वचन को रखना है तो मेरे बदले आप शेर के पास जा सकते हैं। उसने कहा —

आप पधारो मेरी खातिर, एहसान आपका मानूंगा।
सच कहता हू ईश्वर तुल्य ही सदा आपको जानूगा॥

पिताजी, यदि आप मेरी खातिर- मेरे प्राण बचाने के लिए पधार जायेंगे तो मैं जीवन भर आपका एहसान मानूगा। मैं ईश्वर के समान आपके नाम की सदा माला फेरूंगा। आपके फूलो को गगाजी मे विर्सजित करूगा और चौरासी मारी कर दूगा। अतएव मेरे प्राण बचाने के लिए आप शेर के पास पधारे और एक मनुष्य की जीवन-रक्षा का अक्षय पुण्य उपार्जन करे। इतना सुनते ही पिता ने कहा—अरे, नालायक, क्या कहता

है ? तेरी मौत के बदले मैं मरू ? क्या दुनिया मे मेरा ही अनूठा लडका मर रहा है ? सैकडो के प्रतिदिन मरते हैं, तो क्या उनके पीछे उनके बाप मरते हैं ? तू यह कठा पहिना कर मुझे शेर के मुह मे भेजकर मरवाना चाहता है ? यह ले अपना कठा। मुझे इसकी दरकार नही है। यह कहकर उसने कठा गले से निकाल कर उसके आगे फेक दिया।

अब लडका वहां से उठकर मां के पास गया और उनके चरण-वन्दन करके दोनो हाथो की जडाऊ पोचिए देते हुए कहा—मां सा० इन्हे पहनिये, मैं आपके लिए लाया हू। मा बोली– बेटा, बुढापे में ये मुझे क्या शोभा देंगी। इन्हें लेजाकर अपनी बीदणी को देदे। लडका बोला– नहीं मां सा०, ये तो मैं तेरे ही लिए खास कर बनवा के लाया हू। ये तो तुम्हें ही पहिनना पडेंगी। मां हर्षित होती हुई बोली—बेटा, तू बडा होशियार है। तू मेरे एक ही है, परन्तु लाखो मे बढकर है। पर यह तो बता कि तेरा चेहरा उदास सा क्यो दिख रहा है ? तब उसने रास्ते के सर्व वृत्तान्त को सुनाकर कहा कि मुझे शेर के मुख मे वापिस जाना है, इसलिए उदास दिख रहा हू। मा बोली—बेटा, यह तो तूने बहुत खोटी खबर सुनाई। पर यह तो बता कि क्या किसी प्रकार यह आपत्ति टाली जा सकती है ? तब लडका बोला—

> 'थें तो मोटा हो माजी सा माहेरा आप 'थानै किण विध बीसरूं ?
> मैं तो जपूं सदा तुम जाप उरिण कहो कैसे रहूं ?

अरे मा सा० आप तो बडी हो, आपके मेरे पर बहुत उपकार हैं। अब आपका ही भरोसा है। पिताजी ने तो ऊपरी परवरिश ही की है। परन्तु आपने तो मुझे जन्म दिया है। आपकी गोद भी हरी-भरी है और सिर भी हरा-भरा है। इसलिए इतना यश आप ही ले लेवें कि मेरे बदले आप सिंह के पास चली जावें तो मैं बच सकता हू। यह सुनते ही वह डोकरी चिल्लाई और बोली—अरे कपूत, मैंने तुझे जन्म दिया और तू ही मुझसे कहता है कि तू जाकर मर जा। अरे दुष्ट, तू कल मरता था तो आज मरजा। पर मैं तेरे पीछे अपने प्राण नही दे सकती हू। यह कहकर उसने वे दोनो पोचिया उसके

सामने फेक दी । तब लडके ने कहा—मा सा०, नाराज मत हो, आपने पूछा, तब मैंने कहा । मैं तो सिंह को वचन देकर आया हू, सो मैं तो जाऊगा ही । परन्तु आप गालिया देकर क्यो अपनी हँसी कराती हैं ।

अब वह मा के पास से उठा और सोचना लगा कि वाह रे शेर, तूने बात तो ठीक ही कही है । मुझे अभी तक यह पता नही था कि दुनिया की रगत क्या है ? मैं तो अभी तक बिलकुल भोला ही बना रहा । माँ और बाप का काम तो मेरे बिना क्या अटका है, जो वे मेरे लिए अपने प्राण देवें । परन्तु औरत के तो अटके हैं । वह तो अवश्य ही मेरी बाजी रखेगी । उसने रात मे स्त्री के पास जाकर कहने का निश्चय किया ।

रंग महल मे मालिया, आल्या वचन अनूप ।
तू रक्षा कर मोहरी, पतिव्रता सदरूप ।

अब वह रात को रगमहल मे गया । उसकी स्त्री सोलह शृगार किये हुए बैठी थी । अपने पति का इन्तजार कर रही थी । पति के वहा पहुचते ही वह उठ खडी हुई और इसके पैर पडे । उसने उसे हृदय से लगाकर उसके गले मे वह लक्खी हार पहिना दिया और दोनो हाथो मे वे दोनो पोचियाँ भी पहिना दी । तथा स्त्री के लिए खासबारके जो हीरे की अगूठी लाया था वह भी हाथ की अगुली मे पहिना दी । स्त्री आनन्द से गद्गद हो गई । आभूषणो मे जडे रत्नो से अन्धेरे मे प्रकाश जगमगा उठा । हर्षित होकर वह बोली—पति हो तो ऐसा हो ।

भाइयो ये सब पैसे पर प्रसन्नता प्रकट करने वाले हैं । एक गरीब बेचारा दिन भर मे पाच कोस का चक्कर काट कर और मन भर का बोझा लाद कर हाफता हुआ घर आता है और पसीना सुखाता हुआ पीने को पानी मागता है तो स्त्री पानी की भरी चरी लेकर सामने पटकती है । और कहती है कि तुम्हारे जैसे अभागियो के पल्ले बधी तो न कभी अच्छा खाया, न पिया और न कभी कोई गहना पहिना न अच्छे कपडे ही पहिनने को मिले । कहा है—

यदि पुण्यवानी पोते होवें तो वह दिसावर जावे और चचन्नापरी लेकर

आवे ? तब फिर क्या पूछना है। औरत सावन और चैत के गीत गाती है कि 'अनूठा भवरजी अब भवरजी, चौकडी भूल जाते हैं। अरे, हिया फूटोडा ! ये तेरे गीत नही, वे तो धन के गीत हैं। यदि उसके बिना घर मे पहुचे तो घेरे मे डालो। वह कहती है कि—

एहडा पति दुनियां मे जोया नहीं लाधे
सुबे श्याम मुढो देख्या सारा काम साधे।

भाई, स्वार्थपूर्ण हो जाय तो कहे कि घूरना मत। तेरे चरण मैं दूध-दही से पखालूं। परन्तु शाबासी, तुमको एक एक नही, लाख-लाख शाबासी है। तुम केवटते तो हो। हमे यह पसन्द होती, तो हम माथा नही मुडाते। कहा है कि—

भली करी गुरुदेव जी, बन्धन नाख्या तोड़।
मिलती कोई कुभारज्या करती माथा-फोड़।

भला हो गुरुदेव का कि हमे यह आनन्द दे दिया और साधु का यह भेप दे दिया। अन्यथा कहीं ऐसी महालक्ष्मी मिल जाती तो जीवन भर छाती पर मूग दलती और तकलीफ देती रहती।

हाँ, तो स्त्री उस हार को, पौंचियो और अगूठी को पहिन कर हर्प से फूली नही समाई और पति के गले से लिपटती हुई बोली—मैं बहुत सौभाग्य-शालिनी हू जो मुझे आप सरीखे पति मिले है। परन्तु जब पति की ओर से हाथ ढीले देखे तो उसने उसके मुख की ओर देखा और उन्हें चिन्तातुर देख कर बोली नाथ, आज इस आनन्द-मिलन के समय यह उदासी क्यो ? तब उसका पति बोला—

काँई भाखूँ मैं बात गोरी, काइ भाखूँ मैं बात।
अजी, कोइ थारे गुण रो नहीं कोई पार
गोरी ! थानै काइ भाखूँ मैं बात।

लडका अपनी स्त्री मे कहता है कि तू तो भले घराने की है, सती और पतिव्रता हैं, पुण्यशालिनी है, शीलव्रत धारिणी है, मुझे तेरे ऊपर पूरा भरोसा है कि तू मेरा कहा करेगी ! नही तो पिता से जवाब मिल गया है और जन्म

देने वाली माता ने भी छेह (किनारा) दे दिया है। अब केवल तेरा ही विश्वास है। स्त्री बोली—आप ऐसी क्या बातें कर रहे हैं ? जो बात हो, वह साफ-साफ कहिये न ? पति बोला—यदि तू करने की कहे, तो कहू ? तब स्त्री बोली—मेरे स्वामी, मेरे राजा कहे और मैं नही करू, यह कभी हो सकता है ? स्त्री की ऐसी दृढतापूर्वक कही बात को सुनकर उसने जाते समय सिंह के मिलने और उसे वचन देने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसने कहा कि मैं वचन देकर आया हू, तब उसने मुझे छोडा है। कल ही मुझे उसके पास वापिस जाना पडेगा। घणी की बात सुनकर स्त्री बोली—आपने महान्-बुद्धि का उपयोग नही किया ! आप इधर-उधर बहुत फिरे, किन्तु महाजनी कला नही सीख पाये। अब बताओ कि, मुझे क्या करना है ! तब उसने कहा—बस इतनी सी बात है कि मेरे बदले यदि तू शेर के पास चली जाय तो मेरे प्राण बच सकते हैं। तेरा नाम भी सतियो की गिनती मे हो जायगा और तू सदा के लिए यशस्विनी हो जायगी। लोग भी धन्य धन्य कहते हुए तेरे गुणो को गायेंगे। तेरी चूदडी और चूडा अमर हो जायगा। पति के ये वचन सुनते ही उसने कहा—पति देव, रहने दो। मैं सब समझ गई ? मैंने आपके लक्षण देख लिये। मैं समझ गई हू कि आपने दिसावर मे दूसरा विवाह कर लिया है और उसके ऊपर अब आप का मोह हो गया है, इसलिए मुझे अपने रास्ते मे काटा समझ कर मुझे शेर के पास भेजकर मार देना चाहते हैं। परन्तु आप किस ख्याल मे हैं। मैं ही राड नही होऊगी। दुनिया मे प्रतिदिन सैकडो राडे होती हैं और सभी के दिन निकल ही जाते हैं, मेरे भी निकल जायेगे। स्त्री के ये वचन सुनने पर उसके धनी ने कहा भली आदमिन, यह क्या कह रही है ? उसके इतना कहते ही स्त्री ने हार, पोचिये और अगूठी उतार करके घणी के आगे फेंक दी और बोली—रखो ये अपने पास। मैं मरने को नही जा सकती हू। स्त्री के ये वचन सुनते ही वह वहा से निकल गया। बाहिर जाकर वह सोचने लगा—अहो, आज तक मैं बहुत बडे भ्रम मे था। सिंह ने सच कहा था कि कोई तेरा नही है। इतने मे ही मित्र-मडली आ गई है। उसने पूछा—भाई साहब, कहा जा रहे हो। उसने सिंह के मिलने से लेकर

माता, पिता और स्त्री का सब हाल मित्रो को सुना दिया और कहा कि अब मैं अपना वचनपालन करने के लिए सिंह के पास वापिस जा रहा हू। यदि आप लोगो का मेरे से स्नेह हो और बचाना चाहो तो कोई एकाद मेरे बदले को चला जावे। उसकी यह बात सुनते ही सब मित्र इधर-उधर चुपचाप खिसक गये। दुनिया का ढग उसने अच्छी तरह देख लिया तो मन मे कहने लगा—

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगें जिय एकहि तेते।
पितु, मात, दार नहीं सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी॥

भाइयो, ससार के जीवो को जब तक विवेक प्रकट नही होता है, तभी तक वे मोह के प्रपच मे पडे रहते हैं। किन्तु जब किसी सुयोग से आत्मा मे विवेक प्रकट होता है, तब उस मोह के टूटते भी देर नही लगती। यदि उस व्यक्ति के साथ उसके माता, पिता और स्त्री का मोह होता तो प्रभु के लिए पहिले मरे हैं और आज भी मरते हैं। परन्तु ऐसे मरने वाले भी लाखो-करोडो मे दो चार ही निकलते हैं। अन्यथा ससार मे सभी अपने-अपने स्वार्थ के सगे हैं, कोई किसी का सीरी नही है।

अपना बलिदान कौन करे ?

जोधपुर के पहिले वाले महाराज जसवन्त सिंह जी शहर मे गश्त लगाने के लिए निकले। कोई देख न लेवे, इस विचार से वे बावडी मे घुस गये। उसमे एक राक्षस रहता था। वह उनके शरीर मे घुस गया। जब वे दूसरे दिन सवेरे महल मे नही पहुचे, तब उनकी तलाश कराई गई। बहुत खोज करने पर भी नही मिले। जब औरतें पानी भरने को बावडी पर गई, तब बावडी के भीतर महाराज को देख कर दंग रह गई और कहने लगी कि दरबार तो राक्षस हो गये! राजमन्त्रियो तक खबर पहुची। वे लोग मत्र-वेत्ताओ को लेकर वहा पहुचे। उस समय यहा पर बालचन्द जी गुरां के दादा गुरु थे, उनको भी बुलाया गया। जाते ही उन्होंने मत्र पढना शुरु किया तो वह राक्षस बोला—अरे जतीडा, क्या मत्र पढता है? यदि तू मर भी जाय, तो भी मैं इनके शरीर से नही निकलूगा। मैं इनके प्राण लिये

विना निकलने वाला नही है । जतीजी ने देखा कि यह राक्षस है तो मजबूत । तव जतीजी भी अपनी मजबूती करने लगे । अपनी पूरी मजबूती करके उन्होंने कहा—आप ब्रह्म राक्षस कहलाते हो ? पर तुम यह तो विचार करो कि ये नव कोटी लोगो के महाराज है । इसलिए आप इनकी जान बख्श देवें । तव राक्षस बोला--हा, एक इस शर्त पर की कि यदि इनके बदले कोई दूसरा प्राण देने वाला हो तो मैं उसके शरीर मे घुस जाऊगा । परन्तु इनके रिश्ते-दारो मे से कोई अपनी इच्छा से प्राण देने वाला हो । भाई, अव कौन जावे मौत के मुख मे । परन्तु कोई न कोई माई का लाल निकल ही आता है । उस समय आमोप के ठाकुर रायसिंह जी ने कहा—कि छोड दो हमारे महाराज को और मेरे शरीर मे घुस जाओ । वस, उनके कहते ही वह राक्षस महाराज जसवन्तसिंह जी के शरीर मे से निकल कर तत्काल इनके शरीर मे घुस गया । आज भी रायसिंह जी का महल मौजूद है । जिनके टट्टी-पेशाव वन्द हो गये हो, उसके वहाँ जाते ही टट्टी-पेशाव चालू हो जाते हैं । भाई, वात यह है कि दूसरो के लिए प्राण देना तभी सभव हो सकता है जवकि उसके साथ असली प्रेम हो । दुनिया के खुदगर्ज लोग जो मोह के वशीभूत हैं और मतलव के यार हैं, उनसे नहीं दिया जा सकता ।

हा तो वह लडका गाव से वाहिर निकला और वन मे पहुँचा । वहा जाकर देखता है कि सिंह तैयार वैठा है । इसे देखते ही सिंह ने पूछा—अरे तू आ गया है । उसने कहा—हा वनराज, मैं आ गया, आ गया हू । सिंह ने पहिले तो कहा—तू जवान का पक्का निकला है । अव यह वता कि मैंने जो वात कही थी, वह सच निकली,या नहीं ? इसने कहा—हा वनराज,आपने जो कहा था वह शत-प्रतिशत सच निकला । मेरा भ्रम दूर हो गया । मेरे माता, पिता, स्त्री और मित्र मडली मे से कोई भी मेरे वदले मे मरने को तैयार नही है । तव सिंह वोला—हे भोले, अव तू मरने को तैयार हो जा । उसने कहा—मैं मरने का विलकुल तैयार हू । सिंह वोला—अरे, भगवान् का नाम स्मरण कर लिया । वह वोला—हा भगवान् का नाम स्मरण कर और प्रत्याख्यान करके ही आया हूँ । तव सिंह वोला—अच्छा, आखें वन्द कर ले । उसने आखे वन्द करली । तव सिंह ने कहा —यदि

तू सयम धारण करना अगीकार करे तो मैं तुझे नही मारूगा। तब उसने कहा—वनराज, आपका प्रस्ताव मुझे स्वीकार है। सिह ने पूछा कि दिल से, या डरसे इसे स्वीकार कर रहा है। तब उसने कहा कि रास्ते मे आते हुए मैंने निश्चय किया था कि यदि कदाचित् किसी प्रकार मेरे प्राण बच जायेंगे तो मैं सयम को धारण करूगा। परन्तु मुझे एक बात का बडा आश्चर्य है कि आप जानवर होकर मनुष्य की बोली मे बोल कैसे रहे हैं? तब सिह ने कहा—मैं शेर नही हूँ, किन्तु पूर्व भव का तेरा मित्र हू। तू मोह मे अन्धा बना हुआ था तुझे दो-एक बार पहिले सचेत किया, पर तू नही समझा। अब तुझे सचेत करने के लिए ही मैंने सिह का रूप बनाया है। अब तू ठिकाने आ गया है। यह कहकर उसने अपना देव स्वरूप प्रकट कर दिया। इस प्रकार उसका मोह देव के योग से दूर हो गया। उसने उसी समय पच परमेष्ठी व गुरु की परोक्ष-वन्दना करके केश लोच किया और स्वय ही पच महाव्रत धारण कर लिये। देव ने तत्काल साधु वेप के उचित वस्त्र और पात्र आदि दे दिये। वह इस प्रकार सयम धारण करके उनके उसी नगर के बगीचे मे आकर ठहर गया। जैसे ही यह समाचार नगर मे पहुँचा तो नगर-निवासी उसके दर्शन-वन्दन करने के लिए बगीचे मे आये। उनका नाम

यशोभद्र था। अब लोगो ने नगर मे समाचार दिया। उनके मा, बाप भी आये और स्त्री भी आई। साधु महाराज ने सबको ससार का स्वरूप बतलाते हुए धर्म-साधन करने का उपदेश दिया।

संसारेऽत्र दुरन्त दु खभयदे सार नृजन्म क्वचि-
ल्लब्ध कल्पतरूपम हि यदि चेत्सं प्राप्य देश कुलम्।
आरोग्यं सकलेन्द्रिय च सुगुरुं ज्ञान विवेकं तदा,
ससाराम्बुधितारके सुखकरे धर्मे यतध्व बुधा ॥

उन्होने कहा—इस अनन्त दुरन्त दु ख और भय देने वाले ससार मे यह कल्पवृक्ष के समान सारभूत मनुष्य जन्म, उत्तम देश, उत्तम कुल, आरोग्य, सकल इन्द्रियो की परिपूर्णता, सुगुरु, ज्ञान और विवेक तुम्हें हे ज्ञानीजनो, यदि भाग्य से प्राप्त हो गया है, तो इन्हें व्यर्थ मत खोओ। किन्तु ससार-

सागर से पार करने वाले सुखकारक इस सयम धर्म के धारण करने मे प्रयत्न करो।

अब बाप सामने आकर कहता है—आपने यह क्या किया ? मेरा घर ऊजड कर दिया। तब इसने कहा—मैंने क्या किया ? आपने ही तो किया है। अब इस विषय मे आपको बोलने का कोई अधिकार नही है। माता और स्त्री भी इन्हें देखकर अपना माथा कूट कर रह गई। भाइयो, स्वार्थियो से भी क्या प्राण दिये जा सकते हैं।

तत्पश्चात् ग्रामानुग्राम विचरते हुए उन मुनिराज ने शुद्ध रीति से सयम पाला और कठोर तपश्चरण किया। जिसके प्रताप से वे कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त हुये।

भाइयो, इस मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम की है। समता को जीतने वाले ही इसे ठिकाने लगा सकते हैं। यदि आपके भाव मोह को जीतने के हैं, तो ममता को छोडो और समता को धारण करो।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला १
जोधपुर

●●

५ | आशा, जीवन की डोर

सिरि रिसहनाह तुह पय नहकतीओ जयंतु तिजयस्स ।
जंतीओ वज्जपजरभाव मावारि भीयस्स ॥

बुद्धिमान् सद्-गृहस्थो, हम आशावादी हैं और समस्त ससार के प्राणी आशा पर ही जीवित हैं। भविष्य मे क्या होने वाला है, यह पता तो सर्वज्ञ को ही है। परन्तु यदि हम उद्योगी हैं, उद्यमी हैं और ठीक रीति से कार्य करते हैं तो हमे उसका फल अवश्य ही अच्छा मिलेगा।

आशा क्या है ?

'आशा' नाम की निरुक्ति करते हुए वाचस्पत्य कोष मे लिखा है—'**आ समन्ताद् अश्नुते इत्याशा। अशक्योपायार्थ विषयाणा तीव्राकाङ्क्षायाम्। अप्राप्तप्राप्तीच्छायां, तृष्णायां च**'

अर्थात्—अशक्य पदार्थ के पाने की तीव्र आकाक्षा मे, अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा मे और तृष्णा में आशा शब्द का व्यवहार होता है। इसके पश्चात् आशा के दिशा आदि अनेक अर्थों को बतलाते हुए लिखा है कि —

'स य आशा ब्रह्मेत्युपासते आशयाऽस्य सर्वे कामा समृध्यन्त्यमोघाः
—छा० उप० व्याख्यात च ।

अर्थात् आशा नाम ब्रह्मशक्ति का भी है। जो उस ब्रह्मशक्ति की उपासना करता है उसके सभी मनोरथ भली-भांति सम्पन्न होते हैं।

इस प्रकार आशा के दो अर्थ फलित होते हैं—एक तो सासारिक पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा तृष्णा, या तीव्र आकाक्षा का नाम आशा है और दूसरा अर्थ—ब्रह्मशक्ति का नाम आशा है। इनमे से सासारिक पदार्थों को पाने की तृष्णा रूप आशा बुरी है, क्योकि वह जगज्जजाल मे उलझाने वाली है, सुलझाने वाली नही है।

आशा की दासता

आशा—तृष्णा करने वाले की और उससे रहित व्यक्ति की मनोदशा का वर्णन करते हुए एक कवि कहता हैं कि—

> 'आशाया ये दासास्ते दासा सर्व लोकस्य।
> आशा येषा दासी तेषां दासायते लोकः ॥

अर्थात् जो आशा-तृष्णा के दास हैं, वे सारे लोक के दास हैं। किन्तु जिन पुरुषो ने आशा को अपनी दासी बना लिया—अपने अधीन कर लिया, उनका सारा ससार दास बन जाता है। इसी भाव को प्रकट करते हुए आचार्य सकलकीर्त्ति कहते हैं—

> आशा दुर्गतिदायनैक चतुरा स्वर्लोक मोक्षार्गला,
> पापद्वेष कुशोक रोग भयदा सम्मानविध्वंसिकाम्।
> लोके सद्धनभक्षणैक कुशलां सद्धर्मनिर्नाशिका,
> भ्रातस्त्वं त्यज सर्पिणीमिव चला स्वर्मुक्ति सम्प्राप्तये ॥

अर्थात्—सासारिक पदार्थों को पाने की यह आशा-तृष्णा दुर्गतियों को देने मे चतुर है, स्वर्ग और मोक्ष के द्वारो को बन्द करने वाली दृढ अर्गला (साँकल) हैं, पाप, द्वेष, चिन्ता, शोक, रोग और भय को देने वाली है, ससार मे सन्मान का विध्वस करने वाली है, सच्चे आत्म-धन को भक्षण करने मे अतीव कुशल है और सद्धर्म को नाश करने वाली है, ऐसी नागिनी के समान आशा को हे भाई, तुम स्वर्ग और मुक्ति की प्राप्ति के लिए छोडो।

आगे वे और भी कहते हैं कि—

मन्ये स एव पुण्यात्मा यस्याशा निधन गता ।
इहामुत्र च नि सङ्ग इन्द्रचक्रधरैः स्तुत ॥

अर्थात्—मैं उसी को पुण्यात्मा मानता हूँ कि जिस व्यक्ति की आशा मरण को प्राप्त हो गई है। आशा के सग से रहित पुरुष इन्द्र और चक्रवर्ती जैसे पुरुषो से पूजा जाता है। इसी भाव को लक्ष्य मे रख कर ही कहा गया है कि—

आशा हि परमं दु.ख नैराश्य परम सुखम् ।

अर्थात् आशा परम दुःख है और निराशा परम सुख है।

इस प्रकार सासारिक भोगो को पाने की आशा-तृष्णा तो परम दु ख-दायिनी है और उसका परित्याग कर परम ब्रह्म की, शुद्ध आत्मा की अनन्त शक्ति रूप आशा परम सुख को देने वाली है। आज मैं इसी सच्ची आशा के विषय मे कह रहा हू कि यदि हमारी भावना श्रेष्ठ है, सासारिक स्वार्थ-साधन की नही, किन्तु परमार्थ-साधन की है, जगत के उद्धार की है, तो हमे उसका अवश्य ही फल मिलेगा। आशा से हमारा अभिप्राय उत्तम कार्य के लिए उद्योग—उद्यम करने से, उत्साह वनाये रखने से और पुरुषार्थ मे तत्पर रहने से है।

ध्येय प्राप्ति की अभिलाषा-आशा

किसी भाई ने आम के वृक्ष का वीज भूमि मे डाला—गुठली को वो दिया। अव क्या उसके वोते ही फल आ जायगा? क्या आज ही आम का वृक्ष फलो से लदा हुआ खडा हो जायगा? नही। उस व्यक्ति को आम का फल पाने के लिए समय की प्रतीक्षा करनी पडेगी। सवसे पहिले वह उसके पौधे को सीचेगा, उसका सरक्षण करेगा, कीडे और प्रतिकूल वातावरण आदि से वचायेगा। फिर कही दस-वारह वर्ष तक इसी आशा पर आश्रित रहने के पश्चात् उसको उसके मीठे और रसीले आम्र-फलो की प्राप्ति होगी। भाई, इतनी प्रतीक्षा के पश्चात् वह वीज फल देने के योग्य होता है। आज जो वीज भूमि मे वोते हो, उसका सात दिन के वाद अकुर सामने आता है।

आज आपने कुआ खोदना प्रारम्भ किया तो दो-तीन मास के पश्चात् वह पानी पीने के योग्य वनता है। अभी चक्की से गेहू पिसवाकर मगवाया तो क्या आटा आते ही रोटी हाथ मे आ जाती है ? नही। मकान के वनवाने मे भी देरी लगती है। और इसी प्रकार अन्य कार्यों मे भी देरी लगती है और समय की प्रतीक्षा करनी पडती है। भाई, इन सांसारिक कार्यों मे भी आशा-निहित है। इसीलिए कहा गया है कि आशा अमर धन है।

आशा जीवन की डोर

भाई, प्रत्येक प्राणी का जीवन आशा की डोरी पर चलता है। एक कवि ने कहा है कि भगवन्, मेरे जितने दुष्कर्म है, उनका फल मुझे व-खुशी मिले। चूँकि मैंने पाप किये हैं तो उनका फल तो मुझे मिलेगा ही और मुझे सहर्ष भोगना भी चाहिए। परन्तु मुझे ऐसा फल नही मिलना चाहिए कि जिससे मेरी आशा का ही भग हो जाय। आशा समाप्त न हो। मुझे आशावादी वनाये रखना। आशा के भग हो जाने पर मनुष्य को दिन विताना कठिन हो जाता है। इसलिए हे प्रभो, मुझे आशा को सवल वनाने की प्रेरणा दो, आशा को पल्लवित और वृद्धि गत होने का अवसर दो। परन्तु किसी की आशा पर तुषारापात करना और कुठाराघात करना यह ठीक नही है।

आज हम धर्म ध्यान कर रहे हैं, पर्युषण पर्व के दिन चल रहे हैं, जैनधर्मावलम्वी प्रत्येक मानव के मानस मे धर्म-साधना करने की भावना प्रस्फुटित हो रही है, और प्रत्येक भाई अपनी शक्ति के अनुसार अपने अनुकूल वातावरण मे नवकारसी, पौरुषी, एकासन, आयम्विल, नीवी और उपवास आदि व्रत-प्रत्याख्यान करता है। यदि किसी की विशेष अन्तराय टूटी हो तो वह लम्वी तपस्या भी करता है। यदि किसी की तपस्या करने की शक्ति नही है तो वह व्याख्यान ही सुनता है और साधु-सन्तो एव साधर्मी भाइयो की सेवा ही करता है। जिसके पास धन है, वह धन के द्वारा ही लाभ लेता है। परन्तु इन सव कार्यों के पीछे सव को आशा है। वह आशा क्या है ? यही कि हम अपने जीवन को पवित्र वनायें, आत्मा को कर्म-रोग से निरोग करें। जैसे शरीर को निरोग वनाने के लिए एक ही दवा तो नही है, अनेक

दवाए हैं और देने के तरीके भी अनेक प्रकार के हैं। अव जिस व्यक्ति की प्रकृति के साथ जिस औषधि वा सुयोग मिल जाता है, वह व्यक्ति शीघ्र स्वस्थ एव निरोग हो जाता है। परन्तु रोगी किसी भयकर रोग से ग्रस्त है और आप सोचें कि क्यो डाक्टर को लावे, क्यो वैद्य को दिखावें, क्यो दवा-दारु मे इतना रुपया खर्च करें, क्योकि यह तो मरने ही वाला है, तो क्या यह आपकी समझदारी कहलायेगी ? नही। क्योकि कहावत है कि जव तक श्वासा, तव तक आशा। भले ही डाक्टर-वैद्यो ने कह दिया हो कि अव यह नही वच सकता है फिर भी सव कोशिश तो यही करते हैं कि शायद दवा लग जाय और यह अच्छा हो जाय। पर दवा लगती है उसी हालत मे जवकि उसका आयुष्य लम्वा हो, वलवान् हो।

व्यावर मे वावू पन्नालाल जी जैनी वकील थे। वे एक वार इतने अधिक वीमार हुए कि व्यावर और अजमेर के डाक्टरो ने कह दिया कि इसे अस्पताल से घर ले जाओ—अव ये वच नही सकते हैं। इनका घर पहुँचना भी मुश्किल है। घर वाले उन्हे अस्पताल से घर ले आये। उनके मित्रो ने उनके वडे भाई से कहा—जैसे भी हो जयपुर इन्हे ले चलना चाहिए और वहा जो रिटायर्ड जर्मन डाक्टर है, उसे एक वार दिखाना चाहिए। यदि आयुष्य होगा तो दवा कारगर हो जायगी और ये वच जायेंगे। अन्यथा जो यहा होना है, वह कही भी हो जायगा। ऐसा निश्चय करके उनका वडा भाई डाक्टर और मित्र को साथ लेकर कार-द्वारा जयपुर गये। जर्मन डाक्टर को दिखाया और उसका इलाज चालू किया। वे कुछ दिनो मे विलकुल निरोग होकर घर आये और यहाँ के डाक्टरो से मिले—तो वे लोग इन्हें देखकर आश्चर्य से चकित होकर वोले—अरे, आप कैसे वच गये। हम लोग तो समझते थे कि तुम उस दिन घर तक भी जीवित नहीं पहुच पाओगे। भाई, ऐसी एक नहीं अनेक घटनाएँ होती हैं। वे स्वस्थ होने के वाद कई वर्ष जीवित रहे। वह तव सभव हुआ, जवकि उनका आयुष्य शेष था और भाग्य प्रवल था। इसलिए सवको मरते दम तक भी वीमार की दवा-दारू और परिचर्या करते रहना चाहिए। क्योकि हम नही जानते हैं कि उसका आयुष्य शेष है, या

समाप्त हो रहा है। वे ही वकील साहव जव आयुष्य समाप्त होने को आया तो अभी पिछले दिनो प्रात काल उठे और अपनी पत्नी से वोले—पैरो मे कुछ दर्द सा मालूम होता है। पत्नी जैसे ही उनके पेर सहलाने को हुई कि उनके प्राण-पखेरु उड गये। इनके यह जीवन की ये दोनो घटनाए कालमृत्यु और अकाल-मृत्यु का खुलासा रूप प्रकट करती हैं कि यदि पहिलीवार डाक्टरो के कहने पर हताश होकर इलाज कराने जयपुर न जाते और उनकी मृत्यु हो जाती, तो वह अकालमृत्यु कही जाती। और पीछे जो मृत्यु हुई है, वह तो कालमृत्यु है ही। इसलिए किसी के असाध्य वीमार होने पर भी ऐसा कभी मत कहो कि इसे दवा देना वेकार है। ऐसा कहना ही गलत है। आशा वहुत वडी वस्तु है। आशा के ऊपर ही स्त्री अपने वच्चे को देखते ही प्रसन्न होती है कि मेरे घर का दीपक आगया। हालाकि अभी वह जन्मा ही है और जरासी प्रतिकूल हवा के लगते ही उसकी ज्योति वुझ सकती है। परन्तु आशा वडी वलवती है और उसके ऊपर ही वह अनेक आपत्तियो और वीमारियो से वचाती हुई वह अपने लाल को पालती है और वह एक दिन उसे वडा देखकर निहाल हो जाती है, तव कही जाकर वह घर का दीपक कहलाता है।

भाइयो, इतना विवेचन करने के पश्चात् अव तो आप लोग यह जान ही गये कि आशा ही सव कार्यों मे प्रधान है। अपनी भी आशा यही है कि हमे वीतराग जिनेन्द्र देवता प्ररूपित यह परम पवित्र जैन धर्म मिला है और उनकी पवित्र वाणी को सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ है, तो भले ही कैसे क्यो न हो, परन्तु इतना तो निश्चित समझें कि हमारी पुण्यवानी जर्बदस्त है। इसीसे हमे वह समय प्राप्त हुआ है। अव हम यदि अच्छी करनी करेंगे, व्रत, नियम, जप, तप करेंगे और धर्म पर दृढ श्रद्धा रखेंगे तो एक न एक दिन संसार-सागर से अवश्य ही पार हो जावेंगे।

हम कहते हैं कि भाई, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष और मोह आदि को छोड दो, तो क्या दुनिया एक दम से छोड देती है? नही छोडती है। अव आप कहे कि महाराज, फिर आप उपदेश क्यों देते हो? जवकि

दुनिया मानती नही है और राग-द्वेष को छोडती नही है। तब फिर आप अपना अनमोल समय क्यो बिगाड रहे हैं ? यदि आप हमारा कहना मानें, तब तो आप व्याख्यान देना बन्द कर देवें। भाइयो, बताओ—क्या ऐसा कहने वालो का कहना मानकर हम व्याख्यान देना बन्द कर देवें ? और क्या उनका कहना ठीक है ? नही है। हमारे महर्षिगण कह गये हैं कि —

श्रेयो यत्नवतोऽस्त्येव, कलिदोषाद्गुणद्युतौ।
असिद्धावपि तत्सिद्धौ स्व-परानुग्रहो महान् ॥

अर्थात्—अच्छे कार्य के लिए धर्म-प्रचार का, पुरुष का प्रयत्न यदि कलिकाल के दोप से सिद्ध न हो सके, तो भी यत्न करने वाले व्यक्ति का कल्याण तो निश्चित ही होता है। और यदि उसका प्रयत्न सिद्ध हो जावे तो स्व और पर का महान् अनुग्रह-लाभ है ही। अर्थात् अपना और दूसरो का भला होता ही है।

भारतीय काग्रेस १८६० ईस्वी से प्रारम्भ हुई। और तब से लेकर आज तक उसमे अनेक उतार और चढाव आये। कई सघर्षों का सामना करना पडा। और आप लोग ही कहा करते थे कि क्या ये काग्रेसी अहिंसा और सत्य के बल पर स्वराज्य ले लेंगे ? ये क्या करने के योग्य हैं। परन्तु क्या हवा चली और गाधी की आधी चलते-चलते वह स्वराज्य प्राप्त हुआ, या नहीं ? अब यदि उन निराशावादियो के कहने पर आशावादी वीर कर्मठ कार्यकर्त्ता और चोटी के नेता उस अपनाये कार्य को छोड देते तो क्या स्वराज्य प्राप्त कर सकते थे ? और उस ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता के सामने टिक सकते थे ? और क्या उन्हे बिस्तरगोल करवा कर सात समुन्दर पार भगा सकते थे ? परन्तु वे आशावादी लोग अपने दृढ संकल्प के साथ अपने लक्ष्य पर डटे रहे और स्वतन्त्रता प्राप्त करके ही रहे ?

निराश मत बनो

धर्म प्रेमी बन्धुओ, जब मैं आपकी समाज की ओर दृष्टिपात करता हू, तो बडी दयनीय और अज्ञानमय प्रवृत्ति देखता हूं। क्या यह बुद्धिमत्ता की बात है कि जो कहा करते हो कि इस कार्य को बन्द करो, उस कार्य को

वन्द करो। यदि आपको किसी से ईर्ष्या है तो मन मे यही भावना रहती है कि यह इससे क्यो वोलता है। परन्तु भाई, आप अपनी ईर्ष्या को अपने ही पास रहने दो। यदि कोई समाज मे नवीनता लाने की—नया काम करने की प्रेरणा देता है तो उसको करने दो, उसे प्रेरणा देने दो। हा, यह वात अवश्य है कि कार्यकर्ताओ को दूरदर्शी होना चाहिए। और कार्य भी दूरदर्शिता के साथ करना चाहिए। फिर प्रारम्भ किये कार्य मे सफलता अवश्य ही मिलेगी।

हम एक वार देवगढ पहुचे। देवगढ मदारिया परगना दो सौ दस गावो का है। मेरे पास वहा के गाव और उनके कामदार आये और उनके आग्रह-पूर्वक विनती करने पर हम वहाँ गये। वहा पर लोगो ने अर्ज की—महाराज! अपनी जाति मे सुधार होना चाहिए। मैंने भी कहा कि आपका प्रस्ताव उचित है और समय को देखते हुए जाति मे सुधार होने की नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती है। तव कितने ही लोगो ने कहा—महाराज सा०, आप भी क्या वात कर रहे हैं? यह मतीरो (तरवूजो) का भार उठाना कठिन है। मैंने कहा—भाई, मैं जव आपसे सलाह लू, तव आप सलाह देना। मेरा तो अच्छे कार्य मे योगदान देने का काम है। अव सफलता चार आना, आठ आना या सोलह आना मिलती है, यह भविष्य के गर्भ मे है। परन्तु मैं इन छोटे विचारो को सुनकर और आपकी निराशा भरी—वातो से कभी भी कार्य को छोडने वाला नही हू। अव क्या था, सव जगह के मुखिया इकट्ठे हो गये। उन दोसौ दस गाव मे चार गाव ताकत वाले थे और वे ही गाव प्रमुख थे। जव कभी न्यात-विरादरी मे काम होता है, तव चारो गावो के प्रमुख लोगो का दस्तखती परवाना जाता है और सव लोग इकट्ठे हो जाते हैं। पहिले चारो गावो के मुखिया भाइयो को वुलावा गया। चार वजते-वजते चारो गावो के आठ-आठ प्रमुख व्यक्ति आ गये। कुल वत्तीस आदमी आये और उन्होंने आपस मे सलाह की। फिर उन्होने मेरे पास आकर कहा—गुरुदेव, यदि आपकी राय हो तो आने वाली पौषवदी तेरस के दिन सभी गावो के लोगो को वुला लिया जाय? आखिर परवाने

लिखवाने शुरू कर दिये गये। मैंने सोचा कि इस बीच के समय मे —चू कि सुधार का यह पहिला कार्य है—अत वाहिर गावो मे घूमकर सभी परि-स्थितियो का अध्ययन करना भी आवश्यक है। यह सोचकर मैं वहुत से गांवो मे घूमने चला गया। जहा-जहा मैं गया, वहा के सव लोगो ने यही कहा कि महाराज, यह होना ही चाहिए। यह वहुत अच्छा काम है, इससे सवको राहत मिलेगी। अव जहा अधिकतर लोगो ने अच्छा कहा, वहा दो-एक गाव के दो-चार लोगो ने यह भी कहा कि महाराज, आपने यह उल्टा काम क्यो पकड लिया! आप तो उपदेश दीजिए। जाति तो न कोई सुधरे, न सुधरावे। परन्तु इससे तो और विगाड होगा और झगडा भी होगा। तव मैंने उन लोगो से कहा—भाइयो, यदि आप लोग ऐसा कहते हैं तो लडाई के साधन साथ मे लेकर अवश्य आना। फिर मैं देखू गा कि जीत किसकी होती है? जीत तुम्हारी होती है, या उनकी होती है। मैं ऐसे झगडने वाला नही हू। मैं तो तुम्हारे ही वचन कह रहा हू। काम करना और प्रयत्न करना मेरा काम है। इस प्रकार कुछ गावो मे घूम करके मैं पौषवदी वारस को देवगढ पहुच गया। तेरस को धडाधड गावो के लोग आ गये। रात को विभिन्न गावो के इक्कीस व्यक्तियो ने प्रस्ताव वनाकर तैयार कर लिया और निश्चय किया कि इस पर मोहर-छाप गुरुदेव के चरणारविन्दो मे लगाई जावे। वहा पर एक दिन महावीर छात्रालय मे मेरा व्याख्यान था। दो-चार वातें अटपटी थी। उनके लिए चार-पाच आदमी अडने वाले थे। अत मैंने उनको पहिले वुलाया और कहा कि मुझे व्याख्यान देने के लिए वुला तो लिया। मगर आप लोगो की नीति क्या है सो खोल कर कहो। तो वे भी मान गये। इसके पश्चात् दूसरे भी सात प्रस्ताव पास हुए और उनमे सफलता मिल गई। अव साराश मे मेरा कहना यह है कि हम उन लोगो का कहना मानकर पहिले से ही हताश या निराश होकर रह जाते, तो क्या यह उन्नत कार्य हो पाता! परन्तु मुझे दृढ विश्वास और पक्की आशा थी तो सव काम सफल हो गया।

पिछले वर्ष राणावास के चौमासे मे कहनेवाले अकेले लडते थे कि

महाराज सा० की प्रेरणा वडी जोरो से होती है। परन्तु पीछे वे ही लोग कहने लगे कि चौमासा अच्छा हुआ और यश मिल गया। पहिले कहते थे कि 'सिह-सभा' करके यहा का यश गवाना है क्या ? परन्तु मैंने कहा कि जिसको गवाना होगा, वह गवाएगा। मेरी तो भावना वढाने की थी तो वावन गाव वाले इकट्ठे हुए। और जिसकी आशा भी नही थी तो बीटी जैसी चीज को भी लोगो ने ठोकर मार दी और फौरन वह काम हो गया। भाई, हम तो काम करते रहे और आगे वढते रहे। जव आगे वढते हैं तव उसमें झोके और झगडे तो आते ही हैं। मगर उनसे हमे जूझना चाहिए, हताश होकर पीछे नही हटना चाहिए, वल्कि हिम्मत और पूर्ण आशा और विश्वास के साथ आगे वढते रहना चाहिए। आज जैसी भावना है, फिर क्या वही भावना वनी रहती है ? अरे, एक घडी के भीतर ही भावना वदल सकती है। इसलिए जिस समय जो भावना अच्छे काम करने की हो, वह काम तुरन्त कर लेना चाहिए। क्योकि कहावत है कि 'Strike while the iron is hot' अर्थात् जव लोहा गर्म हो, तव उस पर चोट देकर तुम कुछ भी वना सकते हो। ठडा होने के पश्चात् कुछ भी नहीं वन सकेगा। इसीलिए समझदार लोग सदा सावधान रहते हुए समय की प्रतीक्षा करते हैं और अवसर पाते ही तुरन्त काम कर लेते हैं।

अभी आप इतने लोग वैठे हुए हैं और कोई कहे कि महाराज साहव, आप क्यो व्यर्थ मे इतनी माथा पच्ची करते हैं। क्या कोई दीक्षा लेने वाला है ? परन्तु भाई, क्या मालूम है कि कल किसके भाव दीक्षा लेने के हो जाये। जोधपुर मे वाहिर से आकर किसी ने दुकान खोली। अव कोई सोचे कि इसको माल कौन देगा और यह यहा क्या कमायगा ? इसे कह दो कि अपने घर चला जाय और चुपचाप वैठ जाय। परन्तु जव वह हिम्मत करके वैठता है तो माल देने वाले साहूकार और माल लेने वाले ग्राहक मिल ही जाते है। जितने भी दुकानदार हैं, वे सव पहिले से ही लखपति और करोडपति नही थे। परन्तु हिम्मत के साथ आशा के भरोसे कार्य करते करते आज लखपति और करोड़पति वन गये।

रस्सी से पत्थर घिस जाते हैं

हिम्मत हारने वाले भाइयो, जरा सोचो कि पत्थर कितना सख्त होता है ? वह हथौडे और घनो से टूटता है और टाकी से साफ होता है। तथा आपके पैर कितने कोमल हैं। परन्तु आप प्रतिदिन जहा से आते-जाते है, तो वहा के पत्थर घिसे, या नही ? गावो मे वहिनें कुओ से पानी भरती हैं। उस पर पडी पत्थर की पट्टी नरम रस्सी से पानी खीचते-खीचते कट जाती है, या नहीं ? भाई, कुए के पत्थर पर गड्डे पड जाते हैं कोमल रस्सी से और मार्ग पर पडे पत्थर घिस जाते हैं आपके कोमल पावो से चलने पर। वात यह है कि किसी कार्य को विना किसी नागा के निरन्तर अविच्छिन्न प्रवाह से करते रहने पर वडे से वडे असाध्य से दिखने वाले कार्य भी किसी न किसी दिन साध्य हो ही जाते हैं। नदी मे निरन्तर वहने वाला अटल जल भी मार्ग मे आने वाली वडी वडी चट्टानो को भी काट देता है। आशा को धारण करने वाले महान् विद्वान् आशाधरजी कहते हैं कि—

सामायिकं सुदु साध्यमप्यभ्यासेन साध्यते।
निम्नीकरोति वार्विन्दु किन्नाश्मान मुहु पतन् ॥

अत्यन्त चचल चित्त वाले और कठोर अन्त करण वाले आकुलताओ से भरे हुए ससारी जीवो को सामायिक का धारण करना-समता भाव को धारण करना अति दु साध्य है, तो भी वह समताभाव निरन्तर के अभ्यास से सिद्ध कर लिया जाता है। जैसे पत्थर के ऊपर निंरन्तर गिरने वाली जल की एक वूद भी क्या उसमे गड्ढा नही कर देती है ? अर्थात् कर ही देता है।

भाइयो, आपने अनेको वार सन्तो के व्याख्यानो मे सुना होगा कि कुपात्र से कुपात्र भी अनेक व्यक्ति निरन्तर के उपदेश से, अच्छी प्रेरणा से सुधर गये हैं। फिर आप लोग तो कुपात्र नही है, ये वैठे हुए वुजुर्ग लोग कुपात्र नही हैं, देश और हमारी जाति कुपात्र नही है। आपकी जाति सुपात्र है और आप लोग भी सुपात्र ही पैदा हुए हैं। हा, यह हो सकता है कि पडौसी की सगति से या और किसी दुर्व्यसनी के ससर्ग से आप मे से कुछ लोग विगड़

गये हो और मार्ग से भटक गये हो। परन्तु सुपात्र को सुधारते देर नही लगती है और उसे सुधरते भी देर नही लगती है। कई सुधरे है और कई बिगडे हुए सुधरेंगे। यह भगवान् का वचन सत्य है।

कितने ही भाई विचार करते हैं और कभी-कभी आकर मेरे से भी कहते हैं कि महाराज, आप व्याख्यान मे जाति सुधार की बातें क्यो करते हैं ? क्या यह जाति सुधरे, ऐसी है ? वहा तो हाथी के दात खाने के और हैं और दिखाने के और हैं। पर भाई, हमे ऐसा ज्ञान नही है कि आपके मन मे विचार क्या है ? यदि ऐसे मिल जायेंगे तो उनसे कह देंगे कि बोलने की हिम्मत मत करो। परन्तु यदि कोई बोलना चाहता है तो उसकी बोली बन्द नही की जा सकती है। मौका है—काम बन भी जावे और नहीं भी बने ? परन्तु हमारा काम तो सेवा करने का है। अब रहा गाने का सवाल ? तो आप सन्तो के गुण गाइये। भगवान के गुण गाइये। जिन्होंने अपने आराध्य भगवान् के गुण गाये, वे तभी स्वय भगवान् बने। भगवान के लिए अपनी श्रद्धा के दो फूल अवश्य चढाये जावें। यदि सन्तो के गुण-ग्राम गाये जावेंगे तो आप लोग ही कह देंगे कि यह प्रतिदिन क्या हो रहा है ? परन्तु ये हमारे बच्चे, ये नवयुवक, यदि यहा पर गाने के लिए सीना खोलेंगे तो एक दिन हजारो की सभा मे भी स्टेज पर बोलने के लिए खडे हो जायेंगे। अरे भाई, यह तो इनको प्रोत्साहन देना है। लोगो ने छोटी-छोटी बातो पर ऐसे विचार रखकर ही जाति का सत्यानाश कर दिया है।

आज विधान सभाओ मे कितने मिनिस्टर हैं ? उन्होंने सब कुछ तो कर लिया और ऊचा पद भी पा लिया। किन्तु यदि आज उन्हे स्टेज पर खडे करके बोलने के लिए कहा जाय तो उनके पैर थर्र-थर्र कापने लगते हैं, क्योकि अभी तक उनकी हिम्मत खुली ही नही, बोलने के लिये सीना खुला ही नही। आज इन नौजवानो का सीना खुलेगा तो आगे ये खुलकर बोल सकेंगे और उचित बात समझेंगे उसे निर्भय होकर जनता—जनार्दन के समुख कह सकेंगे। इसलिए हमारा काम तो इन लोगो के उत्साह को बढाने का होना चाहिए। उनके उत्साह को भग करने का काम नही होना चाहिए।

अब आप कहे कि महाराज, हम तो आपका व्याख्यान सुनने को आते हैं। तो भाई, वात वही की वही है। अब बच्चे कहें या दूसरे कहे तो वही की वही वात है। हां, सन्तो के वचन उनके लिए वजनदार हैं। वे भगवान् के वचनों का सहारा लेकर ही तो बोलते हैं। उनकी भगवान् के वचनो मे श्रद्धा अधिक है तो जैसा वनता है, वैसा सन्त भी सुना रहे हैं। देख लो घटा-डेढ घटा रूपचन्द्रजी मुनिजी सुना रहे है। और मैं वुड्ढा हूँ तो भी घटा दो घटा सुना ही रहा हू। यदि ये वचन अच्छे लगें तो सुनते रहो। यदि किसी के वचन अच्छे नही लगें तो घवराने की वात नही। परन्तु मैं जाति के सुधार की वात वन्द कर दूं, तो यह नहीं हो सकता है। जाति, समाज और धर्म को ऊचा उठाने के लिए मैं कोई मौन नही रखूगा, क्योकि मेरी कुछ प्रकृति ही ऐसी है। अव आपको यह प्रकृति अच्छी लगे, या वुरी लगे। परन्तु मैं अपने निश्चय पर अटल हू। मेरे पास दावा नही है कि मैं जो कहूँ, वह सव को अच्छा ही लगना चाहिए। भाई, रोगी को नीरोग और कम पढ़े हुए को ऊचा पढाने की भावना होनी चाहिए। आप वताओ कि मास्टर को क्या पता था कि यह लडका एक दिन वी० ए०--एम० ए० वनेगा। परन्तु उनका काम तो पढाने का है। मेघ वरसते है तो समान रूप से वरसते हैं। यह नही कि पहाड पर, खेतो पर तो वरसूगा और महलो तथा खड्डो व झोपडियो पर नही वरसूगा। वह किसी प्रकार का भेद-भाव नही रखता है। किन्तु सव पर समान रूप से ही वरसता है। अव कोई कहे कि मेघ यहा क्यो वरसा ? भाई, उसका तो स्वभाव ही वरसने का है। जीमनवार मे जीमने के लिए सव बैठ गये। अव परोसगारी करने वाला परोसगारी कर रहा है। तव जीमने वालो मे से कोई कहे कि मुझे मीठा नही सधता है, तो क्या वह परोसने वाला ओरो को भी मीठा परोसना छोड देवे ? और कोई कहे कि मेरे घी नही चलता है,तो क्या वह औरो को भी घी की वस्तु परोसना छोड देवे ? परोसने वाले का काम तो परोसने का है और खाने वालो की मनवार करने का है। अव जिसकी जैसी रुचि हो, वह वैसी चीज को ले लेवे। पर परोसने वाले को सवके लिए परोसने से रोका नही जा

सकता है। घरधणी के जिमाने वाले के जो जो चीजें वनी होगी, वह तो उन सव को परोसने के लिए भेजेगा ही। यह जीमने वालों का काम है कि जो चीज उनकी प्रकृति के अनुकूल हो, उसे लेवें। और जो चीज प्रतिकूल हो, उसे नहीं लेवें। पर किसी एक के पीछे सवको तो परोसने से तो कोई मना नही कर सकता है। इसी प्रकार व्याख्यान मे भी एक ही प्रकार की वात नही आती है। यहा तो न्याय-नीति, देश-समाज और धर्म, सभी की वातें आती हैं। अव जिस श्रोता को जो वात पसन्द हो, वह उसे ग्रहण कर लेवे। उससे उसे लाभ ही पहुंचेगा। यह तो दुनिया हैं। यहा पर तो आलोचना-प्रत्यालोचना होती ही रहती है। आप दुनिया की क्या वात पूछते हो ? अभी तो लिखा जा रहा है कि स्वर्ग और नरक कहा हैं। आप जैन घर मे जन्मे हुए हैं, तो ये प्रश्न पूछे ही जायेंगे। यदि आपको इनका ज्ञान है तो आप इनका उत्तर दे देगें। अव सुनने वाला माने तो ठीक है और नही माने तो उसकी इच्छा है। परन्तु हम भगवान् के वचनो को झूठा मानने को तैयार नहीं हैं। अरे, जो भगवान के वचनो की प्ररूपणा करते हैं, आप उन्हे सुनने के लिए भी तैयार नही हैं।

आशा के सहारे कष्ट भी गुजर जाते हैं

हा, तो आज मैं कह रहा हू कि आशा के ऊपर यह संसार टिका हुआ है। पवनजय अजना के साथ विवाह करके अपने महल मे आये और उसे उसी समय अपनी दृष्टि से उतार दिया। अव सती होने के नाते क्या उसे सथारा कर लेना चाहिए था ? परन्तु नही किया, क्योकि उसे आशा थी कि एक दिन मेरे पति मुझे अवश्य स्वीकार करेंगे। अव वताओ उसकी आशा फलीभूत हुई या नही ? वाईस वर्ष के पश्चात् उसे उसके पति मिले। किन्तु फिर भी दुर्दैव का योग जुडा और फिर उसे घर से वाहिर निकाल दिया गया। उस समय तो वह घवरा कर मर सकती थी। परन्तु उस समय भी उसने यही कहा कि नही मुझे पूर्ण विश्वास है कि एक दिन मेरा कलक अवश्य धुलेगा और मैं कुन्दन के समान चमकू गी।

सती चन्दनवाला भोयरे मे—तलघर मे वधी हुई पडी रही। जैसे

बाजार मे साग-भाजी बिकती है, वैसे ही वह राजपुत्री बिकी। बताओ— क्या वह राजकुमारी ऐसे अपमान को सहन कर सकती थी ? नही। किन्तु उसने यह सीख रखा था कि आशा अमर धन है। उसने सोच लिया मन मे कि 'जब वे दिन नही रहे, तो ये दिन भी नही रहेगे।' यह तो हवा का झोका है जो आता है और चला भी जाता है।

भाइयो, जब आप लोग सुधार करेंगे, तभी सुधार होगा। जब तक सुधार नही करेंगे, तब तक सुधार होने वाला भी नही है। पहिले का खाया हुआ भोजन पेट मे पडा है, अभी बाहिर निकला नही है और आप ऊपर से भोजन पर भोजन करते जावें, तो क्या होगा ? बीमार ही पडेंगे। समाज मे पहिले से ही अनेक बुराइया भरी हुई हैं, उन्हे दूर नही किया जाय और दिन पर दिन नई बुराइया उसमे घुसती जावे, तो बताओ समाज का क्या हाल होगा। अत एव हम चू कि समाज के अग हैं और समाज के साथ रहते हैं तो हमे समाज की शुद्धि का भी ध्यान रखना ही होगा। इसी प्रकार अपनी आत्म-शुद्धि का भी विचार करना होगा कि जब हम श्रावक कुल मे पैदा हुए हैं और भगवान महावीर की पवित्र वाणी को सुनने का अवसर मिला है तो हम उसके द्वारा अपने आत्मा की शुद्धि कर लेवें। भगवान महावीर अपने समय के साधु और श्रावको से यह कह कर नही गये हैं कि मैं तुम्हे इतने भव मे मोक्ष भेज दू गा। वे तो अपने सम्पर्क मे आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से यही कहा करते थे कि **'जहा रोचेह, मा पडिबंध करेह'**। अर्थात् धर्म पर जैसी श्रद्धा हो, तदनुसार कार्य करो। परन्तु विलम्ब मत करो, किसी प्रकार का प्रतिबन्ध मत रखो। वे तो तद्भव मोक्षगामी गौतम स्वामी से भी यही कहा करते थे कि **'समय गोयम मा पमाइए'**। अर्थात् हे गौतम, एक समय का भी प्रमाद मत करो। आज भी उनका यही दिव्य सन्देश हमारे कानो मे गू ज रहा है और आप लोगो के कानो मे भी गू जना चाहिए कि हम अच्छे काम को करने के लिए एक समय का भी विलम्ब न करें। आज कोई किसी को स्वप्न नही आया है और न कोई कहने वाला ही आया है। किन्तु आपको एक ही आशा है कि भव्यात्मा लोगो के लिए भगवान् जो उपदेश दे

गये हैं, आज हम उनका आश्रय लेंगे तो इनसे हमारा अवश्य ही कल्याण होगा। यदि हम आशा छोड दें और श्रावकपना और साधुपना छोड दें तो कोई सिद्धि होने वाली नही हैं। यदि आप लोग अपने-अपने व्रत मे दृढ़ रहेंगे तो एक दिन सिद्धि अवश्य होगी।

आशा बनाम विश्वास

आशा के ऊपर विचार करते हुए मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है। एक समय की बात है कि एक नगर के राजा का राजकुमार और प्रधान का लडका ये दोनो बालसाथी थे अत दोनो मे घनिष्ट मित्रता थी। वे दोनों एक दिन हवाखोरी के लिए बगीचे मे गये। वहा खेलते हुए एक वृक्ष पर चढ गये। उन्हें एक घोसले मे मोरनी के दो अडे दिखाई दिये। राजकुमार ने कहा—मित्र, ये कितने अच्छे अण्डे हैं? अपन इन्हें ले लेवें तो अच्छा रहेगा। जब ये फूटेंगे तो इनमे से मोर के बच्चे निकलेंगे। जब वे बड़े हो जावेंगे, तब हम इन्हें नृत्यकला सिखावेंगे। इनसे हमारा दिल-बहलाव होता रहेगा। वे उस घोसले से अडे उठा लाये और एक-एक अडा लेकर अपने-अपने घर चले आये। घर पर आकर प्रधान के लडके ने तो उसे जिस तरीके से रखना चाहिए, उसी तरीके से रखकर उसे बढाने लगा। राजकुमार ने महल मे जाकर उसे हिला-डुला करके देखा कि इसमे बच्चा है कि नही? जब उसमे से कोई आवाज नहीं सुनाई दी, तब उसे खाली समझ कर एक आले मे रख दिया, इससे उस बच्चे को पोषण नही मिला और वह सूख गया। प्रधान के लडके ने उसका यथा विधि पोषण किया, उसे जब जितनी गर्मी की आवश्यकता थी तब बराबर उसे दी। परिपाक होने पर अडा फूटा और उसमे से मोरनी का बच्चा निकल आया। उसका भी उसने यथाविधि पालन-पोषण किया। जब वह बडा हो गया, तब उसने उसे नृत्य कला सिखाई। धीरे-धीरे कुछ दिनो मे वह नृत्य कला मे प्रवीण हो गया। प्रधान का पुत्र उसे नाचते हुए देखकर बहुत प्रसन्न होता था। नृत्य शास्त्र मे भी कहा है कि मोर के समान दूसरा कोई सुन्दर नृत्य नही है। मोर के नृत्य को देखकर लोग मुग्ध हो जाते हैं।

कुछ दिनो के पश्चात् राजकुमार के राजा बनने का अवसर आया। राज्याभिषेक की खुशी मे प्रधान के पुत्र ने उसके सामने उस मोर का नृत्य दिखाया। उसके नृत्य को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और पूछा कि प्रधान, यह नृत्य कुशल मोर तू कहा से लाया है? तब उसने कहा—महाराज, याद कीजिए—एक बार अपन दोनों बचपन मे बगीचे गये थे और वहा मोरनी के दो अडे लाये थे। यह उसी अडे मे से निकला हुआ मोर है। यह सुनते ही राजा ने कहा—दीवान, मेरे अडे मे से तो मोर नही निकला। पर तेरे मे कैसे निकल आया? दीवान ने पूछा—महाराज, आपने उस अडे को लाकर क्या किया था? वह बोला—मैंने घर लाकर उसे बजाया। जब उसमे से कुछ आवाज नही निकली, तब मैंने उसे आले मे रख दिया। कुछ दिनो मे यह सूख गया। यह सुनकर प्रधान ने कहा—महाराज, आपको आशा और विश्वास नही रहा कि इसमे से मोर निकलेगा। तथा ठीक ढग से उसका पालन-पोषण भी नही किया। इसलिए वह सूख गया। परन्तु मुझे पूरी आशा थी कि इसमे से मोर निकलेगा। अत मैंने विश्वास के साथ उसकी समुचित सभाल की तो एक दिन यह निकल आया। राजा ने कहा कि तेरा कहना सत्य है। मुझे विश्वास भी नही रहा और मैंने उसकी यथाविधि सभाल भी नही की। अत मैं मोर से वचित रहा। अन्यथा तेरे समान मैं भी उसका नृत्य प्रतिदिन देख-देख कर प्रसन्न होता।

भाइयो, सोचो और विचारो कि दोनो की मनोवृत्ति और प्रवृत्ति मे अन्तर पडा तो फल मे भी अन्तर पड गया। एक ने आशा रखी और आशा पूर्वक ही उसका पालन-पोषण किया तो उसे सफलता मिली। और दूसरे ने न आशा रखी और न उसका समुचित पालन-पोषण ही किया तो वह सूख गया और राजा उसके लाभ से वचित रह गया। इसलिए हमारी आशा मजबूत होनी चाहिए कि यह काम अवश्य होगा। फिर उस आशा के साथ काम करते हुए चाहे जितनी भी बाधाए क्यो न आवें, उन्हे दूर करते हुए

अपने कर्तव्य का पालन करते रहो तो सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी। दृढ प्रतिज्ञा वाले पुरुष जिस काम को पकड लेते हैं, उससे पीछे नही हटते। नीतिकार ने कहा भी है—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

भाई, नीति-निपुण धीर-वीर पुरुष अपने न्याय-सगत मार्ग से कभी भी विचलित नही होते हैं। भले ही उस पर चलते हुए लोग उनकी निन्दा करें, या स्तुति करें! लक्ष्मी आवे, या जावे! मरण चाहे आज ही हो जाय, अथवा युग-युग तक जीवन बना रहे। परन्तु वे अपने मार्ग पर दृढता से कदम बढाते हुए आगे बढते चले जाते हैं। और एक दिन अपने अभीष्ट को प्राप्त करके ही विश्राम लेते हैं।

आज के व्याख्यान का सार यह है कि हमे दृढ आशावादी होना चाहिए और आशा के अनुरूप अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर आगे बढते रहना चाहिए। देखो आशा पर चलने वाला मनुष्य पर्वत को भी लाघ जाता है और दुर्गम वनो को भी पार कर लेता है। यदि आशा छोड दी, तो सारा मामला ही बिगड जाता है। इसलिए आप लोगो को आशावादी बनना चाहिए।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला २
जोधपुर

●●

६ | जैसी मति वैसी गति

सज्जनो !, जब तक प्राणी इस चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण कर रहा है, तब तक उसके विचारो में भी लगातार परिवर्तन होता ही रहता है। जब जीव के कषायो का मन्द उदय होता है और शुभ की पुण्य प्रकृतियो का उदय तीव्र होता है, तब जीव की परिणति शुभ रूप होती है और विचार या भाव अच्छे हो जाते हैं। जब कषायों का तीव्र उदय होता है, और पाप प्रकृतिया प्रबल रूप से प्रकट होती हैं, तब जीव की परिणति अशुभ रूप होती है और उसके विचार या भाव बुरे हो जाते हैं। जैसे आप भोजन करते हैं। जब कफ-कारक भोजन किया, तो शरीर में कष्ट की वृद्धि होती है। यदि पित्त-वर्धक भोजन किया, तो शरीर मे पित्त की—गर्मी की वृद्धि होती है। और यदि वायु-जनक भोजन किया, तो शरीर मे वात की वृद्धि होती है। अर्थात् जैसा भोजन करते हैं वैसी ही प्रकृति बन जाती है। इसी प्रकार नरक मे नारकी जीवो के, स्वर्ग मे देवो के, मनुष्य लोक मे मनुष्यो के और तिर्यग्गति मे तिर्यंचो के जैसी-जैसी प्रकृतियो का उदय होता है, तदनुसार उनकी वैसी ही भावना होती है और वैसे ही विचार होते हैं।

संस्कार नहीं बदलते

अभी आपके सामने देवो की प्रकृति बताई कि किसी की राजा के

समान, किसी की सामानिक के समान, किसी की चारण और भाटके समान किसी की गन्धर्वों के समान इस प्रकार देवलोक मे भी देवो की प्रकृति अनेक प्रकार की होती है। अब प्रश्न होता है कि देवो मे यह प्रकृति कहा से आई ? उत्तर है कि जहा से—जिस पूर्व पर्याय से वे देवगति मे उत्पन्न हुए हैं और देव बने है, उस मनुष्य पर्याय मे उनके जिस प्रकार के विचार थे, जैसे सस्कार थे, वे सस्कार देव पर्याय मे भी चले आये और वहा पर उसी प्रकार के सस्कारो वाला देव बना। भाई, जिस गति से जो जीव जहाँ पर भी जाता है जन्म लेता है, वहा पर भी वे सस्कार और विचार उसके मस्तिष्क मे बने रहते हैं। यहा पर भी आप लोग देखते हैं कि अच्छे कुलीन घराने का कोई लडका किसी के यहा गोद गया। परन्तु जहा गोद गया, वह घराना उसके पैतृक घराने के जोड का (बराबरी का) नही है, तो क्या वह अपने खानदान की प्रकृति को भूल जायगा ? नही भूलेगा। वह तो वहा जाकर के भी अपने स्वभाव का परिचय देगा ही। इसी प्रकार यदि कोई नीच घराने का लडका उच्च घराने मे गोद चला जाता है, तो वह वहा पर भी अपने घराने की प्रकृति का परिचय देता ही है। आप लोग भी कहा करते हैं कि यदि कोई कीडी सोने के ऊपर चले तो वह सोने की नही बन जाती है। यदि नीच कुल का, या नीच घराने का कोई लडका किसी पुण्य-योग से किसी भले घराने मे गोद पहुँच भी गया, परन्तु उसके लक्षण तो वे ही रहेगे। पूर्व के सस्कार सहसा दूर नहीं होते हैं, किन्तु धीरे-धीरे उनमे परिवर्तन होता है और पुरानी प्रकृति बदल जाती है।

कोई जीव देव बन गया, अच्छी ऋद्धि, समृद्धि, शक्ति और ज्ञान की भी प्राप्ति हो गई, परन्तु फिर भी उसकी परिणति नही बदली, तो समझना चाहिए कि वह देवलोक मे उच्च प्रकृति लेकर नही आया है, उसके पूर्व भव के सस्कार नीच हैं। ऐसे नीच सस्कार वाला देव स्वर्ग मे भी चोरी करता है, और दूसरे देवो की देविया उठाकर ले जाता है। वह पकडा जाता है और इन्द्र के सामने लाया जाता है। वे उसकी वज्र से ताडना करते हैं और वह छह-छह मास तक हाय-हाय करता रहता है। यद्यपि आयु के पूर्ण हुए

बिना उनका मरण नही होता है, तथापि दु ख तो भोगना ही पडता है और अपमान भी सहना पडता है। जिस व्यक्ति की यहा पर उत्तम प्रकृति होती है, उसे देवलोक मे उच्च स्थान मिलता है। इसी प्रकार मध्यम प्रकृति वाले को अधम स्थान प्राप्त होता है। देवो मे यह उच्चता नीचता होते हुए भी वर्ण-गत कोई भेद नही है। परन्तु यहा मनुष्यो मे तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र —आदि वर्ण-गत भेद है। कहते हैं—यह शिर तो ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, पेट वैश्य और पैर शूद्र हैं। यद्यपि ये शिर, भुजा आदि सभी शरीर के अग हैं, तथापि उनकी प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है। सब कोई उनकी प्रकृति को देखकर पहिचान लेते हैं कि इसकी प्रकृति क्षत्रिय के समान है, यह ब्राह्मण के समान है, यह वैश्य के समान और यह शूद्र के समान है। मनुष्य के मुख से वचन के निकलते ही चतुर व्यक्ति तुरन्त पहिचान लेता है कि वह सोलह आना मनुष्य है, यह बारह आना है, यह आठ आना और यह चार आना है। मनुष्य की मनुष्यता वचन से तुरन्त जान ली जाती है। चेहरे का फोटो तो सभी खीच सकते हैं, परन्तु बोली का फोटो तो चतुर और कुशल व्यक्ति ही खीच सकते हैं। हर कोई नही खीच सकता। कुशल व्यक्ति वचन सुनते ही झट पहिचान लेता है कि इसके वचन कितने महत्त्व के हैं और इसके वचन इतने खराब हैं।

भाइयो, भगवान तो दीनबन्धु हैं, दीन दयालु हैं और सारे जगत् के रक्षक है। उनके वचन कैसे निकलते हैं कि—**'आयुष्यमान् भव, आरोग्यमान् भव'**। वीतराग होने से यद्यपि भगवान् किसी को सीधा आशीर्वाद नही देते हैं, तथापि उनके वचन आशीर्वादात्मक ही हैं। भगवान् स्वय भी तथा उनके पास रहने वाले शिष्य भी हर व्यक्ति को भगवन्, हे भगवन्, कहते हैं। उनकी वाणी से हर एक के लिए 'भगवन्' शब्द ही निकलता है, तो वह सचमुच मे भगवान् ही बन जाता है। **'अप्पा सो परमप्पा'** अर्थात् जो आत्मा है, वही परमात्मा है, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति आत्म-विकास करते हुए कालान्तर मे परमात्मा बनने की योग्यता रखता है। अपने यहा जो बडी साधु-वन्दना है, उसकी तेरह ढालें बनी हुई हैं, उसमे भी 'साधु साध्वी सो ही भगवान्'

कहा है। भाई, साधु-साध्वी को भगवान् की उपमा भगवान् ही देकर के गये हैं। घर-वार का त्याग करने से ही साधु-साध्वी भगवान् वने और पाच समिति, तीन गुप्ति और पाच आचार के पालन करने से ही वे भगवान् कहलाते हैं। जो साधु-साध्वी वरावर दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप की आराधना कर रहे हैं और आत्म-साधन मे सलग्न हैं तो वे भी भगवान् हैं। उनमे भी कोई कमी नही है। भेद केवल इतना ही है कि वे कर्मों से अलग हो गये हैं और ये कर्मों से युक्त हैं। इसीलिए कहा जाता है कि—

अन्तर यही ऊपरी जान,
वे विराग यहां राग-वितान।

अर्थात् अरहन्त और सिद्ध भगवन्त तो राग-द्वेप से रहित होकर के वीत-रागी वन चुके हैं और आचार्य, उपाध्याय एव साधुजनो मे राग का मिलान है, सद्भाव है, अभी उनके कारण भूत कपायो का क्षय नही हुआ है। परन्तु वे उनका क्षय करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। इसी कारण उनको परमेष्ठी कहा गया है और अरहन्त-सिद्ध के साथ उनकी पच परमेष्ठी मे गणना की गई है, तथा उनको प्रतिदिन नमस्कार करने का विधान किया गया है और उसे सर्व पापो का नाश करने वाला प्रथम या मुख्य, मगल माना गया है। भाई, जो निरन्तर अपने साध्य की साधना मे सलग्न हैं, उनके कर्मों को दूर होने मे देर भी नही लगती है।

एक व्यापारी ने दुकान जमाई और खूव व्यापार कर रहा है अव उस पर लोग कर्ज भी मागते हैं, तो दूसरे लोग कह देते हैं कि आपकी रकम तिरती है, डूवने वाली नही है। व्यापार जोरदार चलता देखकर लोग अपने आप ही कह देते हैं। इसी प्रकार साधु-साध्वी की करनी, उनके विचार और आचार-व्यवहार को देखकर लोग कह देते हैं कि ये भगवान् की जोड मे जाने के योग्य हैं, अव ये पीछे रहने वाले नही हैं। यह सम्भव है कि किसी के कर्म गति की विचित्रता से वह वैसा न वन पावे। परन्तु जो वर्तमान मे उसके भीतर ज्ञान और ध्यान के भाव आये हैं, तो वह अपने स्थान से पडते-पड़ते भी सभल जाता है। जैसे एक आदमी को तैरना आता है और एक को

नही आता है। यदि दोनो अकस्मात् पानी मे पडजाते हैं, उनमे से तैरना जानने वाला तो तैर कर पानी से वाहिर आ जायगा। परन्तु जिसे तैरना नही आता है तो उसे डूवना ही पडेगा। इसी प्रकार जो लोग ससार मे पापो मे पच रहे हैं और जिनमे विवेक वुद्धि नही है, तो उनके लिए क्या निर्णय कर सकते हैं कि ये मरकर कहा जायेंगे ?

नरक के चार कारण

भगवान् अपने उपदेशो मे कह कर गये हैं और हम आगमो मे देखते हैं कि जीव चार प्रकार से देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक गति मे जाते हैं। भगवान् तो हर वात का निर्णय करके कह गये हैं। परन्तु हम निर्णय करने के वाद उन वातो पर ध्यान देवे तो हमको भी निर्णय हो जायगा कि—

महारंभयाए महापरिग्गहयाए, पचेंदिय वहेण, कुणिमाहारेण।

—स्थानाग ४।४

आरम्भ करतो रे जीव शके नहीं, धन मेलन तृष्णा अपारोरे।
घात करे पचेंद्री जीवनो, वलि मद्य मासनो आहारोरे ॥ १ ॥
ऐ चउबोले रे जीव जावे नरक मे।

अर्थात् चार कारणो से जीव नरकगति मे जाता है। उनमे प्रथम कारण है—महान् आरम्भ। जिसको आरम्भ-समारम्भ के सिवाय कोई अन्य कार्य अच्छा नही लगता, जो इधर एक मकान गिराता है और उधर दूसरा वनाता है, यहा वाग लगवाता है और वहा कुआ खुदवाता है। जिसका विचार रात-दिन छह काय के जीवो का आरम्भ करने मे ही रहता है। जिसे यह ध्यान ही नही कि मेरे आरम्भ के लिए यह एक मकान ही वहुत है। जिसे एक से सन्तोष नही, इसीलिए दूसरे और तीसरे मकान को वनवाने मे लग रहा है और आरम्भ-समारम्भ मे निमग्न है, ऐसा जीव नरक गति का आयुष्य उपार्जन करता है। इसी प्रकार धन की प्राप्ति हो जाने पर चलती दुकान या कारोवार के अतिरिक्त नेता नये-नये कारखाने खोलने मे ही लगा रहता है और उनमे मरने वाले असख्य जीवो की हिंसा की ओर जिसका लक्ष्य ही नही है, महारम्भ के कार्यों से मुडने की जिसकी

भावना ही नही है, वह महारम्भी कहलाता है। तथा जो महापरिग्रही है जिसे लाखो की पूंजी हो जाने पर करोड़ो को जोड़ने की ओर करोड़ो को जोड लेने पर अरबो को जोडने की तृष्णा बनी रहती है और आग मे ईंधन के डालने के समान जिसकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, इसी प्रकार जिसकी तृष्णा का कोई आर-पार ही नही है जो सदा धन-धान्यादि के परिग्रह-संचय करने मे ही मस्त हो रहा है, वह महापरिग्रही कहलाता है। इस प्रकार महा आरम्भ और महापरिग्रह मे आसक्त व्यक्ति धर्म को भूल जाता है। उसे अपने स्वार्थ-साधन मे बाधक प्रतीत होने वाले पचेन्द्रिय प्राणियो की हिंसा करते भी देर नही लगती है और जिस किसी को अपना बाधक या विरोधी देखकर उसकी हत्या करने से भी नही चूकता है। फिर उसके हृदय से दया का भाव विल्कुल निकल जाता है। फिर पचेन्द्रिय जीवो को मारते हुए भी उसको रोमाच नही होता। इस धन के नशे मे मस्त होने पर उसे मास खाने और शराब पीने मे भी परहेज नहीं रहता है और सब कुछ खाने-पीने लगता है फिर उसे इन कामो को करने के लिए किसी ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाने की भी आवश्यकता नही रहती है। इस प्रकार महारम्भी, महापरिग्रही, पचेन्द्रिय जीवो का घातक और मद्य-मास का भक्षक पुरुष नरकायु का उपार्जन करके मरकर सीधा नरक मे जाता है।

तिर्यंच गति के चार कारण

दूसरी बात तिर्यंच गति की है। उसके विषय मे कहा गया है कि—

मायिल्लयाए, नियड्डील्लयाए कूड तोले-कूट माणे कूडलेहे ण।

—जो मायावी है, कपट करने वाला है और कपटाई मे भी कपटाई करता है, अर्थात् एक छल-कपट से बचने के लिए दूसरा कपट करता है और उससे बचने के लिए तीसरा करता है कि मेरा कपट प्रकट न हो जाय, भेद न खुल जाय, कोई असली बात को न जान जाय, यह दूसरे पर पड जाय, इसलिए वह अपना पाप दूसरे पर थोपने का प्रयत्न करता रहता है और स्वय बच जाने के लिए नाना प्रकार की खटपट करता है। अपना दोष औरो

के ऊपर आरोपण करता है और दूसरो से कहता है कि मैंने इसे बहुत समझाया, परन्तु यह स्वीकार ही नही करता है। ऐसा कपट करने वाला, कूट नाप-तोल करने वाला, झूठे लेख लिखने वाला, जाली दस्तावेज बनाने वाला, झूठी गवाही देने वाला और छल-कपट से धन कमाने वाला पुरुष तिर्यंचगति मे उत्पन्न होता है।

मनुष्य व देवगति के कारण

तीसरी मनुष्यगति के कारण बताते हुए कहा है कि—

पगइ भद्दयाए विणयाए साणुक्कोसयाए अमच्छरियाए।

जिनकी प्रकृति बडी सीधी है, स्वभाव अति सरल है, हृदय कोमल है, विनय, नम्रता और दयालुता जिनके रोम-रोम मे भरी हुई है, दूसरो की बढ़ोतरी और उन्नति को देखकर जिनके हृदय मे ईर्ष्याभाव उत्पन्न नही होता है। बल्कि जो निरन्तर गिरने वालो के उत्थान की, उन्हे सहायता देने की भावना रखते हैं और अहर्निश यह विचार करते रहते हैं कि—

सर्वेऽपि सुखिन. सन्तु सन्तु सर्वे निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभाग्भवेत्॥

ससार के सभी प्राणी सुखी हो, सभी नीरोग रहे, सभी कल्याण को देखें। किन्तु कोई भी दु ख को न प्राप्त हो। इस प्रकार से जिनकी परिणति अच्छी रहती है, किन्तु चारित्र मोह कर्म के उदय से जो व्रत, शील, सयमादि का पालन नही कर पाते हैं, ऐसे जीव मरकर मनुष्यगति मे उत्पन्न होते हैं।

चौथी देवगति को प्राप्त करने के कारण बताते हुए कहा है कि—

सरागसंजमेणं सजमासजमेण वालतवोकम्मेण अकामणिज्जराए।

इन चार कारणो से जीव देवगति को पाता है। इनमे पहिला कारण है सराग सयम—सयम पालता है, परन्तु रागभाव नही छूटा है, श्रावक के व्रत पालता है, तपस्या भी करता है, परन्तु वाल तप करता है, अज्ञानी या मिथ्यादृष्टि के तप को वाल तप कहते हैं। ज्ञानी वनकर ज्ञान दृष्टि से सम्यक्त्वी वन करके तपस्या नही कर रहा है और अकाम निर्जरा करता

भावना ही नही है, वह महारम्भी कहलाता है। तथा जो महापरिग्रही है जिसे लाखो की पूजी हो जाने पर करोडो को जोडने की और करोडो को जोड लेने पर अरबो को जोडने की तृष्णा बनी रहती है और आग मे ईधन के डालने के समान जिसकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, उसी प्रकार जिसकी तृष्णा का कोई आर-पार ही नही है जो सदा धन-धान्यादि के परिग्रह-सचय करने मे ही मस्त हो रहा है, वह महापरिग्रही कहलाता है। इस प्रकार महा आरम्भ और महापरिग्रह मे आसक्त व्यक्ति धर्म को भूल जाता है। उसे अपने स्वार्थ-साधन मे बाधक प्रतीत होने वाले पचेन्द्रिय प्राणियो की हिंसा करते भी देर नही लगती है और जिस किसी को अपना बाधक या विरोधी देखकर उसकी हत्या करने से भी नही चूकता है। फिर उसके हृदय से दया का भाव बिल्कुल निकल जाता है। फिर पचेन्द्रिय जीवो को मारते हुए भी उसको रोमाच नही होता। इस धन के नशे मे मस्त होने पर उसे मास खाने और शराब पीने से भी परहेज नही रहता है और सब कुछ खाने-पीने लगता है फिर उसे इन कामो को करने के लिए किसी ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाने की भी आवश्यकता नही रहती है। इस प्रकार महारम्भी, महापरिग्रही, पचेन्द्रिय जीवो का घातक और मद्य-मास का भक्षक पुरुष नरकायु का उपार्जन करके मरकर सीधा नरक मे जाता है।

तिर्यंच गति के चार कारण

दूसरी बात तिर्यंच गति की है। उसके विषय मे कहा गया है कि—

मायिल्लयाए, नियड्डील्लयाए कूड तोले-कूड माणे कूडलेहे ण।

—जो मायावी है, कपट करने वाला है और कपटाई मे भी कपटाई करता है, अर्थात् एक छल-कपट से बचने के लिए दूसरा कपट करता है और उससे बचने के लिए तीसरा करता है कि मेरा कपट प्रकट न हो जाय, भेद न खुल जाय, कोई असली बात को न जान जाय, यह दूसरे पर पड जाय, इसलिए वह अपना पाप दूसरे पर थोपने का प्रयत्न करता रहता है और स्वय बच जाने के लिए नाना प्रकार की खटपट करता है। अपना दोष औरो

के ऊपर आरोपण करता है और दूसरो से कहता है कि मैंने इसे बहुत समझाया, परन्तु यह स्वीकार ही नही करता है। ऐसा कपट करने वाला, कूट नाप-तोल करने वाला, झूठे लेख लिखने वाला, जाली दस्तावेज बनाने वाला, झूठी गवाही देने वाला और छल-कपट से धन कमाने वाला पुरुष तिर्यंचगति मे उत्पन्न होता है।

मनुष्य व देवगति के कारण

तीसरी मनुष्यगति के कारण बताते हुए कहा है कि—

पगइ भद्दयाए विणयाए साणुक्कोसयाए अमच्छरियाए।

जिनकी प्रकृति बडी सीधी है, स्वभाव-मति सरल है, हृदय कोमल है, विनय, नम्रता और दयालुता जिनके रोम-रोम मे भरी हुई है, दूसरो की बढ़ोतरी और उन्नति को देखकर जिनके हृदय मे ईर्ष्याभाव उत्पन्न नही होता है। बल्कि जो निरन्तर गिरने वालो के उत्थान की, उन्हे सहायता देने की भावना रखते हैं और अहर्निश यह विचार करते रहते हैं कि—

सर्वेऽपि सुखिन. सन्तु सन्तु सर्वे निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु खमाग्भवेत्॥

ससार के सभी प्राणी सुखी हो, सभी नीरोग रहे, सभी कल्याण को देखें। किन्तु कोई भी दु ख को न प्राप्त हो। इस प्रकार से जिनकी परिणति अच्छी रहती है, किन्तु चारित्र मोह कर्म के उदय से जो व्रत, शील, सयमादि का पालन नही कर पाते हैं, ऐसे जीव मरकर मनुष्यगति मे उत्पन्न होते हैं।

चौथी देवगति को प्राप्त करने के कारण बताते हुए कहा है कि—

सरागसजमेणं सजमासजमेण बालतवोकम्मेण अकामणिज्जराए।

इन चार कारणो से जीव देवगति को पाता है। इनमे पहिला कारण है सराग सयम—सयम पालता है, परन्तु रागभाव नही छूटा है, श्रावक के व्रत पालता है, तपस्या भी करता है, परन्तु बाल तप करता है, अज्ञानी या मिथ्यादृष्टि के तप को बाल तप कहते हैं। ज्ञानी बनकर ज्ञान दृष्टि से सम्यक्त्वी बन करके तपस्या नही कर रहा है और अकाम निर्जरा करता

है। विना इच्छा के परवश या पराधीन होकर जो कर्मो की निर्जरा की जाती है, उसे अकामनिर्जरा कहते हैं। सासारिक सुखो को भोगने की इच्छा होते हुए भी कर्मोदय से उनकी प्राप्ति के अभाव मे उनके नही भोग पाने से जो निर्जरा होती है, जेलखाने मे जाने पर विवश होकर जो रुखा-सूखा खाना पडता है और ब्रह्मचर्य का पालन, भूमि-शयन आदि करना पडता है, इत्यादि प्रकार के कार्यों से होने वाली कर्म निर्जरा को अकाम निर्जरा ही जानना चाहिये। इन चार कारणो से जीव मरकर देवगति मे उत्पन्न होता है। इनमे से प्रारम्भ के दो कारण सम्यग्दृष्टि के होते हैं, अत वे कल्पवासी देवो मे उत्पन्न होते हैं। किन्तु अन्तिम दो कारण मिथ्यादृष्टि जीवो के ही होते हैं अत वे जीव मरकर भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवो मे उत्पन्न होते हैं।

जैसी मति वैसी गति

जो जीव निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप को धारण करते हैं, यदि वे उत्तम सहनन वाले और चरमशरीरी हैं तो उसी भव से मोक्ष को प्राप्त करते हैं। अन्यथा देव और मनुष्य के सात भव पा करके आठवें भव मे तो नियम से मोक्ष प्राप्त कर ही लेते हैं।

गति-सम्बन्धी आयु के सम्बन्ध से कुछ विशेष वात जानने के योग्य है। वह यह है कि ऊपर वतलाये गये चारो गति के वन्ध-कारणो मे से जिस जीव के जिस समय जैसे परिणाम होते है, उसके अनुसार प्रति समय किसी न किसी गति नामकर्म का वन्ध होता ही रहता है। कल्पना कीजिए कि किसी जीव के परिणाम इस समय महारम्भ और महापरिग्रह रूप हो रहे हैं, तो वह इस समय नरकगति का वन्ध कर रहा है। अव एक घडी के पश्चात् यदि उसके मायाचाररूप प्रवृत्ति की अधिकता है, तो उसके तिर्यंच गति का वन्ध होगा। यदि उसके पश्चात् स्वभाव मे शान्ति है, कोमलता और दयालुता रूप प्रवृत्ति हो रही है तो उसके उस समय मनुष्य गति का वन्ध होगा। उसके पश्चात् यदि उसकी प्रवृत्ति व्रत-शील-सयमादि के पालनरूप हो रही है तो उस समय देवगति का वन्ध होगा। इस प्रकार से एक जीव के भावो

के परिवर्तन के अनुसार प्रतिदिन चारो ही गतियो का वन्ध सभव है। किन्तु आयुष्य कर्म का बन्ध प्रतिसमय प्रतिदिन नही होता है। उसका बन्ध त्रिभाग मे होता है। इस त्रिभाग का अर्थ यह है कि जिस जीव की जितनी वर्तमान भव की आयु है, उसके दो भाग बीत जाने पर और तीसरा भाग शेष रहने पर एक अन्तर्मुहूर्तकाल के भीतर जीव के जिस जाति के ऊँच या नीच भाव होंगे, तदनुसार ही ऊच या नीच गति सम्बन्धी आयुष्य का बन्ध हो जायगा। यदि किसी कारणवश इस प्रथम त्रिभाग के समय आयुष्य वन्ध नही हो सका तो शेष रही आयुष्य के भी दो भाग बीतने और एक भाग शेष रहने पर दूसरी वार आयुष्य वन्ध का एक अन्तमुहूर्त के लिए अवसर आयगा। यदि कदाचित् इस दूसरे त्रिभाग मे भी आयुकर्म का वन्ध नही हो सका, तो जितनी आयु शेष बची है उस के भी दो भाग बीतने पर एक अन्तर्मुहूर्त के लिए आयुवन्ध का अवसर आयगा। इस प्रकार जीव के जीवन भर मे आठ अवसर आते हैं। यदि ये सभी खाली चले जावें और किसी भी आयु का वन्धन हो सके तो मरण होने के कुछ क्षण पूर्व तो आयुकर्म का वन्ध नियम से ही हो जाता है। इस आयुवन्ध के त्रिभाग-नियम को समझने के लिए आप कल्पना कीजिए कि अमुक व्यक्ति की वर्तमान भव सम्बन्धी आयु ८१ वर्ष की है। तो इसके दो भाग वीतने और तीसरा भाग प्रारम्भ होने पर अर्थात् $(३+\frac{८१}{२७}\times २=५४)$ चौपन वर्ष वीतने पर तथा पचपनवा वर्ष प्रारम्भ होने पर एक अन्तमुहूंत के लिए आयुवन्ध का प्रथम अवसर आयगा। पुन शेष रहे २७ के दो भाग अर्थात् अठारह वर्ष वीतने पर (५४+१८=७२) वहत्तर वर्ष के पूरे होने और तेहत्तर वर्ष के प्रारम्भ होने पर दूसरा अवसर आयगा। इसी क्रम से तीसरा अवसर अठहत्तर वर्ष वीतने पर, चौथा अवसर अस्सी वर्ष वीतने पर, पाचवा अवसर अस्सी वर्ष आठ मास वीतने पर छठा अवसर अस्सी वर्ष दस मास और वीस दिन बीतने पर, सातवा अवसर अस्सी वर्ष ग्यारह मास १७ दिन और १६ घटे के वीतने पर तथा आठवा अवसर अस्सी वर्ष, ग्यारह मास, पच्चीस दिन, और तेरह घटे वीतने पर अर्थात् लगभग

साढ़े चार दिन की आयु के शेष रहने पर आयगा। यदि यह अवसर भी खाली चला जाय तो मरण से कुछ समय पूर्व तो आयु का वन्ध नियम से होगा ही।

इस मारे विवेचन का साराश यह है कि आयुवन्ध होने के पूर्व मनुष्य चारो ही गति का वन्ध करता रहता है। किन्तु आयुवन्ध के समय उसके परिणाम जैसे होंगे वैसा ही उसके आयु कर्म का वन्ध हो जायगा और इसके पूर्व वन्धी गतियो के कर्म का परिवर्तन उसी आयुवन्ध के समान हो जायगा। आयुवन्ध के समय यदि अच्छे विचार हो गये तो अच्छी आयु का वन्ध हो जायगा और बुरे विचार हो गये तो बुरी आयु का वन्ध हो जायगा। जिसके भाव अधिकतर जिस गति के वन्ध रूप रहते हैं, प्राय उसके उसी गति सम्वन्धी आयु का वन्ध होता है। इसलिए मनुष्य को सदा ही उत्तम विचार और उत्तम आचरण रखना चाहिए। जिसका आचार-विचार जाग्रत दशा मे अच्छा रहता है, उसके सोते मे भी अच्छे विचार बने रहते हैं और यदि स्वप्न भी देखेगा तो अच्छे ही स्वप्न देखेगा। इसी प्रकार जिसका आचार-विचार दिन भर बुरा रहता है, उसके भाव सोते मे भी बुरे रहते हैं और उसको स्वप्न भी बुरे ही आने हैं। इस नियम से जिसके भाव सदा अच्छे होंगे, वह त्रिभाग मे अच्छी ही आयु को बांधेगा। और जिसके सदा बुरे भाव रहेंगे, वह बुरी ही आयु को बांधेगा।

भावो पर दारमदार

यदि कोई जीव त्रिभाग मे देवायुष्य को बांध करके देव भी बन गया, तो वहा पर भी अलग अलग पदवियां हैं और उनकी परिणाम-धारा निरन्तर बदलती रहती है। इसी प्रकार मनुष्यो की भी विचार-धारा बदलती ही रहती है। इस विचार-धारा के परिवर्तन का शास्त्रो मे कितना विचार किया गया है कि एक जीवन के भीतर एक ही पर्याय मे ९०० वार साधुपना आ जावे और चला भी जावे। इसी प्रकार गृहस्थ के भी ९००० वार श्रावक पना आजाय और चला जाय। भावो के परिवर्तन की बडी विचित्रता है। मन की चचल प्रवृत्तियो का और कर्म की उदय मे आने वाली हीनाधिक

रस वाली असख्य जाति की प्रकृतियो का हम क्या माप कर सकते हैं। काल की अपेक्षा एक सामायिक का हम घडी के द्वारा माप-दण्ड कर सकते है। परन्तु भावो की अपेक्षा उसका मापदण्ड करना हम छद्मस्थों के लिए असभव है। सामायिक करते करते उल्टे भाव कब, कैसे और कितने शीघ्र आजाते हैं कि हम ज्ञान-ध्यान का मार्ग भूलकर अन्यत्र भटक जाते है। हम उस समय भटकें नही और अपने लक्ष्य-विन्दु पर स्थिर रहे, इसके लिए भावो को दृढ करना आवश्यक है। भावो को दृढ करने के लिए बताया है कि—

ज्ञानालम्बनदृढग्रही, निरालम्बता भाव।
चिदानन्द नित कीजिए, ये ही मोक्ष उपाय॥

मोक्ष-प्राप्ति का उपाय क्या है ? हाथी बहुत ही बलवान है, पर उसे थम्भे से बाध दिया। घोडा बहुत तेज है, पर हण्टर या चाबुक पडते ही काबू मे आ जाता है। बैल बहुत चचल है, परन्तु नाथ से वश मे हो जाता है। इसी प्रकार मन को वश मे करने के लिए ज्ञान का आलम्बन ले लो, वह वश मे हो जायगा। तथा निरालम्बनता की भावना करो कि मैं किसी के अधीन नहीं हू, स्वतत्र हू। पर पदार्थ मेरा कुछ नही बिगाड सकते हैं। मैं सबसे इसी प्रकार भिन्न हूं जैसे जल मे उत्पन्न होकर और उसी मे रह कर भी कमल उससे भिन्न ही रहता है। इस प्रकार के निरालम्बी भावो के द्वारा आत्मा की चचल मनोवृत्ति भी शान्त एवं स्थिर हो जाती है। इसलिए हे आत्मन्, तू ऐसे उपाय कर, जिससे कि तेरी प्रकृतिया अपने आप वश मे हो जावेंगी।

विकारी स्वभाव बदलो

भाइयो, विचार तो करो कि आप अपनी प्रकृतियों को तो काबू मे करना ही नही चाहते हैं और कहते हैं कि प्रकृति ठीक हो जाय। पर ऐसा कहने मात्र से वह ठीक नही होगी। अपनी प्रकृति में जो टेडापन है, कुटिलता है, उसका मोडना किसके हाथ मे है ? अपने स्वय के हाथ मे है। दूसरे व्यक्ति से तो केवल प्रेरणा मिलती है। जो क्रोध करता है, वह यदि प्रकृति को मोड दे तो दूसरे के क्रोध का निमित्त मिलने पर भी उसे क्रोध नही आयगा। यदि दूसरे के क्रोध का निमित्त मिला और स्वय ने मोड नही खाई, तो मन काबू

मे नही होगा । स्वय तो चलता नही, मदाचरण करता नही, और कहता है कि मैं दूसरे को उपदेश दे रहा हू, शिक्षा दे रहा हू तो इस प्रकार से प्रकृति नही वदल सकती है । दूसरे के कुछ भी कहने पर हम यदि यह सोचें कि यह व्यक्ति कैसा भी हो, परन्तु हमारे लिए तो हितकारी वात ही कह रहा है, हम यदि उसे मानेंगे और उस पर चलेंगे तो हमारा जीवन जगमगा उठेगा । इस लिए हमे उसकी शिक्षा मानने मे 'ननु-न च' नही करना चाहिए और अपनी प्रकृति को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए ।

प्राय लोग कहा करने हैं कि '**स्वभावो नहि वार्यते** अर्थात् जिस व्यक्ति का जैसा स्वभाव पड जाता है, वह वदला नही जा सकता है । एक लोकोक्ति भी प्रचलित है कि—

जाको जोन स्वभाव, जाय नहि वदलो तीसो ।
नीम न मीठा होय खाओ चाहे गुड़ घीसो ।

यद्यपि जन्म-जात स्वभाव वदल नही सकता है । नीम का जन्म जात स्वभाव कटुक है और ईख का जन्म जात स्वभाव मिष्ट है, अत. ऐसा जन्म-जात स्वभाव तो वदला नही जा सकता है । परन्तु मनुष्य का जन्मजात स्वभाव कटुक नही है, मधुर है । एव विचारशीलता उसकी जन्म जात प्रकृति है । उसमे पर ससर्ग से यदि विकृति आ जाती है, वह वदली जा सकती है । जैसे जल का जन्म-जात स्वभाव शीतलता है । अव यदि उसमे अग्नि के सयोग से उष्णता आ जाती है, तो उस सयोग के दूर करते ही वह वापिस अपने शीतल-स्वभाव मे आ जाता है । इसी प्रकार यदि विकार पैदा करने वाले पर-सयोगो को दूर किया जाय तो मनुष्य की प्रकृति सहज मे ही वदल सकती है । यदि वह वदलना ही न चाहे और वदलने का प्रयत्न ही न करे तो कैसे वदल सकती है ? नही वदल सकती है ।

पुरुषार्थ प्रकृति को वदल देता है

भाइयो, देखो—किसी रेतीली भूमि पर पानी नही दिखाई देता है । वहा पर किसी मनुष्य ने दृढ सकल्प कर लिया कि मैं यहा पर पानी निकाल करके ही रहूगा, तो अन्त मे उस भूमि को खोदते-खोदते पानी निकाल ही

लेता हैं। एक मनुष्य पत्थर को पत्थर मानकर रह जाय तो वह उससे कुछ प्राप्त नही कर सकता है। परन्तु दूसरा मनुष्य यदि यह सोचले कि मैं तो इस पत्थर से ही द्रव्योपार्जन करूगा और उसे जगत्पूज्य वनाऊंगा तो वह हथौडा और टाकी हाथ मे लेकर उस पत्थर को तराश कर और उसे घड कर देवमूर्त्ति वना देता है और उससे ऐसा सुन्दर भाव प्रदर्शित कर देता है कि लोग देखते ही रह जाते हैं और उसे हजारो रुपये देकर खरीद लेते हैं, तो भाई यह उसकी सतत साधना का ही सुफल है। आज एक-एक प्राचीन पाषाण मूर्त्ति का मूल्य हजारो और लाखो रुपया मिल रहा है, या नही ? यदि मनुष्य विचार ले कि मैं इस वस्तु को ऐसी सुन्दर वनाऊगा कि मुझे इसका इतना मूल्य मिले तो उसे वह मिलता है, या नही ? मिलता ही है। आप लोग उनके व्यापारी हैं। हजारो मन ऊन वाजार मे आती है और आप उसे खरीदते हैं दो चार रुपये या दस रुपये सेर के भाव पर। परन्तु उसे तो जव आप साफ करके और अनेक जाति के रासायनिक द्रव्यो से प्रयत्न करके अच्छी मुलायम बना लेते हैं, तव वह पाच रुपये सेर की ऊन पाच रुपये तोले विकती है, या नही ? इसे इतनी मूल्य वाली किसने वनाया ? मनुष्य ने या किसी देवता ने ? लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति कभी ठीक रास्ते पर नही आ सकता, कभी नही सुधर सकता। परन्तु यह वात मैं नही मानता हू। यदि वह सच्चे मानव के पास पहुँच जाय, तो कुछ ही दिनो मे वह ऐसा वन जाता है कि लोग उसे देखकर दग रह जाते हैं और कहने लगते हैं कि क्या वह यही व्यक्ति है ? उसकी चारो ओर प्रशसा होने लगती है कि यह कितना भला आदमी वन गया है। परन्तु उसे वनाने वाला भी व्यक्ति महान् पुरुष होना चाहिये, जो मनुष्य का मूल्य आकने वाला और दोपों को छुडाने वाला हो, वही व्यक्ति ऐसा काम कर सकता है। उसे दृढ निश्चयी होना चाहिये। देखो—आदमी के दिमाग से वढकर चारो गतियो मे किसी भी जीव का दिमाग तेज नही है। देवलोक के इन्द्र का पद वहुत ऊचा है, परन्तु मनुष्य का दिमाग उससे भी वढ करके हैं। यही कारण है कि मनुष्य अपने पुरुपार्थ से इन्द्रो को भी अपने चरणो मे नम्रीभूत कर देता है और वे उसकी सेवा मे हर घडी उपस्थित रहा करते हैं।

दशार्णभद्र ने मन को मोड़ा

राजा दशार्णभद्र ने भगवान की वन्दना करने के लिए तैयारी की। और ऐसी ऊंची तैयारी की कि लोग देखते ही रह गये। राजा अपने परिवार के साथ वन्दना के लिये चला। बाजार की शोभा देखने पर उसके भावों मे परिवर्तन हुआ। सोचने लगा कि जिस प्रकार के ठाठ-बाट मे मैं वन्दन करने के लिए जा रहा हू, इस रूप मे न तो कोई कभी गया और न आगे जायगा। उसे यह विचार नही आया कि भगवान् की वन्दना के लिए जिस ऋद्धि-वैभव के साथ इन्द्र आता है, उसके सामने मेरा वैभव कितना-सा है? उसे अहभाव आ गया।

दशार्णभद्र की ऋद्धि के विषय मे कहा गया है—

अठारा सहस्र गजराज लक्ष चौवीस तुरंगम।
रथ इकवीस हजार भूमि ज्यों चलै विहगम।
वर इकराणू क्रोड जोध पायक मूंछाला।
छत्र सोलह सहस्र सहस्र चौसठ महिपाला।
अवर ऋद्धि प्रवल घणी दशारणभद्र चढ्यो मुदा।
जोम चढियो देखी करी इन्द्रशक्ति फोडी तदा।
चौसठ सहस्रगयंद इन्द्र विक्रवै मनोवल।
वदन पाँच सै वार, मुख मुख आठ दंतूशल।
दंत दंत अठवाव वाव वाव आठेई कमल।
कमल-कमल रे जान पाखडी लक्ष पत्र दल।
बत्तीस विध नाटक रचे पत्र-पत्र ऊपर वली।
चमत्कार देखी इसो दशारण भद्र मद गयो गली।
तव चितै राजान इन्द्र सूं वाद न थावै।
एहनी ऋद्धि असख्य मान मूक्यो नही जावै।
इन्द्र कहै नरनाथ! होड हमसे नही कीजै।
जो करसो तुम वाद सर्व तो हम से छीजे।

लही अवसर दीक्षाग्रही दशार्णभद्र राजा जदा।
मान खरो देखी करी इन्द्र पाय पडियो तदा।

इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से इस वात को जान लिया। उसने सोचा कि यह तो उत्तमकार्य के लिए जा रहा है, फिर ऐसे ओछे विचार क्यो इसके मन मे आ गये हैं ? यह मेरा स्वधर्मी है, इसका पतन न हो जाय, अत मुझे इसकी रक्षा करनी चाहिए। यह विचार करके इन्द्र स्वय तैयारी कर भगवान् की वन्दना के लिए निकला। उसके साथ चौरासी लाख हाथी थे। प्रत्येक हाथी के पाच सौ मुख थे और एक एक मुख पर आठ-आठ दात। एक-एक दात पर आठ-आठ बावडिया। प्रत्येक वावडी मे आठ-आठ कमल और एक-एक कमल मे वत्तीस पत्र थे। प्रत्येक पत्र पर आठ-आठ नाटक हो रहे थे। इस प्रकार की अनुपम शोभा का धारक एक हाथी आकाश से उतरा, फिर दूसरा, और फिर तीसरा। जैसे मेघ-घटा आती है और एकदम वादल छा जाते है, उसी प्रकार गज-घटा से सारा आकाश आच्छादित हो गया। पहिले तो भूलोकवासियो को मेघ-घटा का भ्रम हुआ। पर ज्यो ज्यो हाथी नीचे उतरते दिखे, त्यो ही उनका भ्रम दूर हो गया और उन्होने जान लिया कि यह इन्द्र की सवारी आ रही है। लोग इन्द्र के इस वैभव को देख कर कहने लगे कि कहा तो इन्द्र की यह अपार ऋद्धि-सिद्धि और कहा राजा का यह क्षुद्र वैभव ? लोगो का यह कोलाहल सुनकर राजा ने आकाश की ओर देखा कि ऊपर से इन्द्र की सवारी आ रही है और वह भी भगवान् के समवसरण की ओर ही जा रही है। राजा इन्द्र की इस अपार और अद्भुत ऋद्धिसमृद्धि को देखकर आश्चर्य से हतप्रत हो गया और उसे जो यह अहभाव आया था कि मेरे समान वैभव के साथ भगवान् की वन्दना के लिए न कोई कभी आया होगा और न आयगा, उसका वह अहभाव काफूर हो गया। उसका अहकार का रोग मिट गया। जैसे मनुष्य के रोग हो जाने और नीरोग होने पर शारीरिक शक्ति वढते देर नही लगती है, वैसे ही राजा के भीतर भी उस आन्तरिक रोग के दूर होते ही आत्मिकशक्ति का विकास होने

लगा। आत्म-शुद्धि वढने लगी और उसके साथ ही वह समवसरण के समीप पहुँचा। उसने वहा की स्थिति देखी कि—

> प्रथम सुरासुर क्रोड रचित मोटे मडाणे,
> समवसरण गढ़ तीन देख भविजन सुख माने।
> चउदिस चार प्रतोल, चार पुष्करिणी शीतल,
> चार चार वनखड, भार अठारे लक्ष फल ॥
> वारणे स्थम्भ तोरण घणा, कंचन गढ़ मणि में लजा।
> वाजित्र कोटि वाजे घणा, दृढ कलश ऊपर ध्वजा ॥१॥

भगवान् का समवसरण भूमि से लगता हुआ नही होता है। उसमे वीस हजार सीढिया लगती हैं, इतनी ऊचाई पर वह रचा जाता है। सर्व प्रथम चादी का कोट और उस पर सोने के कगूरे होते हैं। इसके आगे तेरह सौ धनुप छोडकर दूसरा सोने का कोट और उस पर रत्नो के कगूरे थे। फिर तीसरा गढ, उसमे रत्नो का कोट और मणियो के कंगूरे थे। यहा पर चारो दिशाओ मे चार चार वापिकाए थी। उनमे देवताओ के नाटक हो रहे थे। इस प्रकार समवसरण की अद्‌भुत रचना थी। ज्यो ही राजा दशार्णभद्र समवसरण के पास पहुचा और पहिला कोट आया, त्यो ही वह हाथी से नीचे उतरा। हाथी से नीचे क्यो उतरा ? कारण कि संसार की जो भौतिक कार्यवाही थी, वह यही पर छोडनी पडती है। अव उसके मन मे यह विचार पैदा हुआ कि मुझे आते समय जो अहभाव जगा था, सो मेरे से तो लाखो गुणी विभूति के साथ इन्द्र भगवान् की वन्दना के लिए आया है। ससार के सामने मेरा छोटापना प्रकट हुआ ? अव इन्द्र से मैं कैसे वढू आगे ? इन्द्र से मुझे वैर भाव से प्रतिस्पर्धा नही करनी है। किन्तु धर्म भाव से आगे वढना है और उसे वतलाना है कि मैं तेरे से वढकर हूं। और तू मेरे से छोटा है। अव मैं कौन सा कार्य ऐसा करू जिससे कि मैं उससे वडा सिद्ध हो सकूं ? अव एक ही वात ध्यान मे आ रही है कि मैं ससार को छोडकर साधुपना ले लू ? इस वात मे इन्द्र मेरी वरावरी नहीं कर सकेगा। अव मुझे एक समय का भी विलम्व नही करना चाहिए। उसने न रानियो से पूछा, न पुत्रो से

और न सरदारो से ही पूछा कि मैं यह सव राजपाट और तुम लोगो को छोड-कर साधु वनने जा रहा हू। न किसी से साधु वनने का उपदेश ही लिया। अरे, उपदेश तो हृदय मे भरा हुआ है। यदि मनुष्य के हृदय मे उन्नत विचार आ जायें तो उत्थान हो जाय। और यदि नीचे विचार आ गये तो नीचे गिरते भी देर नही लगती है। अपना उपदेश ही, अपने विचार ही अपने को ऊच अथवा नीच वनाते हैं। इन विचारों के साथ राजा दूसरे गढ़पर चढ़ा। वहा पहुँचने पर उसने छत्र, चवर और खड्ग आदि राजचिह्नो को अलग रख दिया। क्योकि समवसरण का यह कायदा है, कि अपने वैभव के सर्व चिह्न यहा उतार दिये जावें। अव राजा तीसरे गढ़पर चढा, जहा पर कि भगवान् विराज रहे थे। वहा पर पहुचते ही विचार आया कि अव मुझे इन वस्त्राभूषणो को धारण करने की आवश्यकता नही है। यह विचार आते ही राजा एक-एक करके उन्हें उतार कर फेंकने लगा। भाई, जिसके हृदय से भौतिक पदार्थों के प्रति रहने वाला ममत्व भाव दूर हो जाता है, वह फिर उनकी परवाह करेगा क्या ? नही करेगा। अव सरदार और साथ के अन्य लोग देख कर विचारते हैं कि राजा यह क्या कर रहा है ? राजा के हाथ अव सिर के केशो पर पडे जो तेल से सुगधित हो रहे थे और भ्रमरावलि जिनके ऊपर मडरा रही थी। राजा ने एक-एक करके केश उखाडना प्रारम्भ कर दिया। साथी लोगो ने कहा—महाराज, यह क्या कर रहे हैं ? राजा वोला—मेरी आत्मा मुझे जो प्रेरणा दे रही है, वही कर रहा हू। सरदारों ने कहा—स्वामिन्, अभी आपके लिए इसका अवसर नही है। राजा ने कहा—आप लोगो के लिए नही है, किन्तु मेरे लिए तो यही अवसर है। मेरे पीछे निरन्तर काल लगा हुआ है, जन्म-मरण का रोग लग रहा है और वुढापा आ रहा है। अव मैं इन सवसे निर्भय होना चाहता हू। अव मुझे न तो भयो के वीच मे और न भायो (कुटुम्वियो) के वीच मे ही रहने की इच्छा है। अव तो मुझे निर्भय वनना है। सरदारो ने वहुत कुछ कहा-सुना। परन्तु राजा ने एक की भी वात नही मानी। आप देखते हैं कि जिनकी आत्मा मे वैराग्य समा जाता है, फिर वे ससार की किसी भी हवा के झोके से चलायमान नही होते हैं।

वैराग्य के प्रकार

भाइयो, वैराग्य भी कई प्रकार का होता है। जैसे—चटक-वैराग्य, मटक वैराग्य, मसाणिया वैराग्य और खीचडिया वैराग्य। चारो वैराग्यो को तो खर्च खाते माडो, जैसे ही हैं। इनको वटा-खाते मे नही ले जा सकते हैं। अव चटक वैराग्य क्या है, यह सुनिये—घर मे स्त्री पुत्रादि से जरा सी भी अनवन हुई कि वोले—आप अपना घर संभालो, मैं तो साधु वनता हू। यह कह कर साधु वनने के लिए घर से वाहिर निकले। मार्ग मे कोई साथी मिला और उसने कहा कि भाई, घर-गृहस्थी मे तो ऐसी खट-पट होती ही रहती है। दुनिया तो निसड्डी है, यहा पर नकटाई किये विना काम नही चलता है। चलो भाई, घर चलो। इस प्रकार साथी के कहने पर पीछा घर चला आया और उधर वैराग्य भी चला गया।

अव मटक वैराग्य को सुनिये। कही किसी स्थान पर पाच-सात लोग वैठे हैं और वातें चलते-चलते वैराग्य की वातें चलने लगी। किसी ने कहा कि देखते क्या हो? आप यदि दीक्षा लो तो मैं भी तैयार हू। सामने वाला कहता है कि आप यदि दीक्षा लेवें-तो मैं भी तैयार हू। यह उनकी खाली मटक है, दीक्षा लेने वाला कोई नही है।

तीसरा है मसाणिया वैराग्य। अल्प आयु मे किसी का मरण हो गया। उसे लेकर मसाण मे गये। वहा पर लोग आपस मे कहते हैं कि भाई, वड़ी अनहोनी वात हो गई? देखो—जरासी उम्र मे यह वेचारा चला गया। ससार का कुछ भी सुख नही देख सका? यह ससार असार है। इसे धूल दो और दीक्षा ले लो। इस प्रकार परस्पर मे कुछ देर तक वैराग्य की वातें करते हैं। इतने मे वह जलकर खाक हो गया। वहा मे रवाना हुये, स्नान किये, कपडे सूखे और उनके साथ ही वह वैराग्य भी सूख गया। अव कहने लगे कि अरे, लोग तो इस प्रकार मरते ही आये हैं सो क्या घर-वार थोडे ही छोडा जा सकता है और साधुपना भी क्या लिया जा सकता है? यह मसाणिया वैराग्य है।

चौथा है खीचडिया वैराग्य। कोई मुनिराज तपस्वी थे। जोधपुर जैसा

साताकारी क्षेत्र और दातार भी उत्तम उदार हृदय वाला मिल गया। मुनि-राज गोचरी मे ताजे घी से बने पकवान, घृत-पूरित खीचडी और इसी प्रकार की भिक्षा लेकरस्थानक मे आये। उन्होने अनजाने मे गोचरी के पात्रो को खुला रख दिया। अन्यथा वस्त्र से ढककर रखना चाहिए। वहा पर एक मन चला भूखा व्यक्ति वैठा हुआ था। उसकी दृष्टि पात्रो पर पड गई। वह विचारने लगा कि साधुपना तो वहुत आराम का है। न कही जाना पडे, न आना पडे और न कुछ परिश्रम का काम ही करना पडे। और वढिया-वढिया माल खाने को मिलें। हम भी अव साधु वन जाते हैं, ऐसा उसने मन मे विचार किया और उसी समय मुनिराज के पास जाकर अपनी भावना व्यक्त कर दी। मुनिराज ने कहा—भाई, साधुपना करडा वहुत है, यह खाडे की धार पर चलने के समान है। यदि तेरे भाव साधु वनने के हैं, तो आ जा। व्याख्यान का समय था, इसलिए स्त्री-पुरुष आने लगे। महाराज भी पाट पर वैठकर व्याख्यान देने लगे। इसी खीचडिया वैरागी ने भी व्याख्यान मे वहुत सिर हिलाया और कहने लगा कि महाराज का उपदेश वहुत ठीक हैं। इसे सुनकर तो मेरा मन ससार से उदास हो गया है, यह ससार तो बिलकुल असार है, आदि। व्याख्यान में उसकी मा और स्त्री भी आई हुई थी। लोग कहने लगे कि आज यह क्या कह रहा है? ऐसी वैराग्य की वात तो आज तक इसके मुख से कभी नही सुनी है? व्याख्यान के समाप्त होते ही उसने अपनी मा के पास जाकर कहा—मा सा० अव तो मैं साधुपना लू गा। मा ने उसके मुख से जव यह वात सुनी तो सोचने लगी कि यह क्या साधुपना लेगा? यह तो खाड-गदूरा है। उसने वीदणी को घर जाकर वढिया भोजन वनाने का इशारा कर दिया। फिर वह विचार ने लगी कि आज अचानक इसे यह वैराग्य कहा से पैदा हो गया है? कही इसने मुनिराज के पातरे मे माल-मसाला तो नही देख लिया है? जिसे देखकर इसके भाव साधु वनने के हो गये हैं? मा ने कहा – वेटा, साधुपना सरल नही है। फिर भी यदि तुझे लेना है तो खुशी से लेना। मैं तुझे रोकने वाली नही हू। परन्तु एक वार घर चल और मेरे हाथ से भोजन तो कर ले। फिर पीछे आज्ञा की वात

करना । उसने कहा अच्छी वात है मा सा० । घर को चलिये । उसे लेकर मा घर गई । घर पर वीदणी ने पहिले से ही वढिया रसोई वनाकर तैयार करली थी । इसके घर पहुचते ही वाजोटिया, थाली कटोरिया रख दी । लच्छेदार फुलके और वढिया चटपटे चार-छह प्रकार के साग परोसे, मीठा और नमकीन भी परोसा । मा पास मे वैठकर पखे से हवा करने लगी । ये सव ठाठ-वाट देखकर उसके विचार वदल गये और विचारने लगा कि इतना आराम साधुओ को कहा रखा है ? वहा तो यह है कि कभी राजाशाही भोजन मिल जाय और कभी कडका भी करना पडे । हमे तो साधु नही वनना है । अव उसका वैराग्य कपूर के समान उड गया । अव वह खा-पीकर सीधा दुकान पर चला गया । अव आज्ञा मागने की वात समाप्त हो गई, उसकी आवश्यकता ही नही रही । पहिले तो वह खूव सामायिक करता था, प्रतिदिन नियम से व्याख्यान सुनने को जाता था । अव वह सव छोड दिया । दो-चार दिन के वाद उसकी गली से वे ही मुनिराज आ रहे थे और यह भी घर पर जा रहा था, तो दोनो का आमना-सामना हो गया । उसे देखते ही मुनिराज ने कहा—भाई, तुम तो साधुपना लेने वाले थे और अव तो सामायिक करना और व्याख्यान मे आना भी छोड दिया है ? वह वोला—महाराज, हम तो ऐसे ही हैं । वैराग्य आकर के चला गया ।

ये चार प्रकार के वैराग्य तो ऊ चे रखने जैसे हैं, किसी काम के नही हैं । अव पाचवा वैराग्य है किरमिची रग का । यदि एक वार पक्का रंग चढ गया तो फिर धोने से भी उतरता नही है । ऐसा ही वैराग्य दशार्णभद्र राजा को आया । तो क्या किया कि—

आया अजव उन्हें वैराग्य, राजाजी तैयारी कर डाली ।
जाना भौतिक सुख भयखान, स्वार्थ की दुनिया है सारी ।

भाई, सच्चा वैराग्य यदि आ जाय तो वह किसी को रोका हुआ रुकता नही है । मा-वाप, भाई-वहिन, पुत्र, या मित्र कोई भी क्यो न रोके, पर वह रुकता नही है । वह तो अगला मार्ग पार करके ही रहेगा । राजा दशार्णभद्र का वैराग्य वढ़ा और उन्होंने केशो का लु चन

कर लिया और आगे बढा। अब इधर एक ओर से तो दशार्णभद्र राजा जा रहा है और दूसरी ओर इन्द्र जा रहा है। राजा ने इन्द्र का हाथ पकड लिया और कहने लगा कि—

सुनो सुर राजजी, होड़ करी तो पक्की आप निभावना।
पीछे पग तो नाही देना, कथन किया तिस पर ही रहना।
जन्म सफल जग मे जहेना ॥ सुनो सुर राज जी० ॥१॥
स्वाभिमान रखना अब आगे, जिससे कलक नहीं लागे।
अतर की सद्ज्योति जागे॥ सुनो सुर राज जी० ॥२॥

हे सुरराज, हे इन्द्र महाराज, आपने जो मेरे साथ होड कर ली है, तो उसे अब बराबर निभाना। कही ऐसा न हो कि पैर पीछे दे देवें ? आप हाथियों को सजा करके आ गये और बराबरी कर ली! परन्तु मैं कहता हूँ कि या तो पहिले बराबरी करनी नही। और यदि बराबरी करली, तो फिर पीछे पैर नही देना चाहिए। अब तो आपको मेरे साथ ही रहना चाहिए। राजा दशार्णभद्र कहते हैं कि

आओ इन्द्र, संयम लेस्या, प्रभु भक्ति मे चित्त देस्या।
अब भौतिकता मे नहीं वेस्या, कर्मों ने वाली रेस्या॥

× × ×

प्रभू भक्ति भारी करन हित त्यारी नृप करी,
सवारी को भारी जनपति मदान्धी बन गया।
विडौजा राजा को श्रमित कर डारा उस घड़ी,
तभी दीक्षा लेके सचीपति लगाया निज पगे॥

अब आप भी मेरे साथ आ जाओ। मैं भी साधुपना लूगा और आप भी लेवें। फिर अपन दोनो भगवान की भक्ति मे रहेगे, जीवन को सफल करेंगे और आत्म कल्याण करेंगे। राजा दशार्णभद्र के इन वचनो का चाबुक लगते ही इन्द्र की आखें खुल गई। उसने सोचा कि अरे, यह तो साधु बनने को ही तैयार हो गया है, परन्तु मैं कैसे साधुपना लेऊँ ? मुझसे तो इसका लेना अशक्य है। इसने तो गजब का काम किया है ? अब मैं इसको क्या उत्तर दू ? यह कह रहा है कि पीछे पैर मत रखना और मा का दूध मत

लजाना। तो मा के दूध की लाज रहे, चाहे न रहे! पर इस साधुपने का धारण करना तो मेरे से नही हो सकता। इन्द्र बोला—

हा, साधुरूप करू एता, जम्बू द्वीप भरे जेता।
पण सजम तो नहीं ले सकता ॥१॥
अहो महाराजा, थें जीता सौवार चरण वलिहारी ॥

हे राजन् मैं साधु के इतने रूप वना दूँ कि सारे जम्बू द्वीप को भर दूँ। पर एक समय का भी सयम लेकर मैं साधु वन जाऊ, यह सभव नही है। मैं सयम को धारण करने की सामर्थ्य नही रखता हू। राजा वोला—वस, इन्द्र महाराज, इतनी ही सामर्थ्य है? इन्द्र ने कहा—राजन्, आप मुझे भला कहें, चाहे कुछ भी कहे। यहा पर आकर आप जीते और मैं हारा। आखिर इन्द्र को कहना पडा कि तेरी मा को ही धन्य है। इस प्रकार इन्द्र को जीत कर राजा भगवान के पास गये और तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान से कहा—भगवन, तारो, तारो, मुझे तारो। भाइयो, देखो -राजा की भावना वन्दना करने को चलते समय कैसी थी? वे भगवान के दर्शन करने और उपदेश श्रवण करने को घर से निकले थे। उस समय साधुपने के भाव नही थे। परन्तु समवसरण तक पहुँचते-पहुचते क्या भाव वढ़े कि साधुपना ही धारण कर लिया। आप लोग भी यहा पर उपदेश सुनने के भाव लेकर ही घर से आये हैं। परन्तु आपने अपने भाव पीछे किसी को सभलाये हैं क्या?

राजा दशार्णभद्र की इस प्रेरक घटना के विषय मे कहा है—

आज मैंने एक वात कही कि मनुष्य के मस्तिष्क मे क्या क्या वातें भरी हुई हैं? उसमे कितनी शक्ति है और वह क्या क्या काम कर सकता है? मनुष्य वह काम कर सकता है, जिसे इन्द्र भी नही कर सकता है। इन्द्र तो भगवान के चरणो मे सदा पडता ही है, किन्तु आज वह दशार्णभद्र राजा के चरणो मे भी पड गया। आज के मानव मे कमजोरी भी ऐसी आ गई है कि कायरता की वातें उसके दिमाग से दूर नही निकलती हैं। और इसी कारण वह अपना मानवपना व्यर्थ गवा देता है। तथा कभी कभी तो वह मानवता से भी पतित हो जाता है। आप लोग स्वय अपने को ही देखें कि आपने

हिम्मत की तो मारवाड छोडकर दिसावर मे गये। वहा पर कितने ही लोगो की पगचपी की, रसोई वनाई और अनेक प्रकार के काम किये तो आज लखपति वन गये, या नही ? यदि यही वैठे-वैठे कहते रहते कि जायेंगे जायेंगे तो लखपति वन जाते ? जव गये, तव लाखो-करोडो रुपये कमा लिये। और दूसरे देश मे गये तो क्या ? मार्ग मे ही मृत्यु आ जाय तो वही के वही रह गये ? यह सव रात्रि मे आनेवाले स्वप्न के समान है। स्वप्न आया और अनेक प्रकार की तैयारिया देखी राग-रग आए। परन्तु आखें खुली तो क्या है ? कुछ नही है। ससार का यह सव कारोवार भी एक स्वप्न ही है। आख मिचौनी के वाद यहा भी कुछ नही है। वह रात का स्वप्न पाच दस मिनिट का आता है। और यह स्वप्न दस, पचास या सौ वर्ष का होता हैं। हमारा कितना वडा शरीर है, कितनी वडी वुद्धि है। परन्तु मरने के वाद भी कुछ है क्या ? नहीं, कुछ नही है। फिर तो सारा मामला ही सुनसान हो जाता है। यह शरीर एक मिट्टी के पुतले के समान है। स्वप्न वह भी है और यह भी है। किन्तु फिर भी स्वप्नवत इस ससार से सार लिया जा सकता है। यदि सार लेने वाला चतुर हो तो प्रत्येक स्थान से प्रत्येक वस्तु से ले सकता है। अरे, नेहरूजी को जेल मे वन्द कर दिया व्रिटिश सरकार ने, तो उन्होंने वहा पर भी सार निकाला और एक पुस्तक लिख दी—'मेरी जेल यात्रा'। और वहा भी साहित्य का सर्जन किया, जहा मूर्खों का कुसग था, और उसकी अभद्र वातें ही सदा सुनने को मिलती थी। भाई, वह तो कुछ लोगो के लिए कुछ समय की जेल है। और यह सारा ससार सभी का जेल खाना है। कहा है कि—

> एक रयनि अंधेरी बिजली चमकेजी एक कैदी कैद मे रहते थे,
> सफील गिरी पहरायत सूते, बंदीवान् इक कहते थे।
> सब ही निकसे यह है मारग जी यह अवसर नहीं आने का,
> बहुत अच्छा, पण जरा लेटके, है इरादा जाने का॥
> जे निकस्या ते घर को पहुचे जीं, सूताते जंजीर जड़ा।
> कब हूं मार्ग, कब वह निकसे, इस रीते जगवासी पड़ा।

मत जानो जग सच्चा, है यह कच्चे से कच्चा।
वीर तणी है वाचा, आता नहिं अवसर फेरी।
तुम भाग चलो तो कहो जी प्यारे, आगे नहीं मिलती सेरी ॥

एक वडा भारी शहर है। उसमे जेल भी है और महल भी हैं। सपूतो के लिए महल है और कपूतो के लिए जेल है। दोनो पर ही पहरा लगता है। उस जेल मे सैकडो कैदी सड रहे हैं, दुःख पा रहे हैं, उनकी स्वतन्त्रता छिन चुकी है और परतन्त्रता मे पडे हैं। प्रकृति ने साथ दिया, मेघ-घटा आई और जल वरसा। इससे जेल की एक ओर की सफील गिर गई। इधर पहरेदार नीद मे वेखवर सो रहे हैं। ऐसे समय मे एक वृद्ध कैदी ने हित भावना से प्रेरित हो कर कहा—भाइयो, जागो, चेतो और भाग जाओ। इस समय तुम्हारे जीवन का यह सवमे सुन्दर और सुनहरी अवसर आया है। इससे लाभ उठा लो। सौभाग्य से प्रकृति ने यह स्वर्ण अवसर दिया है। इस समय जिधर से निकलना चाहो उधर से निकल जाओ। यदि एक वार इस जेल से निकल गये तो फिर पहरेदारो के हाथ मे नही आओगे। वृद्ध की यह हितकारी वात सुन करके भी वे सोते हुए कैदी वोले—वावा, तेरी वात तो सही है। परन्तु हम लोग कितने ही दिनो से गर्मी मे तप रहे हैं। प्रकृति ने यह वर्षा वरसाई है तो ठडी ठडी हवा की लहरें आ रही है। अभी तो रात वहुत वाकी है। अत अभी घटे-दो घटे सुख की नीद सो लेने दो, जरा आराम कर लेने दो। वाद हम लोग वाहिर निकल जायेंगे। वयोवृद्ध कैदी ने फिर कहा कि आराम मतकरो और यहा से निकल जाओ। यहा से वाहिर निकल जाने के वाद जीवन भर खूव आराम करना। परन्तु उन कैदियो ने कहा—वुड्ढे, हम लोग तेरी वात मानने को तैयार नही है। हम तो पहिले आराम करेंगे और फिर यहा से जायेंगे। उन कैदियो मे जो समझदार थे, उन्होंने वुड्ढे की वात मान ली और तुरन्त निकल भागे। जो निकल गये, वे तो स्वतन्त्र हो गये। परन्तु कुछ ने वुड्ढे की वात नही मानी और आराम मे पडे रहे। वे जव सो ही रहे थे तव पहरेदारो की नीद खुल गई। उन्होंने देखा कि जेल की सफील गिर गई है, तो एक दम विसिल दी—सीटी वजाई

कि खतरा है। विसिल के सुनते ही फौज आगई और उसने जेल के
ओर घेरा डाल दिया। अब आप बतावें कि उन आराम करने वाले
को अब कब तो मौका मिलेगा और कब वे वहा से भागेंगे ? समझा
क्या मूर्ख था ? और आप लोग क्या हैं ? यह नरक रूपी जेल है औ
वानी रूपी सफील गिरी और मनुष्य का भव मिल गया। अब बुड्ढे
समान गुरु महाराज कहने लगे कि 'बुज्झ बुज्झ' जाग, जाग, बोध क
कर। फिर यह अवसर नही आने वाला है। अब आप कहते हैं कि म
सच कहते हो। परन्तु अभी तो बालपना है, खेलने का समय है। मु
ने कहा कि ठीक है। अब आगई जवानी, तो गुरुदेव ने फिर चेत
अब तो चेत जाओ। सुनकर आप कहने लगे कि भोले हुए हो महाराज
तो हमें कुछ भी नही सूझता है कहा है कि—

पगड़ी झुकाय प्यारो टेढो-टेढ़ो चाले।
जवानी का जोर माहे मूंछो बल घाले।
ते तो हाथ जवानी दगो दे दियो रे।
नर भव निकम्मो गमाय दियो रे।
प्रभु भजवे को लाहो नहीं लियो रे॥

भाई, जवानी आई तो हड्डियो मे करार, खून मे जोश, बोली मे
कपडे पहिने वे भी चुस्त वे भी जोश के। और पग रखियें भी चडचू
बोलें, तो वह फिर क्यो नही कडक बोले ? जवानी मे आखें चढ गई
आसमान पर कि बस, मैं ही हू, मेरे सामने कोई दूसरा नही है। पर
इतना अहंकारी मत बन। यदि बुढापे की लपेट मे आ गया, तो स
जायगा। कहा है कि—

ओ चटको चार दिनों को, चेतन लटको छोड़ परोनीरे।
खटको काल तणो है खोटो सटके धर्म करोनीरे।

देख, यह चटक और मटक, यह नखरा और मिजाज केवल चार
का है। वह भी पुण्यवानी पोते होवे तो चलता ही है। भाई, जवा

फिर आया बुढापा, फिर आया अधापा और फिर आ गया मु ढापा । लोकोक्ति भी है कि 'साठा बुद्धि नाठा' । बुढापा आते ही और साठ वर्ष का होते ही बुद्धि निकल जाती है और अक्ल मारी जाती है । फिर तो आप लोग ही अपने वडेरो से कहने लगेंगे कि चुपचाप क्यो नही पडे रहते ? दिन भर क्या कट-कट किया करते हैं ? भाई, फिर तो बुढापे मे सारी बातें आ जायेंगी । फिर भगवान् की वाणी सुनने का मौका मिलेगा क्या ? जैसे जेल मे कैदी पडे हुए सडते रहते हैं, वैसे ही तेरी भी बुढापे की जेल मे पडे पडे जिन्दगी पूरी हो जायगी ? इसलिए कवि कहता है कि इस जेल से निकलना होवे तो निकल जा, अभी निकल भागने का अवसर है । नही तो फिर चौरासी लाख योनियो की जेल वडी लम्बी है । फिर वहा से निकलना वहुत कठिन है और मनुष्य भव पाना तो और कठिन है । परम सवेगी प० दौलतराम जी कहते हैं कि—

> **दौलत समझ, सुन, चेत, सयाने, काल वृथा मत खोवे ।**
> **यह नर-भव फिर मिलन कठिन है, जो समकित नहि होवे ॥**

अरे प्राणी, अव भी इस बुढापे मे भी समझ जा, चेत जा । हे सयाने, चतुर मनुष्य, तू समय को वृथा मत खो । यदि तूने समकित प्राप्त नही किया, तो फिर इस मनुष्य भव का पाना वहुत कठिन है । वे आगे आप लोगो को सम्बोधन करते हुए फिर भी सावधान करते है कि—

> **यह मानुष पर्याय, सुकुल, सुनिवौ जिनवानी ।**
> **इह विध गये न मिलें सुमणि ज्यो उदधि-समानी ॥**

अरे भाई, जैसे कोई हाथ आई हुई उत्तम चिन्तामणि यदि असावधानी से समुद्र के बीच मे गिर जाय और पानी मे समा जाय, तो जैसे उसका मिलना अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार हाथ मे आई यह मनुष्य पर्याय, यह परम पवित्र जिनवाणी का सुनने का अवसर मिलना भी वैसा ही कठिन है ।

भाइयो, यदि आप लोगो को पर भव का कुछ भी खटका होवे तो तैयार हो जाओ और धर्म के लिए केसरिया वाना पहिन लो । देख लो दशार्णभद्र

ने लिया केसरिया वाना तो साधुपना लेकर के भी वैठे नही रहे । खूव जोरदार कमाई भेली की कि फिर पीछे लौटने का काम ही नही रखा । काम करने का वही आनन्द है । प० दौलत रामजी आप जैसे भव्य जीवो को सम्वोघते हुए और भी कहते हैं कि—

यह राग आग दहै सदा, तातें समामृत सेइये,
चिर भजे विषय कषाय, अव तो त्याग निजपद वेइये ।
कहा रच्यो पर पदमे, न तेरो पद यहै, क्यो दुख सहे ।
अब दौल होहु सुखी स्व पद रचि,दाव मत चूकौ यहै ।।

हे भव्य प्राणी, ससार मे रहते हुए यह पचेन्द्रियो के विपयो को पाने की रागरूपी आग सदा जल रही है, इसे शान्त करने के लिए तो समताभावरूपी अमृत का ही तू सेवन करे । अनादिकाल से तूने इन विपय और कषायो का सेवन किया और उनका सेवन करते हुए तूने अनन्तकाल बिता दिया है । अरे, अव तो इन विपय-कपायो को छोड, इनका त्याग कर और अपने निजपद मोक्ष को प्राप्त करने का प्रयत्न कर । ससार के इन पर पदो मे तू क्यो रच रहा है ये तेरे नही है । फिर क्यो इनके पीछे पडकर के दुख को सह रहा है । दौलतराम जी, अपने आपको सम्वोधित करने के वहाने सव लोगो को सम्बोधित करते हैं कि इन सव झझटो को छोडकर और अपने आत्मपद मे रमकर सुखी वन जा । इस दाव को, मौके को मत चूक ।

भाइयो आज भादवा वदी वारस है, स्त्रियो के वच्छ वारस है और कल तेरस है । कहा है कि 'अनपूछया मुहूरत भला, कै तेरस कै तीज' । यह तो विना पूछा हुआ मुहूर्त है । यह विवाह-शादी का नही मकान, गोठ और घू घरी का नही है । परन्तु यह आत्म-कल्याण का मुहूर्त है । कल से पर्यु पण-पर्वाधिराज के आठ दिन है, अत उनके आठ विभाग कर लेना चाहिए । एक दिन सामायिक का रखो, एक दिन दया-पालन का रखो, एक दिन पौषघ का, एक दिन क्षमा का, एक दिन अहिंसा का, एक दिन परोपकार का, एक दिन ममत्व त्यागने का । और आठवा दिन है सवत्सरी का, साल भर का नावा-लेखा मिलाने का दिन है । मेरा तो आप सव लोगो से आग्रह

पूर्वक यही कहना है कि इन दिनो मे खूब धर्म की अभिवृद्धि करना, और खूब सेवा करना। जनता भी इन दिनो विशेप रूप से आयगी। इसलिए उसकी सेवा मे तैयार रहना, जिससे कि व्याख्यान मे किसी प्रकार की गड-वडी नही होने पावे। उस समय सवर करके काम करना। व्यवस्था ठीक रखने से सवको व्याख्यान सुनने का मौका मिलेगा। भाई कल से धर्म का मेला है तो हल्ला-गुल्ला भी होगा। फिर आप लोग कहेगे कि महाराज, लाउडस्पीकर पर वोलो। पर मैं तो न पहिले वोला हूँ और न आगे वोलूँगा। इसलिए सव भाई-वहिनें अत्यन्त शान्ति के साथ सुनें, जिससे सवको सुनने का अवसर प्राप्त हो। तथा व्याख्यान के समय से पूर्व ही जल्दी आना और सकडाई मे वैठना, ताकि सभी आने वाले वैठ सकें। और आपस मे वातचीत मत करना, सव मौन धारण कर लेना, तभी निराकुलतापूर्वक आपकी सामायिक भी सधेगी और व्याख्यान सुनने का आनन्द भी प्राप्त होगा।

वि० सं० २०२७ भाद्रपद कृष्णा १२

जोधपुर

●●

७ | धर्म, यह वीरों का है

सज्जनो, अभी आपके सामने मुनि रूपचन्द जी ने अर्जुन माली का अधिकार सुनाया। यदि इस आख्यान पर आप लोग गहराई से विचार करें तो ज्ञात होगा कि भगवान महावीर का हृदय कितना विशाल था जैन धर्म की यह उदारता रही है कि उसने यह कभी नही कहा कि जैन धर्म किसी व्यक्ति विशेष का ही धर्म है, या किसी जाति विशेष का, या किसी प्रमुख कुल का धर्म है। अथवा किसी की धरोहर ही है। परन्तु भगवान् ने सबके सामने यही कहा कि जो भी व्यक्ति शुद्ध हृदय से इसे स्वीकार करना और धारण करना चाहे, वह स्वीकार कर सकता है और इसे धारण कर अपना उद्धार कर सकता है।

आप लोग देखिये—भगवान् ने हृदय की इसी विशालता से क्षत्रिय जाति के अनेक मुनि बनाये, ब्राह्मण जाति के, वैश्य जाति के और शूद्रजाति के भी अनेक शिष्य बनाये। इनमे सबसे निकृष्ट समझे जाने वाले अर्थात् कुत्ते का मास खाने वाले चाण्डाल कुल मे जन्मे व्यक्ति को भी जैन धर्म स्वीकार करने से इनकार नही किया। किन्तु कहा कि तुम्हे भी धर्म धारण करने का अधिकार है।

धर्म मे भेद की दीवारें क्यो ?

इधर हम देखते हैं भगवान् महावीर के समय मे ही ब्राह्मणो का सबसे

अधिक बोलवाला था। उनका उस समय धर्म के ऊपर एक छत्र शासन था। उस समय ब्राह्मणो ने यहां तक कानून बना दिये थे कि—

न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविस्कृतम्।
न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥
यश्चास्योपदिशेद्धर्मं यश्चास्य व्रतमादिशेत्।
सोऽसवृत तमो घोरं सह तेन प्रपद्यते ॥[1]

अर्थात्—शूद्र के लिए ज्ञान नही देना चाहिए, न यज्ञ का उच्छिष्ट और हवन से बचा हुआ भाग, और न उसे धर्म का उपदेश ही देना चाहिए। यदि कोइ शूद्र को धर्मोपदेश और व्रत का आदेश देता है, तो वह शूद्र के साथ असवृत नामक घोर अन्धकारमय नरक मे जाता है।

शूद्रो के लिए तथा स्त्रियो के लिए वेद पढने का स्पष्ट निषेध था—'स्त्री शूद्रौ वेदं नाधीयेताम्'। किन्तु शूद्रो के लिए तो ब्राह्मणो ने यहा तक व्यवस्था कर रखी थी कि जिस गाव मे शूद्र निवास करता हो, वहा पर वेद का पाठ भी न किया जावे। यदि धोका देकर, वेष-बदलकर कोई शूद्र वेद-ध्वनि को सुनले तो उसके कानो मे गर्म शीशा और लाख भर दी जावे। और यदि वह वेद-वाक्य उच्चारण करे तो उसकी जिह्वा का छेद न कर दिया जाय। तथा वेद-मत्र याद कर लेने पर उसके शरीर के दो टुकडे कर दिये जावें।[2]

---

१ वशिष्टस्मृति १८।११-१३

२ अथ ही अस्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपु-जतुभ्यां श्रोत्र-प्रतिपूरण-मुदाहरणे जिह्वा-च्छेदो धारणे शरीरभेद। (गौ० सू० १।४)

टीका—अथ हेति वाक्यालङ्कारे। उपश्रुत्य बुद्धिपूर्वकामक्षर ग्रहण मुपश्रवणम्। अस्य शूद्रस्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपु-जतुभ्यां त्रपुणा शीसकेन जतुना च द्रवीकृतेन श्रोते प्रतिपूरयि तव्ये। स चेद् द्विजातिभि. सह वेदाक्षराण्युदाहरे दुच्चरत्, तस्य जिह्वाछेद्या। धारणे सति यदाऽन्यत्र गतोऽपि स्वय- मुच्चारयितु शक्नोति, ततः परश्वादिना शरीर मस्य भेद्यम्।

(गौतम धर्म सूत्र, अ० ३ सू० ४ टीका। पृष्ठ ८९-९०। पूना सस्करण वर्ष १९३१)

इस प्रकार धर्म के ठेकेदार लोगो ने मानव-मानव के बीच धर्म के नाम पर भेद की दीवारें खडी कर दी थी। उस समय मे अन्याय और अत्याचार की पराकाष्ठा थी। इसी अन्याय और अत्याचार को मिटाने के लिए और धर्म के मामले मे सबको समान अधिकार दिलाने की दृष्टि से भगवान ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि जैन धर्म को किसी भी जाति का कोई भी व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक स्वीकार कर सकता है। धर्म के विषय मे सबको समान रूप से अधिकार है। कहो भाइयो, क्या अधिकार नही है ? है। जो करना चाहे, उसको ही अधिकार है। ऐसा तो वे लोग ही कह सकते है कि इसको अधिकार है और इसको नही है—जो कि जाति और कुल के मद से उन्मत्त हो रहे हो। जो सत्ता के लोलुपी हो, और दूसरो को नीचा बताना चाहते हो। किन्तु जिनका हृदय विशाल है, जो समस्त ससार को अपना कुटुम्ब मानते हो, उनके मुख से ये शब्द नही निकल सकते कि अमुक को धर्म-सेवन का अधिकार नही है। कहा भी है—

अय निज परोवेति गणनालघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह मेरा है और यह पराया है, ऐसी गणना तो क्षुद्रहृदय वाले मनुष्य ही करते है। जिनका हृदय उदार है, चरित उदार है, उनके लिए तो सारी पृथिवी ही एक कुटुम्ब के समान है।

क्या गुड़ खाने मे जाति का भेद चलता है ?

भाइयो, जो तलवार जमीन पर पडी हुई है, उसे उठाने का तो अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है। परन्तु उसे उठा वही सकता है कि जिसके हाथ भी मजबूत हो, जिसके सीने मे शक्ति हो और जिसे शत्रु पर प्रहार करने की कला आती हो। मैं आपसे पूछता हू कि गुड और शक्कर खाने का अधिकार क्या क्षत्रिय को ही है ? क्या ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र को उनके खाने का अधिकार नही है ? नही, सबको समान रूप से खाने का अधिकार है। गुड, खाड, शक्कर, मिश्री और अमृत ये सभी मीठे पदार्थ हैं। इन्हें हंसते-हसते

खाओ—तब भी ये मीठे हैं और रोते-रोते खाओ—तब भी ये मीठे ही प्रतीत होगे क्योकि उनका स्वभाव मीठा है, वह उनमे से कैसे जा सकता है ? इसीप्रकार इस धर्म को जो भी धारण करेगा, वह तो सभी देशो मे और सभी कालो मे मीठा अर्थात् सुख का देने वाला ही रहेगा। क्योकि सुख को देना उसका स्वभाव है। इसीलिए तो महापुरुषो ने कहा है कि **'धर्म सर्व सुखाकर'** अर्थात् धर्म सर्व सुखों का भडार है और सभी को सुख का दातार है, भले ही उसे धारण करने वाला किसी भी जाति का और किसी भी देश का क्यो न हो ? इसलिए इस जैनधर्म को जो भी स्वीकार करना चाहे, वह निसकोच भाव से स्वीकार कर सकता है। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि ऐसा प्राणिमात्र का हितकारी सुखकारी और प्रेय (स्वर्ग) श्रेय (मोक्ष) का देने वाला विश्व-धर्म पाकर के भी कितने ही लोग इधर-उधर भटकते नजर आ रहे हैं ?

सत्य धर्म को पाकर भी....

भाइयो, जरा विचार तो करो कि कोई मनुष्य हाथी के हौदे पर बैठा है, छत्र लग रहा है, दोनो ओर से चवर ढोले जा रहे है और उसकी सवारी बाजार मे से होकर निकल रही है। उसने रास्ते मे उस समय एक गधा देखा। उसे देखकर वह व्यक्ति विचार करे कि गधे कि सवारी कैसी होती है ? यह तो करनी चाहिए ? क्या उसका ऐसा सोचना उचित है ? और क्या लज्जा-जनक नही है ? घृणास्पद और निन्द्य नही है ? अरे भले आदमी, जब तुझे हाथी की सवारी मिल गई, तब फिर गधे की सवारी की क्या आवश्यकता है, उसकी क्या महत्ता है ? यह तो उसकी निरी मूर्खता है। इसी प्रकार जिसको मखमल और रेशम के कपडे पहिनने को मिल गये, तो फिर वह टाट और जूट के कपडे पहिनने की भावना क्यो लाता है ? जिसको हलुआ-पूडी खाने को मिल रही हैं उसे ज्वार और बाजरे की रोटी खाने की क्या दरकार है ? इसी प्रकार जब आप लोगो को ऐसा उत्तम से उत्तम वीतराग देव का सर्व-हितैपी विश्व धर्म अनन्त पुण्यवानी से मिल गया, तो फिर इधर-उधर कुदेवो मे भटकने की ओर उनसे याचना करने की क्या

आवश्यकता है ? आप लोगो को—जिन्हे कि जन्म से ही सहजभाव से—बिना किसी परिश्रम से— अनायास यह धर्म प्राप्त हुआ है—उन्हे तो इसकी अनहद खुशी होनी चाहिए। और आगे-आगे प्रगति करनी चाहिए ? पर, लोग इस बात को नही समझ रहे हैं, इसीलिए ससार मे भटक रहे हैं और दर-दर भीख मागते फिर रहे हैं। पण्डित बुधजन जी भगवान् की स्तुति करते हुए अपनी इसी भूल को प्रकट करते हुए कहते हैं कि—

'तुम ना पिछान्यो, अन्य मान्यो देव विविध प्रकार जी,
या बुद्धि-सेती निज न जान्यो, भ्रम गिण्यो हितकार जी।

वे कहते हैं कि हे हितकारी भगवन्, मैंने आपको नही पहिचाना, इसीलिए अनेक प्रकार के कुदेवो की—जो स्वय राग-द्वेष की दल-दल मे फँसे हुए हैं— मान्यता की, उनकी मनौती करता इधर-उधर भटकता रहा। और इसी अज्ञान बुद्धि से मैं निज आत्मस्वरूप को—जो कि तेरे ही समान अनन्त गुणो का भन्डार है—नही जान सका और भ्रम मे पडा हुआ आज भी दुख पा रहा हू।

जैन कौन ?

भाई, पहिले आप लोगो को स्वय जैन बनना चाहिए। वस्तुत जैन उसे ही कहते हैं जिसकी जिन देव पर अटल श्रद्धा हो और उनके कहे मार्ग पर चलने वाला हो। जो इस विश्व धर्म को धारण करके ससार को यह दिखा दे और उनसे कह दे कि जो जैन धर्म को देखना चाहते हैं वे मुझे आकर देख लें—मेरे आचरण को देख लें, मेरे व्यवहार को देख लें कि जैनधर्म ऐसा होता है। मैं तुम्हारे सामने उसी विश्व के हितैषी जैन धर्म की झाकी आप लोगो के सामने रख रहा हू, इसे अच्छी गहराई से देखो, परखो और फिर इसे हृदय से स्वीकार करो। जो स्वय धर्म मे सुदृढ़ होगा, वही दूसरो को इस सत्य धर्म का दिग्दर्शन करा सकेगा। और दूसरो को सुदृढ बना सकेगा। जिसमे अगाध शान्ति होगी, अपार क्षमा होगी और जिसका जीवन पवित्र धर्ममय होगा, वही ऐसा काम कर सकेगा। परन्तु जिनके जीवन मे शान्ति नही, क्षमा का नाम नही और धर्म की वासना नही, वह क्या धर्म

की प्रभावना कर सकेगा और क्या दुनिया मे उसका प्रचार-प्रसार कर सकेगा ?

यदि हमे धर्म की लगन है और धर्म की करणी करनी है तो उसे करने से कोई नही रोक सकता है। भले ही वह राजा, महाराजा हो, या राज्यपाल और राष्ट्रपति ही क्यो न हो ? अथवा कैसा ही विद्वान् और ज्ञानी क्यो न हो ? धर्म करने मे कोई किसी को रोक नही सकता है। परन्तु यह तभी सम्भव है, जवकि साधक स्वय उससे ऐसा सम्पन्न हो कि जिसे देखकर ससार स्वय चकित हो जाय। केवल वातें वनाने और वहानेवाजी करने से धर्म का उद्धार नही हो सकता है।

धर्म ने अर्जुनमाली को तारा

अभी आपने सुना है कि वह अर्जुनमाली प्रतिदिन छह पुरुप और एक स्त्री की हत्या करता था। वह इतना नृशस क्रूर हत्यारा था। दूसरी ओर उन ही दिनो धर्म करने के लिए सुदर्शन सेठ तत्पर होता है। उन दिनो भगवान् महावीर नगर के वाहिर वगीचे मे विराजमान थे। अर्जुनमाली के आतक से नगर के सारे दरवाजे वन्द करा दिये गये। कोई भी व्यक्ति वाहिर जाने की हिम्मत नही करता था। ऐसे विकट-सकट के समय भी उस दृढ धर्मी सुदर्शन सेठ ने भगवान के दर्शन और धर्मोपदेश-श्रवण करने के लिए नगर के वाहिर जाने का पक्का निश्चय किया। उसने मा-वाप के पास जाकर जाने की आज्ञा मागी। परन्तु उन्होने इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा—वेटा, भगवान् तो सर्वज्ञ है, अत यही से वन्दन कर लो, वह स्वीकार हो जायगा और आशीर्वाद भी तुम्हे प्राप्त हो जायगा। तव सुदर्शन ने कहा—पूज्य पिताजी, भगवान् जव वगीचे मे विराजमान है, तव मैं यही से वन्दन करू, यह अनुचित है, मेरी कायरता और कमजोरी है ? मैं तो वही जाकर वन्दन करूगा। यह सुनकर पिता ने कहा—पुत्र, वहा तक जाने के मार्ग मे तो भारी उपद्रव है, अर्जुनमाली से जीवित रहना कठिन है। तुम क्यो जान-बूझ करके मौत के मुख में जाना चाहते हो ? परन्तु सुदर्शन ने साहस-पूर्वक कहा—पिताजी, ससार मे कोई अमर होकर नहीं आया है। जो जन्मा है,

उसका मरण एक दिन—अवश्यम्भावी है। इसलिए हे पूज्यवर, मुझे मरने और जीने की कोई चिन्ता नही है। सुदर्शन का यह कथन सुनकर और उसकी ऐसी दृढता देखकर मा-बाप निरुत्तर हो गये।

इस प्रकार सुदर्शन सेठ धर्म-साधन की आवश्यक सामग्री लेकर घर से भगवान् की वन्दना के लिए चल दिये। नगर के द्वार पर पहरेदारो ने रोका मगर सुदर्शन के अति आग्रह करने पर उसकी दृढता को देखकर खिडकी खोल दी और उसे बाहिर यह कहकर जाने दिया कि आपने यदि मरने का निश्चय ही कर लिया है और मौत के मोती पहिन रखे हैं, तब आप आनन्द से जाइये।

सुदर्शन सेठ नगर से बाहिर निकलकर निर्भय हो भगवान की भक्ति और श्रद्धा मे भीजा हुआ जा रहा है,उसे अर्जुनमाली की कोई चिन्ता नही है। उसे अपने आप पर इतना दृढ विश्वास है कि जब मैं दूसरे किसी भी प्राणी का अशुभ-चिन्तक नही हू और प्रतिक्षण सर्व प्राणियो की मगल-कामना करता हू, तब दूसरा मेरा क्यो बिगाड करेगा, क्यो मुझे दु ख देगा और मेरे ऊपर क्यो आक्रमण करेगा? भाइयो,उस युग मे तो धर्म-साधन करने मे बडी-बडी आपत्तिया आकर खडी होती थी और अनेक प्रकार के चेतन-अचेतन कृत उपसर्ग आते थे। आज के समय मे तो आपको कौन धर्म करने से रोकता है और कौन विघ्न-बाधाए करने वाला है? आज तो भारत स्वतत्र है और किसी को भी किसी के धर्म-साधन करने मे रोकने का अधिकार नही है। यही पर देख लेना, आज लडको ने सारे शहर मे हडताल करवा दी। लोगो ने अपनी-अपनी दुकानें धडाधड बन्द कर दी। क्या ऐसा करने के लिए उन्होंने मास्टरो और पुलिस—अधिकारियो से आज्ञा ली? किन्तु जब ये छात्र दृढता से हड-ताल कराने के लिए उतारू हो गये, तब दुकानें बन्द करा रहे हैं। और बाजार बन्द कराते हुए क्या नारा बुलन्द किया कि 'आज जोधपुर बन्द'। आज हम सारी दुकानें बन्द करेंगे। जबकि आज पर्युषण के दिनो मे भी हम अखता नही पाल सकते हैं। यदि आज आप लोग बहादुरी दिखा करके दुकानें खुली रखते, तब आपकी बहादुरी थी। यदि आप लोग कहे कि हम दुकानें

खुली रखते तो वे लोग हमारी दुकानो मे धूल डालते, तोड-फोड करते और माल का नुकसान कर देते। इसलिए बन्द करनी पडी। परन्तु भाई, यह भी कोई बन्द रखना है ? जबर्दस्ती से बन्द कराई गई हैं। पर मैं तो यही कहूँगा कि अपनी इच्छा से त्याग किया जाता है, वही सच्चा त्याग है। बलात्कार से किया गया त्याग, त्याग नही कहलाता है।

भाइयो, किसी से लडना-झगडना नही और अपने गन्तव्य पथ पर स्वतत्र रूप से चलते रहना ही हमारे लिए सुखद और हितकारी है। दूसरे की इच्छा पर निर्भर रहकर जो कार्य करते हैं, वह ठीक नही। क्यो जब उसकी इच्छा नही होगी, तब नही करने देगा। इसलिए हमे स्वय विवेक-पूर्वक अपने करने योग्य कार्यों का निर्णय करना चाहिए और तदनुसार चलना चाहिए। यदि हम सत्य मार्ग पर चलें तो हमे कोई रोक नही सकता है। जब भी कोई समाज, देश, धर्म, या अपना निजी कार्य आवे, तब हिम्मत रखना चाहिए। बिना हिम्मत के न कीमत रहती है और न गौरव ही रहता है।

शक्ति से ही गौरव मिलता है

जोधपुर नरेश महाराज भीमसिंह जी को बादशाह ने दिल्ली के दरबार मे बुलाया गया। उस समय बादशाह ने इनकी हिम्मत की जाच करने के लिए पूछा— महाराज भीमसिंह, आपको यह 'कमधज' की पदवी किसने दी है ? उन्होने उत्तर दिया—बादशाह सलामत, यह पदवी किसी और ने नही दी है। इसे तो हमारे पूर्वजो ने, हमारी हिम्मत ने और हमारी शूर वीरता ने दी है। भाईयो, आप लोग इसका अर्थ भी जानते हैं ? इसका अर्थ है कि रणक्षेत्र मे लडते हुए जिसका शिर शत्रु के प्रहार से कट जाय, फिर भी जो धड मे लडता रहे,उसको कहते हैं—'कमधज, या (कबन्ध') बादशाह ने फिर पूछा —भीमसिंह, क्या आज भी कोई इस प्रकार से लडने वाला है ? यदि है तो ऐसे वीर पुरुष को मेरे सामने लाकर हाजिर करो। अन्यथा तुम्हारी यह पदवी समाप्त कर दी जायगी। तब भीमसिंह ने कहा—हुजूर, आप समाप्त कैसे करेंगे—जबकि मैं वैसे वीर पुरुष को लाकर खिदमत मे पेश करूगा।

परन्तु इसके लिए समय की कुछ मुहलत चाहिए। बादशाह ने कहा—अच्छा, एक माह की मुहलत तुम्हे दी जाती है।

अब महाराज भीमसिंह दिल्ली से रवाना होकर जोधपुर आ गये। दरबार भरा गया। तब महाराज ने कहा—सरदारो, अब हमारी यह 'कमधज' की पदवी जाने वाली है। अत आप लोग यह बतायें कि इस पदवी को रखना है, या गवाना है? यदि इसे सुरक्षित रखना है तो कोई सरदार अपने सिर को अपने हाथ से उडाकर लडने के लिए तैयार हो जाय, और इस पदवी को सार्थक करे। परन्तु भाई, आप जानते हैं कि मरना बडा विकट काम है, आसान नही। महाराज की बात को सुनते ही सबके कान खडे हो गये। कौन मौत का आलिगन करे। सब सरदारो ने अपने अपने सिर नीचे कर लिये। महाराज के प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए कोई भी सरदार खडा नही हुआ। महाराज ने दूसरी बार फिर पूछा—कौन तैयार है? सब लोग चुप क्यो हो? परन्तु किसी ने सिर ऊचा नही किया। अब तीसरी बार दरबार ने बडे जोर से पूछा कि क्या कोई तैयार है? परन्तु फिर भी किसी ने कोई उत्तर नही दिया और न सिर ही ऊचे उठाया। दरबार के सब सरदारो की यह चुप्पी देखकर महाराज ने कहा—अच्छा ठीक है, आज नही उत्तर दे रहे हो तो कल तैयारी करके आ जाना। दरबार बर्खास्त कर दिया गया और सब सरदार चले गये।

इधर जाति का मेडतिया चादावत कुड की सरदार का लडका सुम्मेरसिंह बूदी के सरदार की कुमारी को परण करके आया था। उस समय यह कायदा था कि जो सरदार शादी करके आता, वह पहिले आकर दरबार का मुजरा करता था। इसलिए उस सरदार सुमेरसिंह ने अपनी पत्नी से कहा कि मैं दरबार को मुजरा करके आता हूं। अत वह उसी वीद के वेष मे जोधपुर पहुंचे और रात भर लडकी की हवेली मे रहकर दूसरे दिन मुजरा करने के लिए दरबार मे पहुंचे। महाराज को बतलाया गया कि कुडकी का कुवर आया है। उसे ताजीम दे दी गई और वह कुर्सी पर बैठ गया। अब दरबार ने पुन कल की बात को दुहराया और कहा कि अब तो आप सब

सरदारो ने रात भर मे सोच ही लिया होगा ? अब इस 'कमधज' की पदवी को कायम रखने के लिए कौन तैयार है ? महाराज की यह बात सुनते ही दरबार मे फिर सन्नाटा छा गया। तब महाराज ने कहा—क्या सभी की शेखी निकल गई ? क्या हमारे दरबार मे अब कोई हिम्मत वाला नही है ? अब क्या इस पदवी को रखने के लिए मुझे ही सिर देना पडेगा ? जब आप लोगो मे से कोई भी तैयार नही है, तब इस पदवी की आन रखने के लिए मुझे तो सिर देना ही पडेगा। मैं अपने जीते जी इस पदवी को खत्म नही होने दूगा।

ज्योही महाराज के मुख से यह ललकार सुनी तो कुवर सुमेरसिंह से नही रहा गया। उसका खून खौल उठा। उसने खडे होकर पूछा—महाराज, क्या बात है ? उन्होने बताया कि कोई अपना सिर उडाकर लडने के लिए तैयार हो तो 'कमधज' की पदवी कायम रह सकती है अन्यथा नही यहा पर तो कोई तैयार नही दिखता है। सारा दरबार सिर लटका करके बैठा हुआ है। मालूम होता है कि कोई राठौड नही रहा है। जब राठौड ही खत्म हो गये तब राजपूतो का गौरव ही खत्म हो गया। वह मेडतिया चादावत इस बात को सुन सकता था ? कभी नही। वह तत्काल खडा हो गया और बोला—क्या यह ताबेदार आपकी चुनौती को स्वीकार कर सकता है ? यदि इस तुच्छ सेवक को आज्ञा हो तो मैं अपने सिर को उडा करके लडने के लिए तैयार हू। यह सुनते ही सब पूछने लगे कि यह कौन है ? उन्हे बताया गया कि यह कुडकी का राजकुमार है। महाराज ने उसकी वीरता और हिम्मत की सराहना की और कहा—नौजवान, तुम अभी शादी करके मुजरा करने के लिए आये हो। अभी तुम्हारे ओठो का दूध भी नही सूखा है। फिर तुमने इतने भारी काम को करने की हिम्मत कैसे कर ली ? तुम अपनी बात पर सोच-विचार कर लो। तब उसने उत्तर दिया कि—

सोचे सो क्षत्रिय नहीं, करे वखत पै काम।

महाराज, क्षत्रिय सोचता नही है, बल्कि वह कर गुजरता है। सोचने वाले तो महाजन लोग होते हैं। यदि क्षत्रिय सोचने बैठेगा तो फिर भूमि

का भार कौन उठायेगा ? इसलिए महाराज, आप मुझे सहर्ष दिल्ली ले चलिये। महाराज ने पुनः कहा - देखो कुवर, तुम्हारी अभी शादी हुई है। इसलिए मैं तुम्हे पन्द्रह दिन की मोहलत देता हू। पन्द्रह दिन के बाद तुम दिल्ली आ जाना। मैं तुम्हे वही पर मिलूगा।

कुवर सुमेरसिंह जोधपुर महाराज को मुजरा करके घोडे पर चढ़े और उसे दबकाकर सीधे कुडकी पहुचे। उनका हृदय वीर-रस से ओत-प्रोत हो रहा था। चेहरे पर दुगुनी खुशी थी। खुशी भी छिपाये नही छिपती है। खुशी मे देख उसके दाता ने पूछा—कुमार, आज चेहरे पर इतनी खुशी कैसे नजर आ रही है ? तब कुवर ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया और कहा—दाता, मैं 'कमधज' की पदवी को कायम रखने का प्रण स्वीकार करके आया हू। भरे दरबार मे सब सरदारो के सामने मैंने यह बीडा उठाया है। कहिये दाता, यह सुनकर आपको खुशी हुई, या नही ? इतनी सुनते ही दाता ने कुवर को छाती से लगा लिया और कहा शाबास मेरे कुल-दीपक, तूने मेरे कुल की शान रखली। तूने मेरे वश का नाम समुज्ज्वल कर दिया। ऐसा कहते हुए भी उनकी आखो मे पुत्र वियोग होने के आसू नही आये। प्रत्युत आनन्द से उनका सीना फूल गया।

कुवर पिता से शाबासी लेकर माता के पास पहुँचा। उन्हे भी अपनी प्रतिज्ञा की बात कह सुनाई। माता ने भी माथा चूमकर सिर पर हाथ फेरते हुए कहा - मेरे लाल, तूने मेरी कूख को धन्य कर दिया, मेरे धोले दूध को अपनी धवल कीर्ति से और भी उज्ज्वल कर दिया। मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है। तू अन्तिम क्षण तक अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहकर अपने माता-पिता के नाम को और वश को चिरकाल तक रोशन करता रहेगा।

अब कुमार अपनी नवपरिणीता पत्नी के पास गया, जिसके कि हाथो की मेहदी अभी तक सूखी भी नही थी, जिसके सुहागरात की यह सुहावनी वेला अभी आने भी नही पाई थी और जो अपने पति के दर्शन की अभिलाषा मे बैठी हुई पति के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। ज्यो ही कुमार ने उसके महल मे प्रवेश किया, त्यो ही कुवरानी ने कुवर के स्वागत के लिए पैर

वढाये और चरण-स्पर्श करके उन्हें आदर के साथ सुख-शैय्या पर वैठाया। कुछ प्रारभिक वातो के पश्चात उसने उत्सुकतापूर्वक पूछा—पतिदेव, आज आपके मुख-मण्डल पर यह अद्भुत रूपश्री कैसे दृष्टि गोचर हो रही है। इतना उल्लास तो मैंने परणते समय भी नही देखा था। तव कुमार ने वडे प्रेम से कहा—राजदुलारी, मैं राज-दरवार के सामने यह प्रतिज्ञा लेकर आया हू। मैंने महाराज की चुनौती को स्वीकार करते हुए यह वीडा उठाया है। कहो रानी, मेरी इस प्रतिज्ञा से तुम्हे खुशी हुई, या नही ? कु वरानी ने मुस्कराते और लजाते हुए कहा—धन्य है आपकी वीर-प्रतिज्ञा को। आपने राठौड वश का नाम उज्ज्वल कर दिया। सारे क्षत्रियवश की शान रख ली। आपने वहुत उत्तम कार्य किया है। अपनी पत्नी के ये वीरता भरे वचन सुनकर कुमार आनन्द से गदगद हो गया और हर्ष से उसका हाथ पकड कर दवाते हुए वोला मगर मुझे कुल पन्द्रह दिन की मुहलत मिली है। यह सुनकर कु वरानी ने कहा— नाथ, मुहलत तो कायरो के लिए होती है जिनके हृदय मे वीरता की सरिता प्रवाहित हो रही हो,उन्हे तो एक दिन की भी मुद्दत वर्दाश्त नही होती हैं। 'कमधज' की पदवी को कायम रखने के लिए आप सहर्ष अपनी प्रतिज्ञा को पूरी कीजिए और आपके आशीर्वाद से आपके पीछे मैं सती होने के लिए तैयार हू। भाइयो, भारत की वीरागनाए भी वीरो से कभी पीछे नही रही, वल्कि शूरवीरता मे आगे ही रही हैं।

ओ मारवाड के भोले चेलो, टेढी पगडी वाधने-वालो, क्या कही ऐसा वीर मिलेगा ? और उस मरुधरा के वीर को धर्मपत्नी भी कैसी वीरागना मिली ? जिसने कह दिया कि हम को मुद्दत की जरूरत नही है। दूसरे ही दिन कुमार के लिए घोडे की और कुंवरानी के लिए रथ की तैयारी हो गई। यथा समय माता-पिता को नमस्कार करके वे दोनो चलने के लिए उद्यत हुए। तव माता-पिता ने कहा मेरे लाडले वीर कु वर, हम भी तेरी वीरता को देखने के लिए साथ चल रहे हैं। तव कु वर ने कहा —मेरे पूज्य माता-पिताजी, आप कृपा करके यही विराजें। क्योकि उस समय यदि मेरा मन आप मे और आपका मन मुझ मे रह गया तो इस पुनीत कार्य मे विघ्न

उपस्थित हो जायगा ? इस प्रकार उन्होने माता-पिता को चलने से रोका और उन्हें पुन नमस्कार कर कु वर तो घोडे पर सवार हो गया और कु वरानी रथ मे जा बैठी । कुछ सैनिको के साथ वे दोनो रवाना हो गये ।

अथानन्तर कुछ दिनो मे मार्ग तय करके वे दोनो वीर और वीरागना ठीक समय पर दिल्ली पहुच गये । महाराज भीमसिंह भी तीन दिन पूर्व ही दिल्ली पहुच चुके थे । जाते ही दोनो ने महाराज को सादर नमस्कार किया । महाराज ने कहा—सुमेरसिंह, तुमको पन्द्रह दिन की मोहलत दी गई थी । फिर पहले ही क्यो आगये ? तव सुमेर सिंह ने कहा—महाराज, 'शुभस्य शीघ्रम्' अर्थात् अच्छे शुभ काम को करने मे विलम्व नही करना चाहिए । किन्तु शीघ्र ही उसे सम्पन्न करना चाहिए । महाराज ने प्रसन्न होते हुए कहा—तुम जैसे वीर सिंहो से मुझे यही आशा थी । तुमने मेरी ही नही, अपितु नव नोटि वाले इस मारवाड की शान रखली है ।

अव महाराज भीमसिंह उस नर-सिंह सुमेरसिंह को लेकर वादशाह के दरवार मे पहुंचे । तव वादशाह ने पूछा—जोधपुर दरवार, आप इतनी जल्दी तशरीफ कैसे ले आये । महाराज भीमसिंह ने कहा जहापनाह, आपने जो फर्माया था, उसकी तामील हो गई है । उस 'कमधज' की पदवी को कायम रखने के लिए यह नर-सिंह सुमेरसिंह मौजूद है । वादशाह ने कहा—आपको एक माह की मोहलत दी गई थी । फिर आप इतनी जल्दी कैसे ले आये ? महाराज ने कहा—जहाँपनाह, जो काम करना है, उसमे विलम्व क्यो ? और यह तो एक है । यदि आप कहे तो ऐसे पचास वीर भी खुशी-खुशी आ सकते हैं हुजूर, यह पदवी हमारे पूर्वजो ने ऐसे ही नही प्राप्त की है । इसके लिए अपना खून वहाया है, तव यह प्राप्त हुई है । वादशाह ने कहा—दरवार, आप इस दुध-मु हे वच्चे को क्यो ले आये ? अभी तो यह नोजवान है और इसकी तो अभी शादी ही हुई जान पडती है । फिर यह उसी पोशाक मे अपना शिर देने को आ गया । आप इस पर वडा जुल्म कर रहे हैं जो इस नादान वच्चे को मरने के लिए वाध्य कर रहे हैं ।

वादशाह के इन वचनो को सुनते ही सुमेरसिंह उठ खडा हुआ और कहने

लगा—जहापनाह, हमे मारने वाला कौन है ? मैं स्वय ही अपनी आन, वान और शान लिए मरने को हाजिर हुआ हू। तव वादशाह ने कहा—ओ शेर दिल, आज ही तुम्हारा इम्तिहान ले लिया जाय क्या ? सुमेरसिंह वोला—हा, आज ही ले लिया जाय। यह सुनते ही सारे दरवार मे सन्नाटा छा गया। सव लोग आपस मे काना फूसी करने लगे कि यह कैसा क्रूर-हृदय वादशाह है जो ऐसे वहादुर वच्चे को मरवाने के लिए तैयार हो रहा है ?

अव क्या था ? वादशाह की ओर से सारी तैयारी करा दी गई। मैदान मे तम्वू-रावटिए लगा दिये गये ? शमशीरो का पहरा लगवा दिया गया। सवके वीच मे उस कु वरानी का रथ जाकर खडा हो गया और उसके पास ही सुमेरसिंह हाथ मे तलवार लेकर जा खडा हो गया। यह दृश्य देखने के लिए दिल्ली नगर-निवासी उमड पडे। सव इस लोम-हर्षक दृश्य की चर्चा कर रहे थे।

निश्चित समय पर वादशाह सलामत वहा पहुचे और कहा—अरे सरदारो, जाओ और इस लडके का शिर धड से जुदा कर दो। सरदार लोग धीरे-धीरे एक-एक करके वहा पहुचे जहा पर कि सुमेरसिंह खडा था। उसने सिंह के समान गर्जना करके कहा—हे उपस्थित सरदारो, जव मेरा शिर उड जाय, उस समय आप लोग एक स्वर मे कह देना कि (वाह राजपूती ! वाह राजपूती, वाह राजपूती ! इस प्रकार तीन आवाजे मेरे कानो मे आनी चाहिए। वे सभी सरदार उस नर-सिंह के पास पहुँचे। तव सुमेरसिंह ने वीरता भरे शव्दो मे कहा— मेरा सिर उडा दो। इतना सुनते ही उन सरदारो के हाथो से तलवारें नीचे गिर गई। तव वे सरदार कहने लगे कि इस वीर को कैसे मारें, इस नौजवान को हम कैसे मारें। अरे पेट पापी, हमे भी कैसा नीच काम करना पड रहा है ? तलवारें हमारे हाथो छूट-छूट जा रही है, फिर भी हम इस नृशस कार्य को करने के लिए मजवूर किये जा रहे हैं।

लोगो की तलवारें नीचे गिरते देखकर सुमेरसिंह ने कहा—सरदारो, यह काम आप लोगो से नही होगा ! यह अव मुझे ही करना होगा। तव उसने 'जय भवानी' कहकर इतने जोर से तलवार अपनी गर्दन पर मारी कि

उसका सिर सात हाथ की दूरी पर जा गिरा। यह देखते ही सारे लोग पाषाण-मूर्ति के समान स्तम्भित रह गये! किसी के मुख से कोई शब्द नही निकल सका। वे लोग 'वाह राजपूती' यह शब्द भी तीन वार कहना भूल गये। उसके गले से खून की धारा चारो ओर वहने लगी। तव उसकी कुवरानी ने वडे जोर से कहा—'वाह राजपूती! वाह राजपूती!! वाह राजपूती!!! इतना सुनते ही वह धड दौडा और जोश मे आकर एक ओर से लोगो के ऊपर तलवार का प्रहार करना शुरु कर दिया और खडी फौज को गाजर-मूली के समान काटने लगा। यह देख वादशाह वोला—तो वाह! तो वाह!! तो वाह!!! अरे कोई आकर इसे रोको? नही तो मेरी सारी फौज मारी जायगी। तव वीर-पुजारी वोल उठे—कि ऐसा काम क्यो कराया यह किसी के रोके रुकता नही है, क्योकि इसमे अपार शक्ति आ जाती है।

वहा पर पास मे ही एक भाट खडा हुआ यह सव देख रहा था। उसने कहा—इसके ऊपर गुली का छीटा दे दो, तो यह धड नीचे पड जायगा। तव गुली का छीटा देते ही धड ज्यो ही नीचे गिरने को हुआ कि त्यो ही लोगो ने उसे अपने हाथो मे अधर झेल लिया। इसके पश्चात् शाही शान के साथ यमुना घाट पर उसे ले जाया गया। चन्दन की चिता वनाई गई। उसकी उस सती कुवरानी ने पति के सिर को गोद मे लिया और चिता पर जा वैठी। चारो ओर से अग्नि लगा दी गई और वह 'जय पति देव' कहती हुई उसमे भस्म हो गई। हजारो कण्ठो से एक साथ निकल पडा—'जय सुमेरसिंह, जय सती महारानी'!!

भाइयो, उस वीर ने यह कार्य क्यो किया? केवल अपनी जाति के गौरव की रक्षा के लिए किया। इसके सिवाय उसका और कोई उद्देश्य नही था। उसे किसी भी प्रकार की भौतिक सुख की कामना नही थी। पर जव उसने देखा कि सारे राजपूत ही दरवार मे चुप वैठे हैं और महाराज चारो ओर विस्फारित नेत्रो से देख रहे हैं कि क्या राठोडो मे अव कोई नहीं रहा ऐसा वीर, जो कि इस काम को करने का वीडा उठावे? तव उसने इस कार्य के करने का वीडा उठाया। भाई, वीर पुरुष ऐसे अवसरो पर अगल-वगल नही

झाकता है, किन्तु सिंह के समान तुरन्त सबसे आगे छलाग मारता है। सुमेर सिंह! तुम वास्तव मे अपने कर्तव्य के निर्वाह करने मे सुमेरु पर्वत के समान अचल सिंह की तरह निकले और तुम्हारी इस गुण-गाथा को जब तक ससार रहेगा, तब तक वीर-पुरुष गाते रहेंगे। उसी दिन ६० खा ७० उमराव थे सो ७० खा ७२ उमराव कहलाए।

कायर धर्म को नहीं पाल सकता

धर्म-प्रेमियो, तुम्हे धर्म की साधना करने मे कौन रोकता है ? दुनिया कहती है कि 'आटा गीला और मिया ढीला'। अर्थात् कोई कहने वाला मिल जाय तो कायर व्यक्ति कह देता है कि 'अच्छा साहब' मैं नही करूंगा। जिन्हे धर्म की लगन नही है, वे ही दूसरो के मना करने पर धारण किये हुए धर्म को छोडते है। किन्तु जो वीर बाका होते हैं वे किसी के कहने पर भी अपने धर्म को नही छोडते हैं और स्वीकृत व्रत-नियमादि को यथाविधि पालन करते हैं। घर के काम मे तो भौतिक स्वार्थ भरा हुआ है, उसे तो मन से, या विना मन से भी करना पडता है। परन्तु धर्म की तो अलूनी शिला है। इसके तो फल भविष्य मे मिलेंगे। आज दुनिया कहती है कि 'यहा मीठा तो आगे कुण दीठा।' अरे भाई, यहा मजा ले लो। आगे क्या होगा, क्या नही होगा, यह किसने देखा है। ऐसा कहने वाले और मानने वाले कायर पुरुष अपनी प्रतिज्ञा को नही पालन कर सकते हैं।

सेठ सुदर्शन ने अपनी ली हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण रूप से पालन किया। इसका परिणाम क्या हुआ कि सुदर्शन के उपदेश से अर्जुनमाली भी धर्मात्मा और प्रतिज्ञाशील वन गया। यद्यपि वह ११४१ मनुष्यो को मार चुका था, तथापि सुदर्शन सेठ के योग से ऐसे हत्यारे को भी तिरने का अवसर मिल गया। सुदर्शन सेठ की सत्सगति ने उसे धर्मात्मा वना दिया। कहा भी है--

लाखों पापी तिर गये सत्सग के प्रताप से,
लोहे ने सगति करी, पारस से कंचन हो गया
विघ्न विपदाएं सभी गुरु भक्ति से सव खोगया,

यदि पारस पाषाण से लोहे का स्पर्श हो जाय, तो वह सोना वन जाता

है। कितनी रसायने भी ऐसी हैं कि जिनके योग से भी लोहा सोना बन जाता है। जैसा कि कहा है—

कालायस हि कल्याण कल्पते रसयोगत ।

पारस रस आदि के योग से काला लोहा भी चमचमाता पीला सोना बन जाता है।

यदि आप लोग कहें कि हमने तो लोहे को सोना बनते हुए नही देखा है, तो कोई बात नही। इसे जाने दे। परन्तु आपने लटकी भवरी तो होती हुई देखी होगी। लट दो इन्द्रिय जीव हैं और भवरी चार इन्द्रिय जीव है। वह भवरी हरी लटको ले जाकर अपने मिट्टी के घोसले मे रखती है और उसके ऊपर भो-भो करती रहती हैं। कुछ दिनो के बाद वह लट भवरी के रूप मे बदल जाती हैं। यह भवरी के सत्सग का ही प्रताप है।

भाइयो, सत्सगति का भारी माहात्म्य है। आचार्य कहते है—

पाप लुम्पति धर्मशास्त्रचरणे धत्ते मतिं निश्चला,
वैराग्य च करोति रागविरतिं सर्वेन्द्रियाणां जयम् ।
शोक क्लेश भयादि दु ख विलयं ससार पार नयेत् ।
भ्रात स्त्व कुरु सततं सुखकर सग बुधै. सद्-व्रतैः ॥

सज्जनो का सत्सग पाप का लोप करता है, धर्म शास्त्र के आचरण मे उनके पठन-पाठन मे निश्चल बुद्धि करता है, राग-भाव से विरक्ति कराता है और वैराग्य भाव को पैदा करता है। सर्व इन्द्रियो के विषयो पर विजय प्राप्त कराता है। और शोक, क्लेश, भय आदि सर्व दु खो का विनाश करके ससार-सागर के पार ले जाता है। इसलिए हे भाई, तुम निरन्तर शाश्वत सुखकारी सग को सद्-व्रती ज्ञानीजनो के साथ अवश्य करो।

मेरे वीर बहादुर सरदारो, आपके सामने कोई काम आता है तो आप सोचते हैं कि यह काम कैसे करें। क्या आप लोग उस भवरी से भी कमजोर हैं ? नही हैं। आप वीरो की सन्तान है। इसलिए आप लोग अपना सीना मजबूत बनाओ, अपने खानदान की टेक रखो और जो काम सोचो तो उसे पूरा करके छोडो। हमारे कर्तव्य का हमे फल मिलेगा, या नही ? इस प्रकार

का सशय करने की आवश्यकता नही है। इस कर्म सिद्धान्त के अटल नियम के अनुसार भले कार्य का भला फल अवश्य ही मिलेगा। अतएव आप लोग धर्म-साधना के लिए तैयार हो जावें। ऐमा न हो कि यहा मेरे मामने तो कह दिया कि हा महाराज, तैयार हैं और पोल से वाहिर निकलते ही जोश ठडा पड जाय। यदि यहा से वाहिर निकलते ही जोश ठडा पड जाता है तो वह जोश नही है वह तो गैस है। जैसे ऍजिन रेल्वे स्टेशन से रवाना होते हुए घुआ छोडता है, वह अग्नि से वनी गैस के रूप मे है। उस गैस के समाप्त होते ही ऍजिन भी ठप्प हो जाता है। आप लोगो के पेट मे भी गैस की वीमारी हो जाती है, जिससे भोजन पचता नही है और खून भी नही वनता है। अत गैस को हटाओ और जोश को अपने हृदय मे भरो। गैस के हटने और जोश के आने पर सव काम यथाशीघ्र सम्पन्न होने लगेंगे। इसलिए धर्म पर आप लोग पूर्ण श्रद्धा करें। श्रद्धा भी अनुपम फल देती है। जैसा कि कहा है—

कीजे शक्ति-प्रमाण, शक्ति विना श्रद्धा करे।
दीपत श्रद्धावान्, अजर अमर पद भोगवै॥

आप लोग धर्म पर श्रद्धा रखेंगे तो एक दिन आप भी अजर अमर शिव पद के सुख भोगेंगे।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला ३
जोधपुर

●●

८ | समाचारी और संगठन

अरिहंत नमोक्कारो जीवं मोयइ भवसहस्साओ ।
भावेण कीरमाणो होइ पुणो बोहिलाभाए ॥

अन्तगड सूत्र का सातवा वर्ग आपके सामने अभी सुनाया गया है । अब प्रश्न यह है कि प्रतिवर्ष पर्युषणपर्व मे इसी सूत्र के सुनने और सुनाने का मुख्य लक्ष्य क्या है ? इसका उत्तर यह है कि जिस मार्ग पर चलकर उन महापुरुषो ने अपना आत्म-कल्याण किया, उसी पथ पर चलने का हम भी प्रयास कर आत्म-कल्याण करें ।

यह परम्परा सैकड़ो वर्षों से चली आरही है कि प्रतिवर्ष पर्युषण पर्व के दिनो में प्रात काल नियमित रूप से अन्तकृद्दशांग सूत्र, तथा मध्याह्न मे कल्पसूत्र सुनाने की परिपाटी है। कल्पसूत्र मे साधुओ की समाचारी है, उनके मुख्य-मुख्य आचरणो का वर्णन है । जो मुनि साधुता के आचरण मे सुदृढ है, वही अपने कर्मों का नाश करके अन्तिम सिद्धि को प्राप्त करता है । इसलिए ये वर्णन तो हमे निरन्तर हमको सुनाने के लिए ही हैं । तथा सुनाने मे हमें आनन्द भी आता है । अब कोई प्रश्न करे कि महाराज, प्रतिदिन क्यो सुनाना चाहिए ? इसके उत्तर मे मैं आपसे ही पूछ लू कि आप प्रतिदिन क्यो खाते हैं ? कभी-कभी ही खा लिया करें । आप कहेगे कि साहब, प्रतिदिन खाये

विना काम नही चल मकता है । वम, जैसे आपका काम प्रतिदिन खाये विना नही चल सकता, इसी प्रकार ये वातें सुनाये विना भी नही चल मकता ।

समय समय की राग

आत्मसिद्धि के लिए त्याग ही अमोघ साधन है और जिन-जिन महा-पुरुपो ने त्याग किया है, उनका ही नाम-निर्देश करके सुनाया जाता है। समय पर ही प्रत्येक वस्तु अच्छी लगती है। चैत्र के मास मे उसी प्रकार का गाना और फागुन मे फागुन का गाना अच्छा लगता है। विवाह के समय विवाह के रस-गीत और युद्ध के समय वीर गीत का गाना शोभता है। अब है तो विवाह, और गाना गाया जाय जन्म-समय का तो क्या अच्छा लगता है ? लडाई तो चेत गई, वीरो के सिर रुड रहे हैं, घमामान मार-काट मची है और खून की नदिया वह रही हैं और गाना गाया जाय "वाधव म्हारा आविया" तो क्या गाना शोभा देगा ? नही देगा, क्योकि वहा तो खून की होली खेली जा रही है। वहा पर तो भुजाओ को फडकाने वाले, प्रोत्साहन और जोश भरे गानो की आवश्यकता है कि वाह रे जवानो, वाह रे सेनानियो, वाहरे वहादुर योद्धाओ ! खूब दिल खोल कर लडना और शत्रु को परास्त करके विजय प्राप्त करना। पीछे पैर मत हटाना, देश की आन, वान और शान रखना, आदि इस प्रकार के वीर रस भरे गीत ही गाना शोभा देता है। भाई, समय-समय का गाना, समय-समय की वस्तु और समय-समय की वात अच्छी लगती है। सिर पर टोपी, पगडी और साफा शोभा देता है। पैरो मे जूते और वूट ही अच्छे लगते हैं। सर्दी मे शेरवानी, उनेवर कोट, मफलर और स्वेटर अच्छे लगते हैं, जवकि गर्मी मे वारीक धोती और मलमल का कुर्ता ही शोभता है। इसके अतिरिक्त जिस देश मे जैसी ऋतु और जैसा रिवाज खाने-पीने और पहिनने का हो उसके अनुकूल आचरण करने पर ही लाभ-दायक और शोभा-जनक प्रतीत होता है। तथा उससे विपरीत आचरण करना हानि-कारक एव अशोभनीय सिद्ध होता है। यदि सिर पर धारण करने की वस्तु पैरो मे और पैरो मे पहिनने की वस्तु सिर पर धारण की जायगी तो दुनिया हसेगी और आप का मजाक उडायेगी। तथा कहेगी

कि इस व्यक्ति को पहिनने-ओढने की भी तमीज नही है। इसलिए देश, काल को देखकर किया हुआ प्रत्येक कार्य आनन्द-दायक, लाभ-कारक और प्रशसा-त्मक होता है। समय-समय की राग भी अलग होती है, पोष माघ के महीने मे मेघ मल्हार नही गाई जाती और दिन की तेज धूप मे दीपक राग नही गाई जाती, उपयुक्त समय पर ही उपयुक्त राग अच्छी लगती है।

हा, तो ये वर्षा ऋतु के दिन दिल मे भी ठंडक और प्रकृति मे भी ठडक कर रहे है। और फिर इन्ही दिनो मे पर्युषण-पर्वाधिराज के—धर्म-ध्यान के दिन आ गये हैं। अतएव इन्हें देखकर प्रत्येक स्त्री और पुरुष का हृदय प्रमुदित और आह्लादित हुए विना नही रहता है। ये महान् त्याग और वैराग्य के दिन हैं। इन दिनो मे प्राकृतिक हरियाली के साथ-साथ दिलो मे भी हरियाली आजाती है। इन्ही दिनो मे आपके समक्ष त्यागी महापुरुपो के जीवन की झाकियो का अवलोकन कराया जाता है। इसलिए बरसात की झडी के साथ-साथ तपस्या की भी स्वभावत झडिया लग जाती हैं। अत. आप लोगो का कर्तव्य है कि निष्ठापूर्वक तन मन धन से त्याग करें और अपने भीतर हृदय मे निर्णय करें कि हम कहा तक पहुच पाये हैं? हम रास्ते पर प्रथम तो चले ही नही हैं और चल भी दिये तो कितनी मजिल पार की है और कितनी करनी वाकी है, इसका भी चिन्तन करना आवश्यक है। चिन्तन करके मन मे भली भाति जमाना और उस पर प्रगति करने के लिए अपना पराक्रम प्रकट करना चाहिए।

साधु कैसे?

भाइयो, भगवान ने जो दस वातें आपके लिए परम दुर्लभ वतलाई हैं, उनमे से करीव-करीव आठ वातें तो आपको प्राप्त हो गई है। यथा—१ मानवजन्म, २ आर्यक्षेत्र, ३ उत्तम कुल, ४ दीर्घ आयुष्य, ५ इन्द्रिय-परिपूर्णता और ६ निरोग शरीर ये छह वातें तो भव्य और अभव्य सभी जीवो को मिल जाती हैं। परन्तु दो वातें भव्य जीव को विशेष रूप से प्राप्त होती है—७ त्यागी पुरुपो का समागम और ८ शास्त्रो का श्रवण। अव आपको सत-

समागम भी मिल रहा है और भगवान की वाणी भी सुनने को मिल रही है। त्यागी महापरुष भी कैसे मिले ? कहा भी है—

एक-एक मुनिवर रसना-रा त्यागी, एक-एक ज्ञान-भंडार रे प्राणी।
एक-एक मुनिवर व्यावचिया वैरागी, ज्यांरा गुणों रो नहीं पार रे प्राणी।१०।
साधु जी ने वन्दना नित नित कीजे।

कोई मुनि तो तपस्वी हैं जो कढाव के समान तपस्या करके काले पड गये हैं। नाना प्रकार का तपश्चरण कर जिन्होने अपने शरीर को काला और कृश वना लिया है। देखो-जव कढाव अग्नि पर चढकर काला पडता है, तभी उसमे नाना प्रकार के व्यजन पकवान और मिष्ठान्न वनते हैं। इसी प्रकार से उन्होंने तपस्या की आग मे शरीर को सुखा दिया रक्त और मास की भी परवाह नही की और भारी कर्मों के भेदन करने के लिए सलग्न हो रहे हैं। कोई मुनिराज ज्ञान मे, ध्यान मे और स्वाध्याय मे निरत हैं। भाइयो, सारी समाज की जोखम और उत्तरदायित्व ज्ञानी मुनि के कन्धो पर ही होती है। समाज की सारी वागडोर उनके ही हाथो मे रहती है। कोई मुनि वैयावृत्त्य मे ही लीन हैं। यो तो मुनियों का मार्ग एक है, परन्तु सवकी लहरें और प्रवृत्तिया भिन्न-भिन्न हैं। जिसकी जैसी रुचि है, वे वैसा कार्य कर रहे हैं।

साधु कैसे होते हैं ? सुनिये—

साधु वैठ्या सावधान, घर में न राखे पाव धान।
लाये जैसो देवे चुकाय, वासी रहे न कोई कुत्ता खाय ।।१।।
साधु होकर साधे काया, कोडी एक न राखे माया।
लेना एक न देना दोय, ऐसा पथ सुध साधु का होय ।।२।।

साधुजन अपने शरीर को साधते हैं, इससे उनकी आत्मा निर्मल होती है। वे अपने पास एक कोडी भी नही रखते हैं, उन्हें माया की आवश्यकता ही नही है। वे कनक और कामिनी के त्यागी होते हैं जो कि ससार मे दोनो ही विकट घाटिया है और जिनका पार करना कठिन होता हैं। वे विहार करते हुए सूने मकान मे, वृक्ष नीचे, तालाव की पाल पर, महल मे और झोपडी मे भी ठहर जाते हैं। इन स्थानो मे ठहरते हुए उनके मन मे कोई राग या द्वेष

का विचार नही होता है कि ये साताकारी स्थान है, या असाताकारी ! प० भूधरदास जी साधुओ की स्तुति करते हुए कहते हैं—

जे कांच-कचन सम गिनहि, अरि-मित्र एक सरूप।
निन्दा-बडाई सारिखी, वनखड-शहर अनूप ॥
सुख-दु ख, जीवन-मरण मे, नहि खुशी, नहि दिलगीर।
ते साधु मेरे उर वसहु, मम हरहु पातक पीर ॥

भाई, साधु तो सदा सभी बातो मे—इष्ट-अनिष्ट के सयोग मे, सुख-दुख में और जीवन-मरण मे—सम भावी ही होते हैं। ऐसा तो आज हमारे जैसे कहते हैं कि यह स्थान साताकारी नही है, ये तो केवल भावना की बातें हैं। परन्तु साधुता मे निरत हैं, वे तो सभी में मस्त रहते हैं। उन्हें जब जैसा जहा पर स्थान ठहरने को मिल जाता है, वहा पर अलिप्त भाव से 'पंछी रैन वसेरा' के माफिक निवास करते हुए अपने पथ पर चलते रहते हैं।

दो खरी बातें

आजकल जहा पर साधु ठहरते हैं, उस स्थान को 'स्थानक' कहते हैं। फिर वे चाहे गृहस्थ के मकान मे ही क्यों न ठहरे हो ? परन्तु लोग यही कहते हैं कि स्थानक मे चलो, अमुक सन्त आये हुए हैं, उनका वन्दन और व्याख्यान-श्रवण स्थान मे जाकर करेंगे। अब कोई कहे कि साधुओ को स्थानक कल्पे नही। तो भाइयो, उन्ही महात्माओ से पूछ लो कि महाराज, स्थानक किसे कहते हैं ? अरे भाई, साधु स्थानक मे नही उतरेंगे तो क्या पाताल मे उतरेंगे ? अथवा आकाश मे अधर लटकेंगे ? अब कोई कहे कि जो स्थानक साधुओं के लिए बने हैं, उनमे साधुओ को उतरना नही कल्पे। तो भाई ठीक हैं और ऐसा कहने वालो के लिए लाख-लाख वार धन्यवाद है। अरे कोई व्यक्ति साधुओ के लिए और उनके नाम से मकान बनवाता है क्या ? नही बन वाता है। ये स्थानक तो श्रावक-श्राविकाओं के धर्म ध्यान के लिए ही बनवाये जाते हैं। जब साधु-सन्त पधारते हैं,तब वे ठहरने के पहिले,आज्ञा मांगते हैं। जब गृहस्थ की आज्ञा मिल जाती है और वह कहता है महाराज आइये पधारिये। तब वे उस स्थान पर ठहर जाते हैं। और यदि आज्ञा नही

मिलती है तो वे वापिस चले जाते हैं। इसीप्रकार ठहर कर जब यहा से जाते हैं, तब भी वे वापिस सभलाते हैं। अब आप लोग बतलावें कि साधु के भाव मिले हुए कैसे हैं? और यदि ऐसे ठन के साधु जी हो, तो मैं पूछता हूं कि ये पात्र किसके लिए बनाये जाते हैं? क्यो भाई, क्या कभी आपने अपने घर मे इन पात्रो मे दही जमाया, पानी रखा या कभी खाया है? आपकी ओर से इन सभी प्रश्नो का नकारात्मक ही उत्तर मिलेगा। इसके अतिरिक्त आप इन पात्रो को खरीदते है तो किसके लिए खरीदते हैं? स्पष्ट बात है कि साधुओ के लिए ही खरीदते हैं। जब आप खरीदने के लिए दुकान पर जाते है, तब वह पूछता है कि आपको कैसे पात्र चाहिए? क्या मन्दिर-मार्गियो के लिए चाहिए, या बाईस सम्प्रदाय वालों के लिए? देशी पात्र चाहिए या परदेशी पात्र चाहिए? जैसे कपडो का व्यापारी अपने ग्राहक से कपडो के नाम डिजाइन आदि पूछता है, उसी प्रकार वह भी आपसे पूछता है। अब आप जिस प्रकार के पात्र चाहते हैं, वैसे ही जोड के पात्र उससे आप खरीद लेते हैं। और ये पात्र खरीद कर क्यो लाते हैं? शुद्ध हृदय से आपको यही कहना पडेगा कि साधुओ के लिए ही लाते हैं। हा, यदि आप निरवद्य पात्र चाहते हैं, तब तो कुम्हार के यहा ठीकरे पडे हैं, उन्हे ले आइये। पर उनके लिए आप और साधु लोग भी कहेगे कि वे अच्छे नही लगते है। इनको रखने मे हमे लाज आती है। यदि कुम्हार के यहा के ठीकरे अच्छे नही लगते हैं तो काष्ठ-पात्र मे टटा (दोष) लगे विना नही रहता है। हा, आहार मे टटा नही लगता है, यह निर्दोष मिल सकता है। परन्तु पानी के विषय मे विचार करें तो इसमे टटा लगे विना रहता है क्या? जैसे—साधु विहार करते हुए किसी गाव मे पहुचते-पहुँचते दस-बारह तो बज ही जाते हैं। तब वे सबसे पहिले धोवन लाने के लिए आप लोगो के घरो मे जाते हैं। सब जगह सभी लोग विवेकशील नही होते हैं, दो-एक घर ही विवेकवान् होते हैं। उनके यहा पर भले ही निर्दोष जल मिल जाय। अन्यथा घटे-दो घटे पीछे पुन जाते हैं और पात्र भरकर ले आते हैं। अब कहिये, एक घटे पहिले तो पानी निर्दोष नही था और अब दो घटे बाद इतना धोवन कहा से आ गया? बस,

इतने मे ही समझ लीजिए। भाई, धणी का नाम लुगाई (पत्नी) और लुगाई का नाम धणी भलीभाति जानता है। यद्यपि खोज करने पर निर्दोष पानी मिल सकता है, तथापि अधिकतर टटा लगे बिना नही रहता है। तथा पात्र मे भी टटा लगे विना नही रहता है। यदि आप लोग कहे कि साहब, हमने तो साधुओ के लिए पात्रो के जोड नही खरीदे है, किन्तु दीक्षा के लिए खरीदे हैं। अच्छा भाई, दीक्षार्थी के लिए ही सही, पर उसे तो केवल तीन ही पात्र चाहिए ? अब बाकी की जोड का क्या करोगे ? अरे, चाहे कान इस ओर से पकडो और चाहे उस ओर से पकडो। परन्तु बात तो एक ही है। भाई, जिस बात मे दोप लगता है तो उसमे दोप तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। इस प्रकार पात्र और पानी मे दोप लगे बिना नही रह सकता।

अब रही मकान की बात ? सो साधु जिस किसी गृहस्थ के मकान मे उतरे और गृहस्थ जहा पर ठहराना चाहता है, वह भी पहिले से ही खाली और साफ किया हुआ नही मिलेगा। जब गृहस्थ को ज्ञात होता है कि यहा सन्त पधार रहे हैं और हमारे घर पर ठहरेंगे, तब वह जहा पर ठहराना होता है, वहा पर सैकडो मन धान या मिर्ची आदि से भरी हुई बोरिया पडी हुई थी, उन्हे अलग रखवाता है, उसे झडवाता, लिपाता, पुताता और धुलवाता है। यह सब आरम्भ-समारम्भ यदि साधु के लिए नही हुआ—तो बताओ किसके लिए हुआ ? कही-कही पर यदि श्रावको के यहा निजी घर मे साधु-सन्तो के ठहराने के योग्य स्थान नही होता है, तो दूसरो के मकान आदि को किराये पर लेकर ठहराया जाता है। बताओ यह किराया किसके लिए दिया गया ? कहना पडेगा कि साधुओ के ठहराने के निमित्त से ही दिया गया। भाई, आगम सिद्धान्त का पाठ तो यह है कि साधु को ऐसे स्थान पर ठहरना नही कल्पता है। साधु को ग्यारह दोप टालकर ही मकान मे ठहरना चाहिए। परन्तु टलना कठिन हैं। यदि यथार्थ मे कोई साधु ठहरने के सर्व दोपो को टालना चाहे, तब उसके लिए तो सर्वथा निर्दोप स्थान मसान-भूमि पर बनी छतरिया हैं, जहा पर साधु निरवद्य रूप से ठहर सकते हैं। भाइयो बताओ, कितने साधु वहा पर ठहरने वाले हैं ? परन्तु गुड खाना और गुल-

गुलो से परहेज करना, यह वात नही हो सकती। श्री मन्नालाल जी महाराज से जव पाली मे चौमासा करने के लिए आग्रह किया गया, तव उन्होंने कहा कि चौमासे भर मे पांच सौ पौषध होना चाहिए। यदि आप लोगो को यह वात स्वीकार हो तो हा भरो। अन्यथा मैं यहां चातुर्मास नही कर सकता। जव श्रावको का विचार कम देखा तो साफ कह दिया कि मैं शहर मे चौमासा नही करूगा। तव उन्होंने श्री राम-नानक रामजी की छतरी मे ही शहर से वाहिर चौमासा किया। और चातुर्मास-पर्यन्त अशन, खादिम और सादिम का त्याग कर चार मास की तपस्या की।

भाइयो, जो साधु निर्मल आचार के पालने वाले होते हैं, वे क्या गृहस्थो का सहारा लेते हैं? नही लेते। यह तो एक ज्ञानशाला है। जैसे कहीं पाठशाला है और कोई आकर पूछे कि क्या काम हो रहा है? तो पाठशाला का नाम लेने से ही ज्ञात हो जाता है कि यहां पर पढाई होती है। फिर पूछने की क्या वात रह जाती है? परन्तु स्थानक के नाम की वात यो नही हुई। वात-वात मे अन्तर है। जव शिष्य गुरु से अलग हो गया और उसे ठहरने के लिए मकान हाथ नहीं आया, तव उसने क्रोधित होकर कह दिया कि स्थानक मे नहीं उतरना। जैसे यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'जव लोमडी के हाथ अगूर नही लगे तव उसने कह दिया कि '(दी ग्रेप्स आर शावर) अगूर खट्टे हैं।' भाई, प्रत्येक स्थान का परिचय उसके नाम से ही मिल जाता है। जैसे—'उपासरा'—यतियों के उतरने-ठहरने का स्थान, 'राम-द्वारा' महन्त या राम-सनेही साधुओं के ठहरने का स्थान, 'मठ' गुसाइयो के ठहरने का स्थान, 'तकिया' साईवावा का स्थान, और 'गुरुद्वारा' सिक्खो के गुरुओ के ठहरने का स्थान। इसी प्रकार स्थानक है, जिसमे साधु ठहरते हैं। साधुओ के ठहरने के स्थान को स्थानक कहते हैं। सतीदासजी की हवेली नवावास मे है। उसमे सत्तर वर्ष तक साधु-सन्त ठहरे। इसलिए वह भी स्थानक कहलाता है। परन्तु वात इतनी सी है कि 'स्थानक' इस नाम से क्यों लाज आती है? जवकि आपकी समाज का नाम स्थानकवासी है। आज हम देख रहे हैं कि कुछ लोगों ने स्थानकवासी पना छोड़कर 'साधुमार्गी' नाम रख

लिया। परन्तु यह नाम ठीक नही है। जैसे 'मन्दिरमार्गी यह नाम तो उपयुक्त है, क्योकि उन लोगो का मन्दिर का मार्ग है। परन्तु 'साधुमार्गी-तो साधु का मार्ग कैसा है ? हा, श्रमणोपासक कह सकते हैं,या पौषधशालावाले कह सकते हैं। परन्तु नाम भी नये नये ढग के रख रहे हैं। अस्तु, रखते रहो, कौन रोकता है। परन्तु असली तत्त्व को मत छिपाओ।

आप लोग आज कल जैसे व्यापार मे दो प्रकार की वहिए रखते हैं। यदि कोई इन्स्पेक्टर जाच के लिए आ जाता है तव यदि आपकी दो नम्बर की वही पकडी जाती है, तो आपका मु ह उतरेगा या नही ? इसी प्रकार स्थानक, श्रमणोपासक आदि शब्द हैं और आज इन शब्दो मे भी काला वाजार हो रहा है। हा तो जहा पर साधु-सन्त आकर ठहरें, निवास करें और जहा पर साधु-श्रावक आदि अपना अपना धर्म साधन करें, ऐसे स्थान को स्थानक कहते हैं। अर्थात् आत्म-साधन के जहा पर काम हो, वह स्थानक कहलाता है।

सगठन

सज्जनो, आज सगठन का युग है। कहा गया है कि **'संघे शक्तिः कलौ युगे'** अर्थात् इस कलियुग मे एक व्यक्ति के भीतर किसी महान् कार्य को कर सकने की सामर्थ्य नही है। आज के इस कलिकाल मे तो सघ मे—अनेक व्यक्तियों के समुदाय में ही शक्ति होती है। जिस जाति और समाज मे सगठन रहेगा, वही आज के ससार में जीवित रह सकती है। इसलिए आज तो आप लोग एक ही नारा याद कर लेवें कि 'एक रीति एक आवाज।' इस नारे मे कितनी शक्ति है ? देखो—इसी वाईस सम्प्रदाय मे से श्रीभीखम जी अलग हुए, तो उन्होने अपने सम्प्रदाय का नाम तेरापथी रखा। उनके अनुयायियो की एक प्रकार की मु हपत्ती, एक प्रकार का ओघा और जल-पात्र भी एक ही प्रकार का है। उनकी समाचारी भी जैसी उनके पूज्य महाराज की है, वही की वही है। भाई, इसे कहते हैं—'एक रीति और एक आवाज की ताकत।' आज उनके यहा एक आचार्य के नेतृत्व मे एक ही अनुशासन के बल पर कार्य हो रहा है। जवकि हम इधर दृष्टिपात करते हैं तो आप

इतने लोग सामायिक किये हुए यहा पर बैठे हैं, परन्तु एक सरीखी मुहपत्ती नजर नही आरही है। आप मन्दिरमार्गी समाज मे जायेंगे तो सबके हाथ मे एक सरीखी मुहपत्ती दिखाई देगी। किन्तु आपकी समाज के भीतर न्यारे-न्यारे सम्प्रदाय और न्यारे-न्यारे कहने वाले हैं। तेरापन्थियो मे आचार्य की ओर से जो आदेश निकलता है, उसका उनके समस्त अनुयायी पालन करते हैं। जबकि आपके श्रमण-सघ के प्रधानाचार्य की ओर से कोई आदेश निकलता है तो वह आपके होठो तक ही सीमित रह जाता है। किन्तु उसका पूर्णतया पालन नही होता है। इसका एक मात्र कारण यह है कि आपकी समाचारी एक नही, और आवाज भी एक नही है। अत. आपको और हमे ऐसे पवित्र दिनो मे सोचना-विचारना है कि समाज की स्थिति कैसे दृढ हो सकती है? इसके लिए आप लोगो को दो बातें करनी हैं—एक तो समाज की जड मजबूत करो और दूसरी आत्मा की उन्नति करो। इनके अतिरिक्त आप लोग अन्य प्रपचो मे क्यो पडते हैं? अरे, जैसा भी जहा पर स्थान मिल गया, उसमे ठहर गये और धर्म का प्रचार करते रहे।

यदि किसी स्थान पर यहा के स्थानक मे श्रावक-श्राविका समुदाय को स्थान की कमी पडती है तो इस विषय मे साधु तो यही कहेगा कि तुम तुम्हारी जानो। और जो लोग यह कहते हैं कि इस कार्य मे प्रेरणा नही देनी चाहिए, तो मैं भी कहूगा कि यह बिल्कुल ठीक कहना है। साधु को आरम्भ-समारम्भ के कार्य मे प्रेरणा नही देनी चाहिए। परन्तु एक बात मे आपसे पूछू कि आपके पास मे कोई वैरागी है और उसे दीक्षा देनी है, तो क्या प्रेरणा नहीं दी जाती है? और यह प्रेरणा नही है क्या? दीक्षा मे भी फिर क्या क्या काम होते हैं, यह भी आप लोगो से छिपा हुआ नही है। भाई, जो जो शादी के समय बीदराजा के रीति-रिवाज हैं, वे सब दीक्षार्थी के होते हैं। बस, भेद केवल इतना ही है कि बीदराजा तो विवाहित होने के लिए लडकी वाले के तोरण द्वार पर जाता है और यह दीक्षार्थी बींद साधु-चरणो के पास दीक्षा लेने को जाता है। और जब धूम-धाम होती है, तब बिना प्रेरणा के ही प्रेरणा मिल जाती है। वे लोग अपने अलग अलग बैंक कायम किये हुए

हैं और अखवार निकाल रहे हैं। परन्तु भाई, यह तो वताइये कि क्या विना प्रेरणा के आप लोग देने वाले हैं ?

वहिनें अपने पुत्र की शादी के समय वत्तीसी लेकर अपने भाई के यहा जाती हैं और गीत गाती हैं, तव भाई मायरा लेकर आता है। वे क्या गाती हैं, सुनिये—

आया म्हारा जामण-जाया वीर, चूंदड़ लाया रेशमी जी,
मापूं तो वार पचास, तोलूं तो तोला तीस ही जी।
मेलूं तो थाल भराय, ओढ़ूं तो हीरा झड़ पड़े जी ॥

कहिये, ये गीत गाती हैं, या नही ? मेलो तो थाल भराय, और 'थाल तो हीरा भरियो।' परन्तु कही जुयें नही पड जायें ? और क्या गाती है कि 'काला वादल वरसो' जव वे वहिनें इतना वधावा देती हैं, तव कही आप लोग थैली खोलते हैं। परन्तु आप लोग भी वहुत होशियार हैं। ऐसे ही चलते-फिरते चालीस-पचास हजार नही खर्च कर देते हो ? कोई किसी के वाप का कमाया हुआ नही है। वडी कठिनाई से कमाया है। भाई, यह धन ग्यारहवा प्राण है। अत यो ही कोई खर्च नही कर डालता है। आज आप लोग साधुओ की प्रेरणा के विना एक कदम भी आगे नही वढाते है। सगठन सवसे पहले वलिदान चाहता है, किसी व्यक्ति का नही, किन्तु अपने स्वार्थों का, अपनी ममता और गुरु परम्परा के मोह का।

सगठन वलिदान चाहता है

आज आप लोग अवश्य कहते हैं कि सगठन करो, सगठन करो। परन्तु भाई, सच वात तो यह है कि साधुओ के हृदय जव निर्मल होवे, तव ही सगठन सभव है। अभी तो यह हाल है कि श्रावको के कान मे फूक मारे कुछ, और ऊपर से सुनाते है कुछ और ? भाई, हाथी के दात दिखाने के और होते हैं। जव साधुओ मे भी ऐसे कार्य हो रहे हैं, तव मुक्ति भी दूर जा रही है। आज साधु वही का वही है, उनका त्याग भी वही है और क्रिया भी वही की वही है। सव वातें वही हैं। परन्तु ममता का भूत जवर्दस्त पीछे लगा हुआ है और इसी कारण सगठन नही होने पाता है।

अभी तेरहपन्थियो के पास जाइये, तो कहते हैं कि 'तेरापन्थ' अर्थात् तेरा ही पन्थ है। मन्दिरमार्गियों के पास जाइये तो वे कहते हैं कि ये स्थानकवासी मुह पत्ती वाले पीछे हुए हैं। हम तो सबसे पहिले के हैं। और मुक्ति की कुजी तो हमारे ही पास है। भाई, सब अपनी-अपनी तान रहे हैं और कह रहे हैं कि हम ही सच्चे साधु हैं, हमको ही नमस्कार करो। परन्तु नवकार मत्र मे अन्तिम—पाचवा पद है—'**णमोलोए सव्वसाहूण**' अर्थात् लोक मे—इस समस्त विश्व मे जितने भी साधु हैं, उन सबको मेरा नमस्कार है। वहा न तो मन्दिरमार्गी, न दिगम्वर मुनि, न तेरहपन्थी और न स्थानक वासी सन्त को नमस्कार करने के लिए कहा गया है। किन्तु सर्व साधुओ को नमस्कार किया गया है। और फिर यह नवकार मत्र दस-वीस हजार वर्ष पहिले का नही है, परन्तु अनादिकाल से चला आया मत्र है। और जव यह अनादि है तव हम भी अनादि हैं। और यदि नवकार मत्र वनावटी है तो हम भी वनावटी हैं। फिर मन्दिरमार्गी या दिगम्वर कैसे कहते हैं कि मुक्ति की कुंजी तो हमारे ही पास है। और स्थानकवासी या तेरा पन्थी भी यह दावा कैसे कर सकते हैं कि मुक्ति की कुजी हमारे ही पास है? परन्तु भद्रवाहु स्वामी ने तो स्पष्ट रूप से कह दिया है कि—

'चाद देखा तुम चालणी जैसा, तीसरे सुपना के माई,
अलग-अलग समाचारी होयगी, वात फर्क कछु दर्शाई।
अलग होयगा सयमवन्ता, होगा बहुत कालिमा धारी,
सब अपनी-अपनी गावें, मारग सच्चा कौन वतावे॥

आप जिस-जिस दुकान पर जायेंगे, सब अपनी जमाते हैं। परन्तु सही वात का प्रचार नही करते हैं।

आनन्दघन जी महाराज सवत् सोलहसौ मे हो गये हैं। वे सोलहवें शान्ति नाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं—

गच्छना भेद वहु नयन निहालता तत्त्वनी वात करता न लाजे।
उदर-भरनादि निज काज कर्ता थका, मोह नडिया कलिकल राजे
धार तरवारनी सोह लीजे।

आनन्दघन जी तत्त्व की बात करते हुए कह रहे हैं कि गच्छों के भेद जो देख रहे हैं तो गच्छ के भीतर पडे हुए वाद लड रहे हैं। और तोडने की बात करते हुए उन्हें शर्म नही आ रही है। ये तो धर्म-पाल नही, किन्तु पिंड-पाल हैं और अपना पेट भरने के लिए ये न्यारे-न्यारे बाडे कायम कर रहे हैं। जैसे छोटे-छोटे बच्चे खेलते हुए बोलते हैं—

म्हारी म्हारी छालियां ने दही दूध पावू ।
नाहरियो आवे तो सोटारी धमकावूं ॥

भाई, आज तो इन बच्चो जैसी सबने वाडा-बन्दी कर रखी है और इसी से समाज का अध पतन हुआ है और होता जा रहा है। समाज उन्नति के शिखर पर पहुचने के बजाय अवनति के गर्त मे गिरता जा रहा है। मैं तो आप लोगो से यही कहता हूँ और भगवान से यही प्रार्थना करता हू कि सबको सद्-बुद्धि प्राप्त हो। भगवान् महावीर की पच्चीससौवी निर्वाण-जयन्ती निकट भविष्य मे आ रही है। उस महान् अवसर पर सारे गच्छो और सम्प्रदायो की इस वाडा वन्दी को समाप्त करके एक झडे के नीचे आप लोग आ जायें और एक महासघ कायम करें।

वाल की दीवाल हटाए

अग्रिम वर्ष मे होने वाली जन-गणना मे समस्त भारतवासी जैन लोग धर्म के खाने मे अपने नाम के आगे केवल 'जैन' ही लिखावें। आज इसका जो आन्दोलन हो रहा है, उसका लक्ष्य यही है कि सबकी भावना एक हो जाय और सब भगवान् महावीर के एक झंडे के नीचे आ जायें। यदि ऐसा उत्तम काम हो गया, तो फिर भगवान का शासन देदीप्यमान होने मे कोई कोर-कसर नही रहेगी। इस अवसर का हम सभी को लाभ उठाना चाहिए। पहिले जो यह जैन समाज एक विशाल हॉल के रूप मे सुशोभित हो रहा था, वह समय के पलटा खाने के साथ आज अग्रवाल, ओसवाल, पोरवाल, जैसवाल, पल्लीवाल, खंडेलवाल आदि के रूप मे अनेक छोटे-छोटे कोठो के रूप मे विभक्त हो गया। अब आपका और हमारा यह परम कर्तव्य है कि इस अवसर पर जो ये 'वाल-वाल' की दीवालें हैं उन्हे हटाकर पुन एक विशाल हाल

पूर्व के समान ही बना दें। बस कहना हमारे हाथ मे है और करना आपके हाथ की बात है। परन्तु भाइयो, याद रखना, एक दिन यह करना अवश्य पड़ेगा। अब आगे वह जमाना आने वाला है, जबकि 'बाबा वाक्य सत्य' जो हमारे बाबा ने कहा—वही सत्य है, यह कहावत नही चलने वाली है। इसलिए मेरा तो आप लोगो से बार-बार यही अनुरोध और आग्रह है कि आप लोग एक सगठन मे आवें। इसी से आपका नाम इतिहास मे अमर हो जायेगा। संसार भी याद करेगा कि एक जैन समाज था, जिसने कि ऐसा सुन्दर काम करके दिखाया। जो बात लाभ की हो, उसे ग्रहण करना हमारा परम कर्त्तव्य है। यहा पर तो भगवान की वाणी सुनाई जाती है। इस भगवद् वाणी की दुकान मे नाना प्रकार का उत्तमोत्तम माल भरा हुआ है। आप यहा से अपने मन-पसन्द की वस्तु खरीद सकते हैं। किसी कवि ने कहा है—

अरे, तुम माल खरीदो, त्रिशलानन्दन की खुली दुकान रे।

भाई, यह महावीर स्वामी की दुकान है और माल भी इसमे अनुपम भरा है। यहा की वस्तु लेने मे नुकसान का काम नही है। बस, केवल माल खरीदने वालो की आवश्यकता है। इस महावीर की दुकान का माल मुनिराज रूपी मुनियो को सँभलाया हुआ है। क्योंकि इसके भगवान रूपी मालिक तो बहुत दूरी पर हैं। सारा काम उन्होंने मुनीमो को सभलाया हुआ है। यदि मुनीम होशियार और चतुर होंगे तो सेठ का नाम चमका देगे, एव पेढी को अच्छी मजबूत बना देंगे। यदि मुनीम लोग गफलत मे रह गये और सावधानी नही बरती तो पेढी को समाप्त होते देर नहीं लगेगी।

सुयोग्य मुनीम

देखो—दीवान बहादुर लोढाजी की और चादमल घनश्यामदास की भी भागलपुर मे दुकान थी। एक समय सेठ जी की दुकान पर कोई मेहमान आये तो मुनीम सा० देवकरण जी मूथा साग खरीदने के लिए सब्जी मडी मे गये। उस दिन बाजार मे एक ही दुकान पर एक ही तोरू आई हुई थी। चूंकि मौसम का नया साग था, अतः उसे ही लेने का विचार हो गया। इसी समय लोढा जी के मुनीम सा० भी साग खरीदने के लिए पहुँचे। उस

तोरू को देखकर उनका भी मन उसे लेने का हो गया। एक मुनीम कहता है कि माली, यह तोरू मैं लूगा और दूसरा मुनीम कहता है कि नही, यह तोरू मैं लूगा। इस तनातनी पर यह निर्णय हुआ कि जो वढ़े सो पावे। वोली लगने लगी और कहा गया कि आज तो चादमल जी के चौके मे ही इस तोरू का साग वनेगा। वोली वढते-वढते तीन हजार तक पहुची। यह देख माली सोचने लगा—हे भगवान्, आज तेरी मुझ पर वडी मिहरवानी हो रही है, आज तो मेरा सारा दारिद्र ही दूर हो जायगा। अव एक ओर से इकतीस सौ कहे गये तो दूसरी ओर से वत्तीस सौ। तभी एक ने एकदम पांच सौ वढा कर सैंतीस सौ कहे। तव मारवाड के सेठ के मुनीम ने कहा—मेरे सेठ के पास चालीस लाख की पूजी है, उसे मैं इस पर लगा दूगा, परन्तु तोरू को नही छोडूगा। फिर आपकी आप देख लेना। इस प्रकार वह तोरू सैंतीस सौ तेरह रुपये मे देवकरण जी मूथा ने ले ली। वे उस तोरू को लेकर दुकान पर आये और इन रुपयो को उन्होने अपने नाम मोड दिये। और उसका साग उनके रसोडे मे ही वना। जव इस वात की सूचना लोढा जी के पास पहुची तो वे जल गये। सोचने लगे कि इस मुनीम ने तो मेरी शान ही धूल मे मिला दी। समाचार पाकर चादमल जी और लोढाजी भागलपुर पहुचे। तव लोढा जो ने अपने मुनीम को फटकारा और कहा कि तुमने तो मेरी पेढी की वात ही गवा दी। तुम इस पेढी पर रखने के योग्य नहीं हो। यह कहकर उन्होंने उसे दुकान से निकाल दिया। चादमल जी ने दुकान पर जव रोकड वही सभाली तो देखा कि मुनीम जी ने ३३१३) रुपये अपने नाम लिख दिये हैं, तो मुनीम जी से पूछा कि ये रुपये आपने कैसे उठाये ? तव मुनीम जी ने कहा—सेठ सा० एक आवश्यक कार्य-वश ये रुपये मैंने उठाये हैं। सेठ ने जव काम का नाम आग्रहपूर्वक पूछा तव उन्होने सारी वात साफ-साफ वता दी। सेठ वोले—यह वताओ कि वह तोरू तुमने अपने रसोडे के लिए खरीदी, अथवा मेरे रसोडे के लिए खरीदी ? तव मुनीम ने कहा—खरीदी तो आपके रसोडे के लिए ही। तब सेठ ने प्रसन्न होकर वह रकम उनके नाम से निकलवा करके खर्च खाते मे

डलवादी और तेरह हजार रुपया और भी उन्हे इनाम मे दिया।

भाइयो, यह दुकान तो फिर त्रिलोकीनाथ भगवान महावीर स्वामी की है और हम सन्त लोग उनके मुनीम के रूप मे कार्य कर रहे हैं। मुनीम कैसा होना चाहिए ? सुनो—

श्री रघुपति जयमल जी जेडा जो मुनीम बन जावे रे,
तो जिनशासन री जग सोभा विन हद पावे रे।
सच्ची मान लो। ओ सांची मान लो,
मारग मुनियो, खाडारी धार है।।

ऐसे मुनीम धर्मदास जी, धर्मसिंह जी, लवजी ऋषि, भूधर जी, जयमल जी, रघुनाथ जी अमरसिंह जी, नानकराम जी, स्वामीदास जी, नेतराम जी, दौलतराम जी, मूलचन्द जी जैसे थे तो उन्होंने इस पीढी का नाम उज्ज्वल किया है और स्वय का भी यश बढ़ाया है। चूंकि वे त्यागी, धर्मानुरागी और प्रामाणिक पुरुष थे, तभी उन्होने इस पेढी की शान रखी है। अरे सथारा तो किसने किया था ? और जब वह कायरता ले आया और भाग गया, तो महापुरुष उसके स्थान पर सथारा करके बैठ गये। सभी उनके लिए कहा गया कि तुम्हारी मा को लाख-लाख और कोटि-कोटि धन्यवाद है। और पूज्य रघुनाथ जी ने सयम पाला, तो छह मासी तप एक, चार मासी तप एक, और पन्द्रह दिन का तप एक किया। बीच-बीच मे फुटकर तपस्याए साठ वर्ष तक की। वादियो के साथ शास्त्रार्थ करना और उन्हें पराजित करना यह उनके जीवन का लक्ष्य रहा। पूज्य जयमल जी ने बावन वर्ष तक आडा आसन नही किया। सभी आज उनका नाम लेकर कितने ही सन्त कहते हैं कि हम भी आडा आसन नही करेंगे। अरे भाई, तुम कितने दिन ऐसा कर सकते हो ? क्या तुम उनकी होड़ कर सकते हो ? अरे, उन्होंने छह महीने की परणी हुई पत्नी का त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके हृदय मे कैसा परम गाढ वैराग्य समा गया था। वे आजीवन अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नही हुए और एकान्तर करने वाले थे। पूज्य अमरसिंह जी महाराज जोधपुर पधारे और भूत की हवेली मे ठहरे। परन्तु

पैर पीछे नहीं रखे तो पटवे और नागौरी उनके चेले बन गये। भाई, जब गुरु भी जोरदार थे, तब उनके श्रावक भी जोरदार हुए। जयमल जी, रघुनाथ जी और कुशलोजी ने जो प्रचार किया है, वह जग-विख्यात है। उन्ही महापुरुषो के आप सब अनुयायी हैं। आजकल के लोग कहते हैं कि 'मेरे गुरु मेरे गुरु' भाइयो, मेरा-मेरा कहकर आपस में भेद-भाव की दीवालें क्यो खडी कर रहे हो? होना तो यह चाहिए कि जो भी व्यक्ति आकर के 'मत्थएण वदामि' कहे, तो समझना चाहिए कि यह स्थानकवासी है।

आज संगठन का युग

भाइयो, आज खार वढाने और द्वेपभाव पैदा करने का समय नही है। परन्तु प्रेम सगठन करने का युग है। यदि सब लोग सगठन मे रहे, तो आपका समाज और धर्म चिरकाल तक कायम रह सकेगा। अन्यथा आपका नामोनिशान मिटते भी देर नही लगेगी। इसलिए समय रहते अभी चेत जाइये और एक सघ मे आ जाइये। यदि आप सब एक सघ के झडे के नीचे आकर खडे हो गये, और खूब तन तोड कर और मन जोड कर कार्य किया तो भगवान महावीर के शासन को चमकाने मे देर नही लगेगी।

श्रमण सघ का विधान बहुत जबर्दस्त और उदार है। उसमे पक्षपात को लेशमात्र भी स्थान नही है। जो सत सघ से बाहिर हैं, वे भी पूज्यनीय है। उनसे हमारा कोई द्वेपभाव नही है। यदि कोई कहे कि श्रमण सघ के सन्तो के सिवाय दूसरो का चौमासा नही कराना चाहिए। तो मैं इसके विरुद्ध हू। जो भी गुणवान् और क्रियावान् सन्त आ जावें, आदर-पूर्वक चौमासा कराना चाहिए। आप लोगो मे पहिले परस्पर मे वात्सल्यभाव होना चाहिए, सबको एक झडे के नीचे आना चाहिए और आपके सम्पर्क मे आने वाले सन्तो के कानो मे यह कहना चाहिए कि महाराज, यदि अपन लोग एक सघ मे शामिल नही होंगे और अलग-अलग रहेंगे तो धर्म के विद्रोही कहलावेंगे। समाज मे जो नये-नये मुनिराज है तो उनमे से किसी

मे कोई त्याग का गुण है तो किसी मे ज्ञान का गुण विशेप है। इसलिए हमारा लक्ष्य तो उनके गुण ग्रहण की ओर रहना चाहिये। यदि इस रूप मे आपने चलने का प्रयत्न किया तो आपका भगवान महावीर की पच्चीस सौवी निर्वाण जयन्ती मनाना सफल हो सकेगा।

पर्युपण पर्व के इन दिनो मे ही नही, अपितु सदा ही हमे अपनी सद्-भावना ही रखना चाहिए। क्योकि यह भावना ही भव-नाशिनी कही गई है। कहा है—

> ससाराम्बुतारका सुखकरा मुक्त्य गना धात्रिकां,
> स्वर्गद्वार विवेशमार्गकुशला पापारिनाशंकराम्।
> सद्धर्मामृतवापिका सुविमलां रत्नत्रयोत्पादिका,
> भ्रातस्त्वं कुरु भावना प्रतिदिन श्रीधर्मकल्पद्रुमाम्॥

मनुष्य की उत्तम भावना ससार समुद्र से तारने वाली है, सर्व सुखो को करने वाली है, मुक्तिरूपी रमा की धात्री है, स्वर्ग के द्वार मे प्रवेश करने के लिए मार्ग वताने मे कुशल है, पाप रूपी शत्रुओ का नाश करने वाली है, उत्तम धर्म रूप अमृत की वावडी है, अति निर्मल है, रत्नत्रय की उत्पादक है और श्री धर्म की प्राप्ति के लिए कल्पवृक्ष के समान सर्व मनोरथो को पूर्ण करने वाली है। इसलिए हे भाई! तुम ऐसी पवित्र भावना को प्रतिदिन करो। तभी तुम लोगो का जीवन सफल होगा।

वि० स० २०२७ भादवा सुदि ३
जोधपुर

●●

१ | आदर्श क्षमापना

सज्जनो, कल्पसूत्र मे पाच तीर्थंकरो के पाच कल्याणको का विस्तार से वर्णन किया गया है। इनमे से भगवान् महावीर के पाच कल्याणको के सम्बन्ध मे, भगवान पार्श्वनाथ और भगवान आदिनाथ के भी पाच कल्याणकों का वर्णन आपने मुनि रूपचन्द जी के मुख से सुन लिया है।

अब आपके सामने भगवान नेमिनाथ के पाच कल्याणको के सम्बन्ध मे सुनाया जायगा। तदनन्तर समाचारी, पट्टावली और आलोचना के विषय मे प्रकाश डाला जायगा। आज के दिन यही सब कुछ सुनाने का क्रम है। जब तक आपके बैठे रहने की स्थिरता होगी और हमारा भी कठ साथ देता रहेगा, तब तक हम सुनाते रहेंगे। यदि आप सब भाई-बहिन शान्त रहेंगे, तब तो आप तक हमारी आवाज पहुच सकेगी। अन्यथा शोर-गुल होने पर अथवा आप लोगो में चल-विचलता आने पर आपको सुनना और हमको सुनाना कठिन हो जायगा। क्योकि हम लाउडस्पीकर (ध्वनि-वर्धक-यत्र) पर बोलने को तैयार नही हैं।

हा, तो आज पर्युषण पर्वाधिराज का अन्तिम दिन अर्थात् सावत्सरिक क्षमापना दिवस है। यह दिन मनुष्य को बडे ही सौभाग्य से बडी पुण्यवानी से प्राप्त होता है। आज चौरासी लक्ष जीवयोनियो से क्षमा (माफी)

मागनी है। परन्तु केवल 'खमाऊ मा०, खमाऊ मा'' ही नही करके रह जाना है। बल्कि जिस-जिस व्यक्ति के साथ वर्ष भर मे आपकी लडाई हुई हो, झगडा हो गया हो, गाली-गलोज या मन-मुटाव हो गया और बोलना छूट गया हो तो उसके पास खासतौर मे जाकर और शुद्ध हृदय से तहेदिल से क्षमा मागनी चाहिए। आप उसको क्षमा करें और वह आपको क्षमा करे। यदि इस प्रकार से क्षमा नही मागते हैं, तब तो केवल चेले के **'मिच्छा मि दुक्कड** बोलने जैसी ही बात चरितार्थ होगी। इस कथा पर भी आप लोग जरा ध्यान देवें तब ठीक रहेगा।

एक कुम्हार ने अपने मिट्टी के बर्तन सुखाने के लिए चौकी पर रख दिये थे। उधर ही एक गुरु अपने शिष्य के साथ आये और उस चबूतरी पर छाया मे बैठ गये। उस समय शिष्य के मन मे कुछ चचलता आ गई। उसने एक चिवोरिया (ककरी) लेकर घडे पर मार दी। निशाना घडे पर लगा और उसमे छेद हो गया। यह देखकर कुम्हार ने सीधेपन से कहा—चेला जी, यह क्या किया? तब चेले ने कहा—**'मिच्छा मि दुक्कडं'** मैं अपने दुष्कृत अपराध की क्षमा मागता हू। कुम्हार सुनकर चला गया। पुन थोडी देर के पश्चात् उस चेले ने दूसरी ककरी उठाई और दूसरे घडे पर मार दी। इस प्रकार उसने कई घडे फोड दिये। परन्तु भाई, सहनशीलता की भी कोई सीमा होती है। जब बात सहनशीलता के बाहिर हो जाती है तब मनुष्य प्रतीकार करने की भावना करता है। कुम्हार अभी तक तो अपने इस नुकसान को किसी प्रकार सहन करता रहा। परन्तु जब उसने देखा कि चेला जी महाराज तो मेरी सरलता और सुजनता का अनुचित लाभ उठा रहे हैं, तब उसने सोचा कि अब इन्हे शिक्षा देना आवश्यक है, अत वह कुम्हार भी एक छोटी सी ककरी लेकर उन के पास गया और चेला जी के कान की लोल मे ककरी लगाकर जोर से मसलना प्रारम्भ किया। तब चेला जी चिल्लाकर बोले—अरे, यह क्या कर रहे हो? तब कुम्हार ने भी कह दिया—**मिच्छा मि दुक्कडं'** यह सुनते ही चेला जी की अक्ल ठिकाने आ गई।

भाइयो, क्या आप लोगो को भी अपने अपराध इस चेला जी के समान क्षमाना है ? नही क्षमाना है। किन्तु तहेदिल से शुद्ध हृदय से—आत्म-विशुद्धि की दृष्टि से क्षमा-याचना करनी है। और जैसे उदायन राजा ने चण्डप्रद्योत राजा से क्षमा-याचना की, उसी प्रकार का आदर्श सामने रखना है।

चमत्कारी गुटिका

धर्म-बन्धुओ, उदायन राजा भगवान महावीर के ससार पक्ष के मासाजी थे। वे अपनी पद्मावती रानी के साथ आनन्द मे रह रहे थे। सोलह मुकुट-बद्ध राजा उनके सामने नत मस्तक रहते थे। इस प्रकार वह अपने राज्य का भली-भाति सरक्षण और पालन कर रहा था। एक वार जिनदास नामका एक श्रावक विदेश से माल लेकर के उस नगर मे आया और दुकान जमाकर व्यापार करने लगा। व्यापार अच्छा चला और इसने बहुत सा धनोपार्जन किया। जहा पर सेठ की दुकान थी, उसी के सामने महारानी जी के महल मे विराजने के कमरे का झरोखा था। सेठ वडा धर्मात्मा था। नियमित रूप मे त्रिकाल सामायिक करना और प्रतिमास छह पौपध करने के नियम वाला था। महारानी उसकी नित्य-नैमित्तिक धार्मिक क्रियाओ को देखकर उसके ऊपर बहुत प्रसन्न थी। कदाचित् पाप कर्म के उदय से सेठ के दस्तो की बीमारी हो गई। कुछ दिन तक तो उसने जिस किसी प्रकार से अपना काम चलाया। परन्तु जब पेचिस का अधिक प्रकोप हुआ तो वह मल-शुद्धि को करने में असमर्थ हो गया। सेठ को इस प्रकार मल-लिप्त पडे हुए देखकर महारानी के हृदय मे बहुत दया आई। उन्होने अपनी कुबडी दासी को बुला कर कहा—दासी, यह जिनदास सेठ बीमारी से अतिपीडित हो रहा है। अत: क्या तू उसकी सेवा कर सकती है ? यदि तू करने मे असमर्थ हो तो मैं जाकर उसकी सेवा करू ? भाइयो, इसे कहते हैं धर्मानुराग। तब दासी बोली - महारानी जी, मैं सेवा के लिए तैयार हू।

तदनन्तर दासी सेठ के पास गई और तन-मन से उसने सेठ की सेवा-सुश्रूषा की। वह प्रतिदिन सेठ का मल साफ करती, दवा लाकर देती और

पथ्य आहार-पान आदि की सर्व प्रकार से सावधानी रखने लगी। इस प्रकार उसकी परिचर्या से सेठ एक मास मे पूर्ण स्वस्थ हो गया। प्रसन्न होकर सेठ ने उससे कहा—बाई,तू मेरी धर्म की बहिन है। तूने मेरी सेवा-सुश्रूषा करके मुझे जीवन-दान दिया है। मैं तेरे इस उपकार को कभी नही भूल सकता हू। तब उस दासी ने कहा—वीरा, मैंने तो कुछ भी नही किया। महारानी जी की आज्ञा से मैंने आपकी यह तुच्छ सेवा की है। सेठ ने कहा—यह ठीक है कि महारानी जी ने मुझ पर कृपा करके तुझे भेजा है, तो भी तूने तन-मन से रात-दिन मेरी सेवा की है। मैं तेरी सेवा से तुझ पर बहुत प्रसन्न हू। अत इसके उपलक्ष्य मे मैं तुझे एक लाख रुपये इनाम देता हूँ। यह कहकर उसे एक लाख रुपये दिये और साथ मे दो करामाती गोलिया दी। दासी ने पूछा—सेठ सा०, इन गोलियो का मैं क्या करूंगी? तब सेठ ने कहा—ये बडी चमत्कारी गोलिया हैं। इनमे से एक गोली के निगलते ही तू सुन्दर नवयुवती के रूप मे परिणत हो जायगी। और दूसरी गोली को हाथ मे लेकर कहेगी कि मुझे अमुक पति चाहिए तो वही व्यक्ति तेरे सामने आ जायगा। और वह तेरे रूप पर मोहित हो जायगा।

दासी उन रुपयो और गोलियो को लेकर अपने स्थान पर गई। रुपयो को सुरक्षित रखा और पानी के साथ एक गोली निगल गई। गोली निगलते ही वह षोडश वर्षीय सुन्दर नवयुवती के रूप मे परिणत हो गई। अब वह नये वस्त्राभूषण धारण करके रिम-झिम करती हुई आई। महारानी उसे पहिचान नहीं सकी। क्योंकि उसके पहिलेवाले शरीर के ढाचे मे एकदम परिवर्तन हो गया था। अत वे उसे विस्फारित नेत्रो से देखते हुए विचारने लगी कि यह कौन है? तब उस दासी ने कहा—महारानी जी, क्या आपने मुझे पहिचाना नही है? मैं तो आपकी आज्ञाकारिणी वही कुबडी दासी हू। महारानी ने उससे पूछा—अरे, तेरे शरीर मे यह परिवर्तन सहसा कैसे हो गया? तब दासी ने कहा—यह सब सेठजी की कृपा का फल है। उन्होंने मेरी सेवा से प्रसन्न होकर मुझे दो गोलिया दी। उनमे से एक गोली के खाते ही मेरे रूप मे यह परिवर्तन हो गया है। उसके इस रूप की चर्चा सारे राजमहल मे फैल

गई और धीरे-धीरे सारे नगर और देश मे भी उसके इस सुन्दर रूप की प्रशसा होने लगी।

सेठ की दी हुई दूसरी गोली भी उसके पास थी। एक दिन उसने विचार किया कि उज्जैन का राजा चण्डप्रद्योत अति रूपवान है, नौजवान है और हमारे उदायन राजा का साढू भाई है। यदि उसके साथ मेरी शादी हो जाय तो बहुत उत्तम हो। ऐसा विचार कर रात्रि के समय उसने गोली को हाथ मे लेकर उक्त कामना को शब्दो के द्वारा उच्चारण किया। उसके उच्चारण करते ही गोली के प्रभाव से चण्डप्रद्योत राजा उसके पास आ गया और दोनो परस्पर मिलकर अति प्रसन्न हुए। चण्डप्रद्योत ने उसे अपने साथ चलने के लिए कहा और वह तत्काल तैयार हो गई। तब चण्डप्रद्योत ने उदायन राजा के अनिल वेग नामक हाथी पर खड़े होकर खिड़की के मार्ग से उसे नीचे उतारा और उसी पर बैठाकर उसे अपने साथ उज्जैन ले गया। प्रात काल जब दासी के लापता होने की खबर राजा के पास पहुँची और यह भी सूचना मिली कि अनिल वेग हाथी भी गजशाला से गायब है, तब वह बहुत विस्मित हुआ और बोला कि उस गज-रत्न के चले जाने से तो मेरे ५७ हजार हाथी ही निर्मद हो गये हैं। राजा ने जब सारे मामले की छानबीन कराई तब ज्ञात हुआ कि चण्डप्रद्योत राजा रात्रि मे यहा आया था औररात्रि में ही हाथी और दासी को लेकर वापिस चला गया है।

राजा उदायन विचारने लगा कि आज तो यह हाथी और दासी को उडा ले गया है, तब किसी दिन यह मेरी रानी को और न जाने किस-किस वस्तु को उडाकर ले जाते हुए भी नहीं हिचकिचायेगा ? अत उसने सेनापति को सारी सेना के साथ उज्जैन पर चढाई करने का आदेश दे दिया। नगर के समीप पहुँचने पर उदायन ने चण्डप्रद्योत के पास दूत भेजकर सन्देश भेजा कि या तो भलमनसाहत से हाथी और दासी को मेरे पास लाकर मुझे सौप दो। अथवा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। दूत ने चण्डप्रद्योत के पास जाकर अपने राजा का सन्देश कह सुनाया। उसने दोनो को देने से इनकार कर दिया और वह भी युद्ध के लिए तैयार होकर रणक्षेत्र मे सामने जा पहुचा।

दोनो ओर से घमासान युद्ध हुआ। दोनो ओर के हजारो मनुष्य और हाथी-घोडे मारे गये। अन्त मे चण्डप्रद्योत हार गया। उदायन उसे बन्दी बनाकर और दासी को लेकर विजय का डका बजाता हुआ अपने देश को चला। रास्ते मे चलते-चलते पर्युषण पर्व का समय आ गया।

उदायन राजा पक्का श्रावक था। उसने सोचा कि श्रावण मास मे मैंने खून की नदिया बहाई हैं। अब सयोग से ये धर्मध्यान के दिन आ गये है तो धर्म ध्यान भी करना चाहिए? अत. मार्ग मे कोई उपयुक्त स्थान देखकर उसने वही पर दस दिन के लिए पडाव डाल दिया। पर्व के दिनो मे वह स्वय धर्म ध्यान मे लग गया और साथ मे जो मत्री आदि विचारशील पुरुष थे, वे भी धर्म-साधन मे सलग्न हो गये। इस प्रकार धर्म की आराधना करते हुए सावत्सरिक प्रतिक्रमण और क्षमापना का दिन आ गया। उस दिन सवेरे ही रसोइये को बुलाकर राजा उदायन ने कहा—आज मेरे उपवास है। अत चण्डप्रद्योत से पूछकर जो वे खाने के लिए कहे वह बनाकर उन्हे जिमा देना।

रसोइया राजा चण्डप्रद्योत के पास गया और पूछा—महाराज, आज आपके लिए क्या भोजन बनाऊ? तब उसने पूछा—उदायन महाराज कहा है? उसने कहा—आज उनके पौपधोपवास है। वे आज कुछ भी नही जीमेगे। यह सुनकर चण्डप्रद्योत बोला—हा, सब समझ गया हू। स्वय उपवास रखकर और मुझे विष-मिश्रित भोजन करा करके वे मुझे मार डालना चाहते है। अत उन्होने रसोइये से कहा—आज मेरे भी उपवास है। मैं भी आज कुछ नही खाऊगा।

सायकाल के समय उदायन महाराज ने सावत्सरिक प्रतिक्रमण किया। तत्पश्चात् उच्चस्वर से यह गाथा बोलते हुए ससार के समस्त जीवो से उन्होंने क्षमा-याचना की—

खामेमि सव्वजीवाण सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेर मज्झ ण केण वि॥

अर्थात्—मैं ससार के समस्त जीवो को क्षमा करता हू—जिन्होने कि

ज्ञात और अज्ञात दशा मे मेरा कुछ भी अपराध किया है। तथा ज्ञात और अज्ञात दशा मे मेरे से जिनका कुछ भी विगडा हुआ हो, कुछ भी जिनको मेरे निमित्त से दुख पहुचा हो, अथवा किसी भी प्रकार का नुकसान हुआ हो, वे सव जीव मुझे क्षमा करें। मैं उनसे क्षमा-याचना करता हू। मेरा सर्व जीवो पर मैत्री-भाव है। मेरा किसी के साथ वैर-भाव नही है।

तत्पश्चात् उन्होने सोचा कि अभी पिछले ही दिनो मे मैंने सवसे अधिक दुख चण्डप्रद्योत को पहुँचाया है और उनके सैन्यवल का सफाया किया है। अत सर्वप्रथम उनके पास चलकर क्षमा-याचना करनी चाहिए। यह विचार कर वे उनके पास पहुचे और कहने लगे—मैं आपसे अपने अपराधो की क्षमा-याचना करता हू। तव चण्डप्रद्योत उनके ये वचन सुनकर कुछ उत्तेजित होता हुआ वोला—धूल है तुम्हारी ऐसी क्षमा-याचना को। अरे, तुमने अगणित जीवो को मारकर खून की नदिया वहाई और मुझे वन्धन में वाध रखा है। फिर भी मुझसे कहते हो कि मैं क्षमा-याचना करता हू। तव उदायन ने अति विनम्र होकर कहा—वन्धु, तुम जैसे कहो, उस प्रकार से मैं क्षमा-याचना करने को तैयार हू। क्योकि मैं आगे के लिए किसी भी प्रकार का वैर-विरोध नही रखना चाहता हू।

उदायन के ऐसे नम्रता-भरे और अन्त करण मे निकले क्षमा-याचना के शब्दो को सुनकर चण्डप्रद्योत ने कहा—महाराज, यदि आप सचमुच मे क्षमा-याचना कर रहे हैं, तो सवसे पहिले मुझे अपने समान स्वतत्र कीजिए, मेरा राज्य और राजमुकुट मुझे वापिस दीजिए और उस दासी को वापिस दीजिए। इसके पश्चात् मैं आपको क्षमा करने के लिए तैयार हू, अन्यथ नही। यह सुनकर उदायन ने कहा—मैं आपका राज्य वापिस देने को तैयार हू और राजमुकुट भी दे सकता हू, आपको स्वतत्र भी करता हू दासी को कैसे दे सकता हूं। क्योकि उसी के कारण तो इतना खून वहाय है और फिर उसे ही तुम्हे वापिस दे दू, यह कैसे सभव है? यह सुनक चण्डप्रद्योत ने कहा तव मैं क्षमा नही कर सकता। तव उदायन ने कहा—इस समय तो मैं उसे नही दूगा। किन्तु राजधानी पहुचकर किसी अन्

रूप मे उसे देने का मैं वायदा करता हूँ। यह कहकर उदायन ने उनको तत्काल बन्धन से मुक्त किया, उनका राजमुकुट उनके मस्तक पर रखा और उनका राज्य उन्हें वापिस करने की घोषणा की। तत्पश्चात् उनको अपने हृदय से लगाकर क्षमा-याचना की और चण्डप्रद्योत ने भी उन्हे क्षमा किया। दोनो ने आनन्दित होकर परस्पर खमत-खामणा की।

तत्पश्चात् उन्हे अपने साथ हाथी पर बैठा कर उदायन अपनी राजधानी ले गया। वहा पहुच कर उसने अपनी लडकी की शादी चण्डप्रद्योत के साथ कर दी और दायजे मे अपार धन सम्पत्ति के साथ उस दासी को भी उन्हें दे दिया। कहने का साराश यह है कि लोक-व्यवहार मे दिखावटी खमत-खामणा तो सभी करते हैं। परन्तु जो शुद्ध हृदय से क्षमा-याचना करे, और उदायन राजा के समान वैर-भाव को निर्मूल कर दे, उसे ही सच्ची खमत-खामणा कह सकते हैं। उदायन राजा का यह आदर्श उदाहरण आपके सामने मौजूद है। आशा करता हूँ कि आज के दिन आप लोग इसी प्रकार करेंगे।

वि० स० २०२७ भाद्रपदशुक्ला ४
जोधपुर

●●

१० | पथ और पथिक

यात्रा का लक्ष्य

सज्जनो, एक व्यक्ति ने मकान के जीने से ऊपर की ओर चढना प्रारम्भ किया। वह पहिली मजिल पर चढ गया और पुन वहा से नीचे उतरआया। दूसरी वार फिर उतरा। इसी प्रकार उसके चढने और उतरने का क्रम सारे दिन भर चालू रहा। अब आप उससे पूछिये—अरे भले आदमी, तू सारे दिन भर चलता रहा। पर यह वता कि तूने कितने कोस की यात्रा पूरी की है ? वह तो क्या उत्तर देगा ? पर एक वालक भी तुरन्त कह देगा कि इसने तो एक फलाँग की भी यात्रा नही की है। इसका चलना तो व्यर्थ रहा है और इसने अपनी शक्ति का दुरुपयोग ही किया जो कि पागल के समान यह दिन भर चढता और उतरता रहा है। भाई, उसने दिन भर तो चलने का परिश्रम किया, पसीना वहाया। पर नतीजा कुछ भी नही निकला ? तो ऐसे परिश्रम से क्या लाभ हुआ ?

इसी प्रकार एक व्यक्ति दिन भर यद्वा-तद्वा वोलता रहा, लोगों के साथ इधर-उधर की गप-शप मारता रहा, और व्यर्थ की वकवास करता रहा। जैसे स्विच दवा देने पर मशीन खड़-खड़ करती हुई चलती रहती है, उसी प्रकार वह भी अपनी वाणी का निरर्थक व्यय करता रहा। उसे स्वय को यह

भी पता नही है कि मैं क्या कह रहा हू, किस काम के लिए, अथवा किस उद्देश्य से बोल रहा हू जब तक कोई उद्देश्य कोई लक्ष्य उसके मस्तिष्क मे निश्चित नही होगा, तब तक उसका बोलना भी बेकार ही रहेगा।

एक तीसरा व्यक्ति अपने घर से निकला और नाक की सीध मे सीधी सडक पर चलना शुरू कर दिया। वह दिन भर बिना कुछ भी खाये-पीये चलता ही जा रहा है, दिन भर चलते रहने से वह थक कर चूर-चूर हो गया है, मगर फिर भी रुकने का नाम भी नही ले रहा है। उसका कोई लक्ष्य नही कि कहा जाना है और कब तक जाना है, इसका भी उसे कोई पता नही है। परन्तु चलते रहने का ही लक्ष्य बना लिया है। अथवा मील-दो मील सीधा जाता है और फिर लौट आता है। इस प्रकार दिन चलता रहता है। तब बताइये कि ऐसा उद्देश्यविहीन चलना क्या अर्थ रखता है? कुछ भी नही।

भाइयो, जैसे पहिले व्यक्ति का दिन भर चढना-उतरना, दूसरे व्यक्ति का दिन भर व्यर्थ बोलना और तीसरे व्यक्ति का निरुद्देश्य चलते रहना अथवा आना-जाना कोई अर्थ नही रखता है। इसी प्रकार यह जीव इस भव चक्र मे और चारो गतियो की चौरासी लाख योनियो मे लक्ष्य-विहीन होकर निरन्तर परिभ्रमण करता हुआ अनादिकाल से चलता ही आ रहा है। परन्तु इसने आज तक कभी भी यह विचार नही किया कि मैं क्यो यह परिभ्रमण कर रहा हूँ? न कभी इसने इस भव-भ्रमण से विमुक्त होने के लिए—छुटकारा पाने के लिए ही कभी प्रयत्न किया है? इस अज्ञानी जीव को उसके इस भव-भ्रमण के जाल से विमुक्त करने के लिए और उसे शाश्वत स्थिर सुख प्राप्त कराने के लिए ही यह भगवद् प्रवचन और जैन आगम प्रेरणा दे रहे हैं। वे कह रहे हैं कि 'रे जीव, बुज्झ-बुज्झ अरे, अब तो प्रतिबोध को प्राप्त कर। तूने इन अधेरी गलियो मे भटकते हुए कितना काल बिता दिया है? अभी तक भी तुझे होश नही आया है और यह विचार पैदा नही हुआ कि आखिर मैं यह भव-भ्रमण क्यो कर रहा हू? इस मनुष्य पर्याय मे क्यो आया हू और मुझे इसे पाकर अब क्या करना है? इस प्रकार मैं अब भी लक्ष्य

निश्चय करके और आत्मोत्थान के कार्य मे सलग्न हो जाऊ ? आज तक मोह रूपी मदिरा पीकर और अपना होश-हवास खोकर व्यर्थ ही इधर-उधर भटकता आ रहा हू। इस प्रकार का विचार जिनके हृदय मे उत्पन्न होता है और जब वे भगवद्—वाणी सुनते हैं कि—

> एवं अणाइकाले पचपयारे भमेइ ससारे।
> णाणा दुक्खणिहाणे जीवो मिच्छत्तदोसेण ॥१॥
> इय ससार जाणिय मोह सव्वायरेण चइऊण।
> त झायह ससरूव ससरण जेण णासेइ ॥२॥

इस नाना दु खो के निधान (भडार) रूप इस द्रव्य क्षेत्र, काल, भव और भाव वाले ससार मे यह जीव मिथ्यात्व के दोप से भ्रमण कर रहा है। ऐसा ससार का स्वरूप जान करके हे आत्मन्, अब तू समस्त उपायो से मोह को त्याग कर अपने उस शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय आत्म स्वरूप का ध्यान कर, जिससे ससार के परिभ्रमण का नाश होवे।

इस प्रकार के सिद्धान्त के हित कारक वचन कानो मे पडते ही सुलभ बोधि जीव जिन्हे ससार—सागर को पार करने की उत्कण्ठा है—उत्सुकता है—वे तो अवश्य ही जिन-वचनो के अनुसार आचरण करने लगते हैं। अब चाहे वे कितने ही काल के पश्चात् भव-सागर को पार करें परन्तु पार करने के मार्ग पर अग्रसर हो जाते हैं। किन्तु जिनको ससार-सागर पार करना ही नहीं है और यही पर चक्कर लगाते रहना है, उनको कहने से कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता है। उनको कुछ कहना और उनका सुनना दोनो ही व्यर्थ सिद्ध होते हैं। उनको सुनाना अपना समय व्यर्थ नष्ट करना है। क्योकि कहा है—'व्यर्थस्त्वपात्रे व्यय.' अर्थात् जो अपात्र है, मोक्ष-गमन का और उसे प्राप्त करने का पात्र नही है—अभव्य है, ऐसे जीव को समझाने मे अपनी शक्ति का व्यय करना व्यर्थ है।

अल्पज्ञानी कच्चा घड़ा

जैसे कुम्हार ने चाक पर मिट्टी को रखा और घडा बनाया, अब उसको उसने धूप मे सूखने के लिए रख दिया। सूख जाने के बाद उसमे पानी भर

दिया। अव इसका परिणाम क्या सामने आयेगा ? पानी का भी नाश होगा और घडा भी नष्ट हो जायगा। साथ ही जिसने उस कच्चे घडे मे पानी भरा है, उसको भी उपालभ सहना पडेगा। इसी प्रकार जो अभव्य, अज्ञानी, कदाग्रही और मूढमति व्यक्ति को समझाने का प्रयत्न करेगा, वह अपना भी ज्ञान व्यर्थ खोवेगा और उसको भी ज्ञान प्राप्त नही होगा। तथा लोग भी उलाहना देंगे कि आपने किस मूर्ख के साथ माथापच्ची की है ? क्या वह सुलटने वाला है ? वह तो सदा उल्टे ही मार्ग पर चलेगा !!।

यदि किसी समझाने वाले व्यक्ति मे ज्ञान अल्प भी हो, परन्तु जव वह किसी को उपदेश देता है, तव सामने वाला सुनकर उस पर अमल करता है। वह विचार करता है कि इसने यह मेरे हित की वात कही है, इसमे मुझे लाभ है। अव यदि उसका क्षयोपशम पक गया, तो वह उसे कर गुजरता है। और यदि उदय भाव का अधिक जोर है, तो वह नहीं करता है। परन्तु हृदय मे यह अवश्य अनुभव करता है कि इसकी शिक्षा सवके लिए हितकारक है। अत इसका कथन मुझे मान लेना चाहिए।

एक विद्यार्थी पढना चाहता है। उसे सौभाग्य से यदि पढने का सुयोग मिल जाय, तो वह अवश्य ही पढ जायगा और उसे प्रसन्नता भी होगी। जिसे भूख लगी हो और उसे खाने के लिए भोजन मिल जाय, तो वह रुचि से अवश्य भोजन करेगा। इसी प्रकार जिसको राग-रग, नाटक-सिनेमा और सर्कस आदि देखने का शोक है और यदि उसे उसकी इच्छानुकूल वस्तु मिल जाय, तो वह उल्लास के साथ देखेगा और पूछने पर जो कुछ देखा है, उसे यथावत् सुना देगा।

जैसे अभी ये तीन वातें वतलाई गई कि इच्छा के अनुसार जव अभीष्ट वस्तु मिल जाती है, तव मनुष्य को वहुत प्रसन्नता होती है और वह तुरन्त उसे ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार जो भगवान की वाणी को श्रवण करने का अभिलाषी है, प्रेमी है और जिसके हृदय मे यह वात खूव दृढता से जम गई है कि ससार मे यदि कुछ सार है तो एक जिनेन्द्र-वचन ही है। तथा

इन्ही के द्वारा मेरी आत्मा का निश्चय से कल्याण होगा। अत मुझे इनको हृदय मे सदा धारण करना चाहिए।

परन्तु ऐसे भी व्यक्ति देखने मे आते हैं जिनकी जीवन-भर पाप करने की ही निरन्तर प्रवृत्ति रही है, जो सदैव हत्याए करते रहे, चोरिया करते रहे और जितने भी पाप या बुरे कार्य हैं, वे सारे करते रहे। इसी बीच उन्हें यदि कोई योग्य विशिष्ट ज्ञानी, या त्यागमय जीवन विताने वाले सन्त पुरुष मिल जाये, तव पहिले तो एक-दो बार उनसे भिडते हैं, ईर्ष्या करते हैं और वाद-विवाद भी करते हैं, क्योकि दोनो की प्रवृत्तियो मे आकाश-पाताल जैसा अन्तर है—दोनो के एक दूसरे से विपरीत कार्य हैं। एक महापुरुष तो उन बुरे कार्यों को रोकने वाले हैं और दूसरे व्यक्ति उन बुरे कार्यों को रोकने वाले हैं। परन्तु रोकने वाला यदि सहृदयता से विचार करे कि मुझे तो इस व्यक्ति को सुधारना है तो वह व्यक्ति अपने कार्य मे सफल भी हो जायगा। समझाने वाले को शान्त, उदास और गम्भीर होना होगा। तथा सामने वाला जो कुछ भी कहे, उसे शान्तिपूर्वक सुनना भी पडेगा।

धर्मोपदेशक के गुण

धर्म का उपदेश देने वाले को कैसा होना चाहिए ? इसका वर्णन महर्षियो ने इस प्रकार किया है—

> **प्राज्ञः प्राप्त समस्त शास्त्रहृदय प्रव्यक्त लोकस्थिति,**
> **प्रास्ताशः प्रतिभापर प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तर।**
> **प्राय प्रश्नसहः प्रभु पर-मनोहारी परानिन्दया,**
> **ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधि प्रत्यष्टमिष्टाक्षर ॥**

दूसरो को धर्म का उपदेश देने वाला बुद्धिमान हो, समस्त शास्त्रो के रहस्य को जानने वाला हो, लोकस्थिति का जानकार हो, आशा-पाश से रहित हो, परम शान्ति का धारक हो, श्रोता के यद्वा-तद्वा कहने पर भी जो परम क्षमा धारण किये रहे, प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न उत्तर से पहिले ही जानने वाला हो, श्रोताओ के प्रश्नो का सहन करने वाला हो, सामर्थ्यवान् हो, पराये

मन का हरण करने वाला, दूसरे की निन्दा से दूर रहता हो, गुणो का भडार हो और स्पष्ट तथा मिष्ट अक्षर वोलने वाला हो ऐसा गण-नायक पुरुष ही धर्म कथा को कहे।

कहने का सार यह है कि उपदेश सुनकर श्रोता एक वार यह भी कह उठे कि साहव, आपके और मेरे नही पटेगी, क्योकि आप तो कहते हैं कि इसे छोडो, उसे छोडो। परन्तु मेरे से तो यह नही हो सकता है। तव उपदेशक कहता है—भाई, तुमने अपनी वात कह दी। अव मेरे भी दो शब्द सुन लो और उन पर विचार करो। यदि मेरी बात गले उतरे और हित-कारक लगे, तव तो उसे मानना। अन्यथा मत मानना। इस प्रकार कहकर फिर उसके सामने जीवन के उत्थान की वातें रखे। तव वह अपने मन मे विचारेगा कि देखो यह व्यक्ति कितना शान्त है, कितना धैर्यवान् है कि मेरे इतने कटुक वचन कहने पर भी इसने उनकी ओर ध्यान नही दिया। फिर भी यह मेरे जीवन को उन्नत बनाने के लिए ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। इस प्रकार उपदेश देने वाले के सद्-व्यवहार के कारण अपने आप उसके हृदय मे शान्ति आ जायगी। तब वह कहेगा—भगवन्, आपने अभी जो कुछ कहा, उसे मैं अन्यत्र चित्त रहने के कारण धारण नही कर सका। अव कृपा करके एक वार फिर समझाइये। इस प्रकार शान्ति से समझाने पर वह ठिकाने भी आ सकता है। और आज तक लाखो-करोडो व्यक्ति और अधम से अधम पुरुप भी सुमार्ग आये हैं, जिनकी साक्षी जैन आगम दे रहे हैं।

भाई, ससार मे धर्मात्मा पुरुप कम हैं और अधर्माचरण करने वालो की सख्या अधिक है। इसलिए उनका ही सुधार करना आवश्यक है। जो पुरुप हिंसा करता नहीं, झूठ वोलता नही, चोरी करता नही, कुशील-सेवन करता नही और जिसके हृदय से परिग्रह रखने की ममता दूर हो गई है, तथा जो मानवोचित उत्तम गुणो से युक्त है, फिर उसके लिए कौन-सा उपदेश देना शेप रह गया है? जिन कार्यों के करने के लिए उपदेश दिया जाता है, वे सव उसके जीवन मे मौजूद हैं। उपदेश की आवश्यकता तो

उन व्यक्तियो के लिए है, जिनमे कि वे बातें नही हैं। समझाने वाला एक-एक बात को लेकर समझाता है कि देखो—सत्य इसे कहते है, अहिंसा इसका नाम है, ब्रह्मचर्य इस प्रकार से पालन किया जाता है और निर्ममत्व भाव इसे कहते हैं। दूसरो की सेवा परम धर्म है, वैयावृत्य परम तप है, क्षमा धारण करना और कोमल, सरल भाव रखना जीवन का सार है। इन वातो को सुनकर वह विचार करता है कि ये वातें तो मेरे लिए विलकुल नवीन हैं। अभी तक तो मैं इन वातो से सर्वथा विपरीत चलता रहा हू। अव इन वातों पर चल करके देखू तो सही, कि जीवन मे आनन्द आता है, या नही ? अभी तक मैंने जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील-सेवनादि कार्य किये हैं, उनके परिणाम तो मैंने देखे ही नही, वल्कि खूब भोगे हैं। अव इनका त्याग कर और अहिंसा, सत्य आदि का आचरण करके इनका भी मैं परीक्षण करूगा। यदि ये मुझे सुखदायक प्रतीत होगी तो मै इनको जीवन-भर धारण करूंगा और कभी नही छोडूगा। ऐसा विचार करके वह सुमार्ग पर चलने के लिए अग्रसर हो जाता है।

ममता और निर्ममता

ममता और निर्ममता की महत्ता समझाने के लिए एक दृष्टान्त आपके सामने रखा जाता है। एक नगर मे एक सेठ रहता था। उसकी शानदार हवेली और चलती हुई दुकान थी। लाखो की पूजी थी और भरा-पूरा परिवार भी था। परन्तु उसको सन्तोष नही था। वह रात-दिन धन कमाने के लिए ही दौड-धूप किया करता था। उसे एक मिनिट के लिए भी चैन नही था। उसके पडौस मे एक साधारण मनुष्य रहता था। वह दिन भर मजदूरी करता और जो भी आठ-वारह आने कमाकर लाता, उसी मे रूखी-सूखी खाकर स्त्री-पुरुष सुख-शान्ति से रहते। वह प्रात सायकाल भगवान की भक्ति भी करता, प्रभु का नाम स्मरण भी करता और दीन-दुखी की सेवा-टहल भी करता था। इस प्रकार उसका जीवन शान्ति से वीत रहा था।

एक दिन उस सेठ की स्त्री ने रात्रि मे सेठ से कहा - खूब धन कमा लिया है, अव तो सन्तोष धारण करो। जव तक आप सन्तोप धारण नही करेंगे, तव तक हमको भी शान्ति नही मिलेगी। आपकी इस हाय पैसा -- हाय पैसा की प्रवृत्ति से वच्चे-वच्ची भी परेशान हैं। फिर भी आपको सन्तोष नही आ रहा है। यह सुनकर सेठ ने कहा —देखो, मेरे ऊपर कितना भार है, कितने लोगो के पढाने-लिखाने और शादी-विवाह आदि करने का उत्तर दायित्व है। जव तक इनसे छुटकारा नही मिलता है, तव तक कैसे सन्तोष रख सकता हू। सेठानी ने कहा - आप जरा विचार तो करे कि इस पडौसी के पास तो कुछ भी नही है, जवकि आपके पास सव कुछ है। यह दिन भर मजदूरी करने के अतिरिक्त भगवद्-भक्ति भी करता है और शान्ति-पूर्वक अपना जीवन-यापन कर रहा है। सेठानी की यह वात सुनकर सेठ वोला — अरी, अभी तक यह निन्यानवे के फेर मे नही आया है और मैं अभी निन्या-नवे के फेर मे पडा हुआ हू। इसीलिए मेरे जीवन मे अशान्ति और उसके जीवन मे शान्ति है। यदि यह भी निन्यानवे के फेर मे पड गया, तो इसके जीवन की शान्ति भी अशान्ति मे वदल जायगी। सेठानी ने कहा—क्या यह कभी सभव है ? यह इस चक्कर मे कभी नही फस सकता है। सेठ ने कहा— मैं तो निन्यानवे के फेर मे पडा हुआ हू अत इसको इस चक्कर मे नही डालना चाहता हू। परन्तु यदि तू यह सब देखना ही चाहती है तो मैं इसे दिखाता हू। यह कह कर सेठ ने एक थैली मे ९९) रुपये डालकर के उसे मजदूर के चौक मे फेंक दिया। सवेरे उस मजदूर की नजर उस थैली पर पडी। वह सोचने लगा कि यह थैली यहा कहा से आई ? उसने उसे उठाया और खोल-कर देखा तो उसमे ९९) निन्यानवे रुपये निकले। अव उन रुपयो को लेकर सोचने लगा कि यदि एक रुपया और हो जाय तो ये पूरे सौ हो जायेंगे। तव किसी साहूकार के यहा जमा कराने पर एक रुपया मासिक व्याज का आने लगेगा। यह सोचकर उसने उसी दिन से अधिक परिश्रम करना प्रारम्भ कर दिया और प्रतिदिन चार आने वचाकर एक रुपया जोड लिया और पूरे सौ रुपये करके साहूकार के यहा व्याज पर जमा करा आया। अव वह अपनी

स्त्री से कहने लगा कि देखो मैंने इन चार दिनो मे अधिक परिश्रम करके एक रुपया और जोडा और पूरे सौ करके जमा करा आया हूं। अब आगे इसी प्रकार और अधिक परिश्रम करता रहूगा, तो फिर अपने पास बहुत पू जी जुड जायगी। ऐसा विचार कर वह रात-दिन खूब परिश्रम करने लगा और अपना पेट काट करके भी पैसे बचाकर जोडने मे लग गया। शास्त्रकार कहते हैं कि

'जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवड्ढई।'

अर्थात्—जैसे जैसे लाभ होता जाता है, मनुष्य के वैसे वैसे ही लोभ बढता जाता है। और भी कहा है—

'लाभंलाभमपीच्छा स्यान्नहि तृप्ति कदाचन'।

मनुष्य के ज्यो-ज्यो लाभ के ऊपर लाभ होता है, त्यो-त्यो उसकी इच्छा और भी बढती जाती है। उसे कभी भी तृप्ति नही होती है। बस, इसी प्रकार वह व्यक्ति भी निन्यानवे के फेर मे पडकर रात-दिन काम मे लगा। अब न वह पहिले के समान, भगवद्-भक्ति ही करता है, और न समय पर खाना ही खाता है। वह दीन-दुखियो की सेवा करना भी भूल गया और सभी धर्म-कार्य भी छोड दिये। अब तो उसे निरन्तर धन कमाने की चिन्ता लगी रहने लगी। रात को अब उसे पहिले के समान सुख की नीद भी नही आती है, फिर भी उसे अब इसकी कोई चिन्ता नही रही और पैसा जोडने मे ही लगा रहने लगा।

कुछ दिनो के पश्चात् सेठ ने अपनी सेठानी से पूछा—कि पडौसी का क्या हाल है? सेठानी बोली—आपने यह क्या कमाल कर दिया कि अब उसको भी सन्तोष नही रहा है। तब सेठ ने कहा - देखा, निन्यानवे का फेर कितना बुरा होता है।

एक दिन सेठानी ने उस पडौसी को अपने घर बुलाया और कहा—भाई, कुछ दिन पहिले तक तो तुम दोनो पति-पत्नी आनन्द से रहते थे, दोनो साथ साथ भोजन करते थे और साथ-साथ ही भजन-भक्ति भी करते थे। दीन-दुखियो की सेवा भी करते थे। परन्तु आजकल तो तुमने सारे काम छोड

दिये हैं और हाय-हाय मे कैसे पड गये हो ? यह सुनकर पडौसी वोला
सेठानी जी, मेहनत करनी तो मैंने अव प्रारम्भ की है। यदि पहिले से
इसी प्रकार परिश्रम करता रहता तो आज तक मैं भी आपके वरावर
जाता परन्तु मैं आलस्य और प्रमाद मे रहा, इसलिए दरिद्र वना रह गय
अव हम भी रात-दिन परिश्रम कर रहे हैं तो कुछ दिनो मे आपके समान
भी हो जावेंगे। इस प्रकार उसके दिल मे दौड की होड लग गई। आ
को कही से प्रेरणा मिलनी चाहिये, फिर वह किसी से पीछे नही र
चाहता। परन्तु उसकी इस दौड मे कोई सार नही। सेठ ने तो उसे प
रूप से प्रेरणा देकर पाप के काम मे लगा दिया और वह भी घन की तृ
मे पडकर अपनी सुख-शान्ति को खो वैठा। सेठ का यह कर्तव्य था कि
स्वय भी सन्तोष रखकर धर्म कार्य करता और उसे भी धर्म-कार्य की
प्रेरणा देता। परन्तु उसने ऐसा नही किया और अपने समान उसे भी तृ
की ज्वाला मे डाल कर अशान्त और दुखी वना लिया।

सज्जनो, पाप कार्यो मे तो यह आत्मा अनादिकाल से प्रवृत्ति करती
रही हैं। पाप की वातें दिमाग मे जितनी जल्दी जचती है उतनी जल्दी
की वातें नही जचती हैं। यह वात आज ही नही हो गई, किन्तु सदा से
चली आ रही है। इसी वात का निदान खोजते हुए एक महान् आचार्य
कहा है—

हेये स्वय सती वुद्धिर्यत्नेनाप्यसती शुभे।
तद्धेतु कर्म तद्धन्तमात्मानमपि साधयेत्॥

अर्थात्—मनुष्य की वुद्धि हेय मे—छोडने योग्य पाप-कार्यो मे स्वय
दौडती है। किन्तु शुभ कार्य मे यत्न करने पर भी नही दौडती है। इस
कारण पूर्वोपार्जित पाप कर्म का उदय है जो कि इस कर्म सयुक्त आत्मा
भी साव लेता है—अपने अधीन करके तदनुकूल खोटे कार्यो मे लगा ले
है। हमे इस खोटी प्रवृत्ति से वचने का सदा प्रयत्न करते रहना चाहि
तभी इस अनादिकालीन कुसस्कारो से हमारा वचाव हो सकता है। अन्य
नही।

पर्वों का रहस्य

इन खोटी प्रवृत्तियो से बचने के लिए ही सर्वज्ञ देव ने इन धार्मिक पर्वों का विधान किया है। इन पर्वों की कल्पना आकस्मिक नही है किन्तु बहुत रहस्यपूर्ण है। द्वितीया तिथि को—दोज को पर्व मानने का यह अभिप्राय है कि जीव दो प्रकार के हैं—ससारी और सिद्ध। हम ससारी अवस्था से छूटकर दूसरी सिद्ध अवस्था को प्राप्त करें, यह भावना इस पर्व के दिन करनी चाहिए। और यह कब सम्भव है, जबकि हम इस दिन सासारिक प्रपचो को छोडकर आरम्भ और परिगह से मुख मोड कर आत्म-कल्याण के कार्यों मे प्रवृत्त हो। पचमी तिथि को पर्व मानने का यह अभिप्राय है कि पाच ज्ञानो मे पाचवा केवलज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ हैं, तथा पाच गतियो मे सिद्ध-गति ही शाश्वत सुख को देने वाली है, वह हमे कब प्राप्त हो ? इस भावना को करते और तदनुकूल आचरण करने के लिए इसे पर्व तिथि माना गया है। अष्टमी को पर्व तिथि मानने का यह अभिप्राय है कि आठ कर्मों ने हमारे ज्ञान-दर्शनादि आठ गुणो को आच्छादित कर रखा है। उनको कैसे दूर कर हम अपने उन स्वाभाविक गुणो को प्राप्त करें। इसीलिए इस दिन सर्वसासारिक कर्मोपार्जन करने वाले कार्यों को छोडकर धार्मिक कार्यों को करने का विधान किया गया है। एकादशी को पर्वतिथि मानने का यह रहस्य है कि जीव अपना विकास करते हुए ग्याहरवें गुण स्थान तक भी चढ जावे, परन्तु वहा से भी मोह का उदय आ जाने से नीचे गिर जाता है और कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक पुन ससार मे परिभ्रमण करता रहता है। जैसा कि कहा है—

मुनि एकादश गुणस्थान चढ, गिरत तहां ते चित-भ्रमठानी।
भ्रमत अर्ध पुद्गल परिवर्तन किंचित ऊन काल परमानी॥
जीवनि के परिणामनि की यह अति विचित्रता देखहु ज्ञानी॥

हमारा इस प्रकार अध पतन न हो और दशवें गुणस्थान से एक दम ग्यारहवें गुण स्थान को लाघकर हम आगे के गुण स्थानो को प्राप्त कर अरिहन्त और सिद्ध परमात्मा बनें, इस भावना को करने के लिए यह

एकादशी का पर्व बतलाया गया है। चतुर्दशी पर्व को बताने का रहस्य यह है कि गुणस्थान चौदह हैं। चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त कर कब हम सिद्ध पद को प्राप्त करें, इस बात की भावना करने के लिए चतुर्दशी को पर्व माना गया है। इस प्रकार इन नित्य धर्म पर्वों के मनाने का नियम तीर्थंकरो ने अनादिकाल से किया हुआ है। कहा भी है—

अष्टमी चाष्टकर्मघ्नी सिद्धि लाभा चतुर्दशी।
पंचमी ज्ञानकर्त्री च द्वितीया मुक्तिकारिणी ॥

अर्थात् अष्टमी का पौषध आठ कर्मों का नाश करता है। चतुर्दशी का पौषध सिद्धि प्राप्त कराता है। पचमी का पौषध केवलज्ञान को उत्पन्न कराता है और द्वितीया का पौषध मुक्ति को प्राप्त कराता है। भाराश— ये सभी नित्य पर्व मुक्ति के ही साधक हैं।

उक्त नित्य पर्वों के अतिरिक्त यह पर्युषण पर्वाधिराज नैमित्तिक विशिष्ट पर्व है। इन दिनो मे तो सासारिक सर्व कार्यो को छोडकर धर्म-साधन करना ही चाहिए। पहिले तो लोग व्यापार धन्धा आदि का सर्व आरम्भ-समारम्भ छोडकर के उपवास, ऊनोदरी, रसपरित्याग आदि बाह्य तपो के साथ अहर्निश स्वाध्याय, ध्यान एव सामायिक पौषध मे ही सलग्न रहते थे। अति सीमित क्षेत्र मे बाहिर भी आते-जाते नहीं थे। इन दिनो मे सबका यही प्रयत्न रहता था कि हम कर्मों की जितनी अधिक से अधिक निर्जरा कर सकें, उतना ही अच्छा है।

धर्म-बन्धुओ, इन दिनो मे सन्त-महात्माओ के मुखारविन्द से भगवान की वाणी निरन्तर प्रकट हो रही है और प्रेरणा दे रही है कि हे मानव, चेतो, पाप को छोडो और धर्म को अगीकार करो। यह प्रेरणा आप लोगो को बराबर मिलती जा रही है। फिर भी यह अनेक व्यक्तियो के मस्तिष्को मे नहीं जम रही है। हा, जिन जिन लोगो की भवस्थिति पक रही है, उनके मस्तिष्क मे ही जीवन-सुधार के ये उपदेश ठहरते हैं। हमे पुरुषार्थ करके भवस्थिति को पकाने का प्रयत्न करना चाहिए।

परन्तु जब मनुष्य मे होड या प्रतिस्पर्धा का भाव आ जाता है, तब वह किसी का कहना नही मानता है। देख लो—आज राज्य की क्या दशा हो रही है। सभी पार्टिया होड की घुड दौड मे लगी हुई हैं। एक पार्टी कहती है कि इसको हरा दो और दूसरी कहती है कि इसको हरा दो। इस प्रकार काग्रेस, जनसघ, कम्युनिस्ट, प्रसोपा और ससोपा आदि सभी पार्टिया देश के उत्थान के स्थान पर उसके पतन करने मे लगी हुई हैं। कोई भी पार्टी स्वार्थ त्याग कर देशोत्थान के कार्य मे सक्रिय भाग नही ले रही है। अब इस होड मैं—घुड दोड मे कितना छल-कपट, झूठ, बेईमानी और मायाचार करना पडता है। और सब कुछ करते हुए भी जब सिद्धि प्राप्त नही होती है, तब मर्यादा को भी भग करने मे किसी को कोई सकोच नही होता है।

देखो—पहिले दिन तो लोकसभा मे राजाओ के प्रिवीपर्स की समाप्ति का विधेयक रखा और वह वहा पर बहुमत से पास हो गया। तब उसे राज्य सभा मे रखा गया। वहा पर वह पास नही हुआ। वहा से बाहिर निकलते ही राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी कर के प्रिवीपर्स बन्द करा दिया गया। अब उनसे पूछो कि क्या तुम्हारा यह अध्यादेश न्याय-सगत है, या धीगामस्ती का है। उन्होने इस प्रकार भारतीय-सविधान की मर्यादा भग कर दी। अब राजाओ ने कहा—कि इसके लिए हम न्यायालय मे जायेंगे, तब कहा गया कि तुम लोग नही जा सकते। अरे भाइयो, इस प्रकार से न्याय का गला तो नही घोटना चाहिए। और मन-मानी करके तानाशाही और डिक्टेटरशिप तो नही जमानी चाहिए। होना चाहिए कि यदि कोई बात यथार्थ है—सत्य है, तो कोई भी कहीं जाकर न्याय करा सकता है, इसमे आपत्ति की क्या बात है? परन्तु वे समझते हैं कि हमारी बात न्यायसगत नही है, तभी इस प्रकार की रोक लगा दी गई है।

जैसे दो व्यापारी आपस मे लडने लगे। एक कहता है कि पाच हजार रुपया मुझे तेरे पिता पर लेना है। तब दूसरा कहता है कि मैं तुझ पर

सात हजार मागता हू। जव उन दोनो मे झगडा वढते देखा, तव कुछ समझदारो ने कहा—इस प्रकार लडने से क्या लाभ है। तुम दोनों पच नियुक्त कर लो और उनके सामने अपनी-अपनी वहिएं रख दो। वे लोग दोनो ओर की वहिए देख करके अपना निर्णय दे देंगे कौन किस पर कितना मागता है ? कौन सच्चा है और कौन झूठा है, इसका सहज मे ही निर्णय हो जायगा। अव यदि वे लोग पचो के सामने अपनी-अपनी वहिए रखते हैं, तो उनकी सारी पोल खुल जाती है। उनमे जो झूठा होगा, वह तो पच भी वनाना नही चाहेगा। परन्तु जो सच्चा होगा, उसे पचो के सामने अपने वही-चौपडे आदि के रखने मे किसी भी प्रकार का ऐतराज नही होगा और सहर्ष सव कागज-पन्ने पचो के सामने रख देगा।

भाइयो, पहिले के जमाने मे लोग सत्य के पक्के पुजारी होते थे। तव पाप की पुकार ऊची नही पहुचती थी। परन्तु आज तो पाप की पुकार एक दम ऊची पहुचती है और उसके सामने धर्म की आवाज दवकर नीचे रह जाती है। इसीलिए आज सत्य को प्रकाश मे आने मे देर लगती है।

आप लोगो को ज्ञात है कि एक दिन रानी अभया ने कामासक्त होकर सुदर्शन सेठ को पकडवा करके अपने महल मे वुला लिया था। नाना प्रकार के कुत्सित प्रयत्न रात्रिभर करने पर भी जव वे चल-विचल नही हुए, तव उस रानी ने हो-हल्ला मचा कर उन्हें पकडवा दिया। राजा ने विना कुछ निर्णय किये रानी के कहने से उन्हे शूली पर चढाने का आदेश दे दिया। तव एकवार सारा ससार कह उठा कि सत्य का खात्मा हो गया। परन्तु जव उन्हे शूली पर चढाया गया, तव शूली का सिंहासन वन गया और सत्य सवके सामने आगया। और झूठ का पर्दाफाश हो गया। रानी के पाप का भण्डाफोड हो गया और वह राजमहल से निकाल दी गई और सुदर्शन का सन्मान कर उन्हें नगर सेठ वनाया गया।

११ | मानव जीवन का महत्व

सज्जनो, आज के प्रवचन का विषय 'मानव जीवन का महत्त्व' है। यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि मानव जीवन को इतना अधिक महत्त्व क्यो दिया गया है ? इसका उत्तर यह है कि मनुष्य त्रिलोकवर्ती सभी ससारी प्राणियो मे सर्वश्रेष्ठ जीव है। वह सर्वश्रेष्ठ कहलाने का अधिकारी तभी है, जबकि उसमे मनुष्यता, मानवता या इन्सानियत हो। इसी मानवता के कारण मानव-जीवन का महत्त्व बढ जाता है। यदि मनुष्य मे मानवता नही, इन्सान मे इन्सानियत नही, तो वह मनुष्य का शरीर धारण करने पर भी पशु के समान है, वह इन्सान नही, किन्तु हैवान ही कहा जायगा।

मानव और मानवता

अब जैसे किसान फसल को विशेष रूप से पैदा करने के लिए खेत मे अच्छी से अच्छी खाद को डालता है, समय-समय पर पानी की सिंचाई करता है, उत्तम बीज बोता है और उसे बीमारी-रोग आदि से बचाता है और अनुकूल वातावरण का योग जुटाता है, तब जाकर वह मनचाही फसल को प्राप्त कर पाता है। इस पर से यह निष्कर्ष निकलता है कि अच्छी फसल के लिए उत्तम खेत, पानी, खाद और वातावरण की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार से मनुष्य को अपनी उत्तम आत्मज्योति जगाने के लिए मानव-जीवन

मानवता, शास्त्र-श्रवण और सम्यक् श्रद्धान, इन चार बातो की आवश्यकता होती है। यदि ये चारो चीजें मनुष्य के पास आ जावें,तब फिर आत्म ज्योति के जगने मे कोई विलम्ब नही हो सकता है।

उपर्युक्त चार बातो मे से प्रथम वस्तु अर्थात् मानव-जीवन तो हम आप सबको प्राप्त हो गया है, हमने मनुष्य योनि मे ही जन्म लिया है। दूसरी वस्तु है मानवता। भाई, मानव-जीवन भिन्न वस्तु है और मानवता भिन्न वस्तु है। जैसे सोना चीज अलग है और सोने की कोमलता अलग चीज है। सोना पृथ्वी काय है, उसमे सुवर्णत्व, पीतत्व, कोमलत्व आदि गुण हैं। इसी प्रकार मानव-जीवन तो मिट्टी के ढेले के समान है और उसमे मानवता या मनुष्यपना यह उसका गुण है, मानव तो सभी मनुष्य हैं। किन्तु उनमे से मानवता विरले ही मनुष्यो मे होती है। तीसरी वस्तु है शास्त्र-श्रवण। सोने मे कोमलपना और पीतत्व गुण है। परन्तु जब तक वह आग मे से नही निकलता है, एक बार, दोबार, दस बार अथवा सौ बार आग मे से निकलता है, तब कही वह सौ टच का सोना बनता है। इसके बाद भी उसे पुन कसौटी पर कसा जाता है कि यह सौ टच का सोना बना, या नही। इसी प्रकार मानवता को शास्त्र की कसौटी पर कसने से पता चल जाता है कि मैंने मानव-जीवन की मजिल कितनी पार की है और अवशिष्ट कितनी रह गई है। मानवता के मापने का थर्मामीटर केवल शास्त्र ही है। इसके बिना पता नही लग सकता है कि हमारी निज की वस्तु क्या है और पर की वस्तु क्या है? शास्त्रज्ञान के बिना ही हम पर की वस्तु को अपनी और अपनी वस्तु को पराई मान रहे हैं। ये भ्रम और भ्रान्तिया जब तक हमारे भीतर घुसी हुई हैं तब तक हम ठीक मार्ग पर नही आ सकते हैं। इन भ्रान्तियो को भगाने के लिए—दूर करने के लिए - हमे शास्त्रो का अवलम्बन लेना चाहिए। शास्त्रो का स्वाध्याय करने पर ही हमे ज्ञात होता है कि—

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि-फल पुण्य-पाप।
निज को, परको करता पिछान, पर मे अनिष्टता इष्ट ठान॥

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृग-तृष्णा जानि वारि।
तन-परिणति मे आपो चितार, कबहूँ न अनुभव्यो स्व-पद सार ॥

मैं अपना स्वरूप भूल करके इस ससार मे भ्रमण कर रहा हू, मैंने कर्मोदय से प्राप्त होने वाले पुण्य-पाप के फल को ही अपना स्वरूप मान लिया, मैंने वस्तु-स्वरूप को नही समझ करके अपने को दूसरे का कर्त्ता-धर्ता माना और दूसरो को अपना कर्ता-धर्ता माना, मैंने अपने पुण्योदय से अनुकूल प्रतीत होने वाले को इष्ट माना और पापोदय से प्रतिकूल प्रतीत होने वाले को अनिष्ट माना, मैं स्वय ही अज्ञान को धारण कर आकुल-व्याकुल हो रहा हू। जिस प्रकार हरिण मृगमरीचिका को जल मानकर चारो ओर दौडता हुआ आकुलित होता है। उसीप्रकार मैं शरीर की परिणति को ही आत्मा की परिणति मानता रहा इस कारण शरीर के जन्म को अपना जन्म और शरीर के नाश को अपना मरण मानता रहा और इस प्रकार आज तक मूढ आत्मा ही वना रहा। शास्त्रकार कहते है कि—

तनुजन्मनि स्वक जन्म तनुनाशे स्वकां मृतिम्।
मन्यमानो विमूढात्मा भ्रमितोऽद्यावधि वृथा ॥

शास्त्र-पठन और श्रवण करने पर ही ज्ञात होता है कि मेरी अभी तक जो यह मान्यता रही कि शरीर की उत्पत्ति को मैंने अपनी उत्पत्ति माना और शरीर के विनाश को अपना मरण माना, ऐसी मेरी मान्यता मिथ्या है। और इस मिथ्या धारणा के वश होकर अनादि काल से मैं व्यर्थ घूमता रहा हू।

सद्ज्ञान आवश्यक

इस प्रकार मानव को मानवता पाने के लिए—आत्म-स्वरूप पहिचानने के लिए शास्त्र-श्रवण एव मनन अति आवश्यक है। यदि शास्त्र को हम सीधे रूप से इस्तेमाल मे लायेंगे—ठीक रीति से उपयोग करेंगे—तभी हमको सही मार्ग मिल सकता है। यदि हम उन्हे मिथ्यात्व का चश्मा लगाकर भ्रान्तियो से परिपूर्ण और विषमता से ग्रहण करेंगे तव वह शास्त्र हमारे लिए शस्त्र का काम करेगा। जैसे तलवार को हम यदि मूठ की ओर से पकड़ेंगे तो शत्रु पर

उसका प्रहार भली-भांति कर सकते हैं। और यदि उसको अणी (नोक) की ओर से पकड़ेंगे, तो दूसरे को हानि पहुँचाने के स्थान पर अपना ही हाथ काट लेंगे। इसी बात को लेकर आनन्दघन जी कहते है कि—

पाप नहीं कोई उत्सूत्र भाषण जिसो धर्म न कोई जिन सूत्र सरीसो
सूत्र अनुसार जे भविक क्रिया करे तेहनो शुद्ध चारित्र परखो

प्राणातिपात (हिंसा) से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह पाप हैं। इन पापो का सेवन नही करके अनेक जीवो ने अपना जीवन सफल कर लिया। परन्तु जिन्होंने शास्त्र का अर्थ अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर विपरीत किया, उन्होंने अठारह पापो से बढकर पाप का उपार्जन किया है। कहा है—

एकत. सकल पाप मिथ्यात्वमेकतस्तयो ।
वदन्त्यत्रान्तर दक्षा मेरु-सर्षपयोरिव ॥

अर्थात्—तराजू के एक पलडे पर सर्व पापो को रखा जाय और दूसरे पलडे पर अकेले मिथ्यात्व को रखा जाय, तो ज्ञानी पुरुष इन दोनो के भार का अन्तर मेरु पर्वत और सरसो के दाने के समान बतलाते हैं। भावार्थ है—मिथ्यात्व का पाप मेरु-तुल्य महान है और उसके मुकाबिले मे हिंसादि समस्त पाप सरसो के दाने के समान बहुत हलके हैं। समन्तभद्र स्वामी कहते हैं—

न सम्यक्त्व-समं किञ्चित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसम नान्यत्तनूभृताम् ॥

अर्थात्—तीन लोक और तीन काल मे मिथ्यात्व के समान प्राणियों का कोई अकल्याण करने वाला नही है और सम्यक्त्व के समान कोई कल्याण करने वाला नही है।

इस मिथ्यात्व का सेवन करने वाले जो मनुष्य हैं, उनकी आत्मा का कल्याण होने वाला नही है। वे निरन्तर चारो गतियो मे चक्कर काटते रहेंगे। उन्हें महान् से महान् कष्ट उठाने पडेंगे। इसका कारण यह है कि विपरीत प्ररूपणा करने से एक-दो का नही, किन्तु अनेक प्राणियो का अनर्थ होता है। इसी प्रकार शास्त्र की सही प्ररूपणा करने से बढकर कोई दूसरा

धर्म नही है। यदि उसके अनुसार हम प्रवृत्ति करते रहे तो कल्याण होने में कोई शका नही है।

देखो—मधु और घृत दोनो अमृत के समान माने गये है। परन्तु मधु और घृत को समान मात्रा मे मिलाकर सेवन करने पर वह विप का काम करता है। यद्यपि पृथक्-पृथक् रूप मे वे दोनो अमृत-तुल्य हैं, परन्तु सम-मात्रा मे मिलने पर विप-तुल्य हो जाते है। स्वास्थ्य-लाभ के लिए उपयोग करने वाले इनका हीनाधिक परिणाम मे ही सेवन करते हैं। यहा आप पूछेंगे कि दो अमृतो के मिलने पर तो एक महा-अमृत वन जाना चाहिए। परन्तु ये विप क्यो वन गये ? भाई, ये विष इसलिए वन गये कि वैद्यक शास्त्र मे इनका उपयोग जिस विधि से करने का विधान है, हमने उनका प्रयोग विपरीत रूप मे किया हैं।

अग्नि जव तक चूल्हे, सिगडी मे या स्टोव मे है, तव तक आप उसका उपयोग कर मनोवाछित पदार्थ वना सकते हैं। किन्तु वही आग जव चूल्हे आदि से वाहिर निकल आती है और ई धन का सयोग और पवन की प्रेरणा पाकर प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है, तव वह हमारे लाभ की वस्तु न रह कर हानिकारक वन जाती है। इसी प्रकार से हमने सिद्धान्त का, शास्त्र का सहारा लिया। अव यदि हमारे भीतर कोई कमजोरी है—दुर्वलता है और उसे छिपाने के लिए हम सिद्धान्त के अर्थ को ही उल्टा निरूपण करने लगे—उत्सूत्र-प्ररूपण करदें, तो कितना अनर्थ होने की सभावना निहित है। हा, उस समय आप यह कह सकते हैं कि सिद्धान्त का मार्ग तो यह है परन्तु मेरे भीतर यह कमी है—यह दुर्वलता है। परन्तु सिद्धान्त की कोई दुर्वलता नही है। जब मैं अपनी इन कमजोरियो को दूर कर दू गा, तव कहीं जाकर मैं सिद्धान्त के अनुसार चलने के योग्य वन सकू गा। जव मनुष्य अपने भीतर की कमियो को देख लेता है, अपनी कमजोरी को समझ लेता है—तव वह उन्हे दूर करने का प्रयत्न करता है और कुछ दिनो मे वे कमिया उसके भीतर मे निकल भी जाती हैं। परन्तु

जो अपनी कमियो को छिपाना चाहता है, उसकी वे कमिया एक भव की तो कहे कौन, अनेक भवों मे भी निकलना सभव नही हैं।

भाइयो, कहीं पर भी किसी प्रकार की कमी रहने पर भारी हानि की सभावना रहती है। जैसे आपने मकान वनाने के लिए कारीगर को ईट, चूना, पत्थर, लोहा आदि सभी आवश्यक वस्तुए दे दी। परन्तु उसने चुनाई मे कही पर कमी-कसर रख दी। अव वताओ—इस जरा सी कमी के कारण क्या आपका वह मकान सुदृढ रूप मे सुरक्षित रह मकेगा? नही रहेगा। -उसकी थोडी-सी कमी भारी हानि का कारण वन सकती है। क्योकि वर्षा ऋतु मे पानी वरसने पर वह धीरे-धीरे उस कमजोर स्थान पर वैठता रहेगा और दीवाल को कमजोर वना देगा। जव किसी एक ओर की दीवाल कमजोर हो जायगी, तव वह अकस्मात् सारे मकान को ढहा देगी और उसमे रहे हुए—सोते हुए व्यक्तियो की घातक वन जायगी। उस जरा-सी कमी के रखने मे जरा-सा स्वार्थ साधन तो उस कारीगर का या ठेकेदार का हुआ—पर इतना भारी नुकसान आपका हो गया।

अन्तरंग की दुर्वलता

आज से आठ वर्ष पहिले मेरा चातुर्मास सोजत मे था। वहा पर हवाई जहाज के मैदान मे गाडोलियो को वसाने के लिए राजस्थान सरकार ने कालोनी वनाने का निश्चय किया। वडी तेजी के साथ मकान वनाने लगे। एक ठेकेदार ने उनके वनाने का ठेका लिया था। मकान वनकर तैयार भी हो गये। भाग्य से कोई गाडोलिया या हरिजन आकर उनमे वसा नही था। सावन का महीना आया। वर्षा जोरदार हुई तो एक ही रात मे सत्ताईस मकान गिर गये। और अगले वर्ष मे अधिकतर मकान खत्म हो गये। अव कहिये, यदि उन मकानो मे वेचारे उन गरीवो का निवास हो गया होता, तो क्या वे जिन्दा वच सकते थे? नही वच सकते थे। उस ठेकेदार ने क्या किया कि चूने के स्थान पर राख से चिनाई कराई। उसको लाभ कितना हुआ होगा? थोडा वहुत। परन्तु सरकार के कितने रुपयो का

नुकसान हुआ ? और यदि वे आवाद हो गये होते तो कितने लोगो की जानें जाती ?

इसी प्रकार जव हम सिद्धान्त को पढते हैं विचारते हैं, सुनते और सुनाते हैं, फिर भी यदि हम अपनी कमियो को छिपाते हैं, तो वह भीतर रही हुई कमी वहुत हानि पहुँचा सकती है। इससे हमारी तो हानि होगी ही, साथ मे दूसरो को भी हानि पहुच सकती है। विचार कीजिए—जिस ठेकेदार ने उस कालोनी का निर्माण किया तो उसे क्या वचा ? यदि कुछ वचा भी होगा तो कुछ दिनो मे खा-पीकर उड गया होगा ? परन्तु जनता के धन का कितना विनाश हुआ। आज की सरकार ऐसे वेईमानो को ठेका देती है और नुकसान होने पर कोई पूछताछ भी नहीं करती है, क्योकि ऊपर से लेकर सव मिली-जुली भगत वाले और रिश्वतखोर हैं। यदि व्रिटिश काल की सरकार होती, तो वह उस ठेकेदार से जवाव-तलव करती कि ऐसा क्यो हुआ ? जवकि तुम्हे सिमिन्ट-चूने को भरपूर रुपया दिया गया। फिर एक ही वारिश मे इतने मकान कैसे गिर गये। उससे वह पूरा रुपया वंसूल करती, अन्यथा जेल की हवा खिलाती। मगर आज पूछने वाला कौन है ?

भाईयो, हमारे सूत्रो का यही एक दृष्टिकोण या प्रमाण है। यदि हम शास्त्र के अनुसार आचरण करते हैं, तव वे ही हमारे लिए कल्याणकारी और अमृत-तुल्य है। परन्तु यदि हम उनसे विपरीत काम लेते हैं और अपने क्षुद्र स्वार्थ साधना के लिए उत्सूत्र-प्ररूपण करते हैं, तो वे ही हमारे लिए शस्त्र के समान घातक वन जाते हैं। इसलिए शास्त्र-श्रवण सदा ठीक रूप मे करना चाहिए।

सम्यक् श्रद्धा

चौथा गुण श्रद्धान है। जिन-भाषित तत्वो पर ऐसा दृढ श्रद्धान होना चाहिए कि वीतराग भगवान ने नि स्वार्थ भाव से प्राणिमात्र के कल्याण के लिए जो वस्तु का यथार्थ स्वरूप कहा है और उन्हें ससार के दु खो से छुटकारा पाने के लिए जो नियम वताये हैं, वे सर्वथा सत्य हैं, कभी अन्यथा

हो नही सकते, क्योकि **'नान्यथावादिनो जिना'** अर्थात् जिन भगवान त्रिकाल मे भी अन्यथावादी-मिथ्याभाषी नही है। समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि श्रद्धान ऐसा होना चाहिए—

इदमेवेदृशमेव तत्त्व नान्यन्नचान्यथा।
इत्यकम्पाऽऽयसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसशयारुचि ॥

वस्तु तत्व यही है, ऐसा ही है, जैसा कि अरिहन्त देव ने कहा है। वह अन्य प्रकार नहीं है और न अन्यथा हो सकता है। इस प्रकार तलवार की धार पर चढे हुए पानी के समान सन्मार्ग पर सशय-रहित अकम्प दृढ रुचि, प्रतीति, विश्वास और श्रद्धान होना चाहिए।

जो रागी, द्वेषी, मोही और अज्ञानी हैं, उनके वचन तो मिथ्या या अन्यथा हो सकते हैं, किन्तु वीतरागी, निर्मोही और पूर्णज्ञानी के वचनो मे कोई कमी नही हो सकती है। वीतराग भगवान के मुखारविन्द से तो सत्य एव सर्व-हितकारी वात ही प्रकट होती है। सत्यार्थ तत्वो का श्रद्धान करने पर आज तक असख्य प्राणियो का उद्धार हो गया है, हो रहा है और आगे होगा।

देखो—खदक सन्यासी अन्यतीर्थी था। वह वेदान्ती था। उसके कानो मे यह आवाज पडी कि लोक असख्यात हैं और रात्रिया अनन्त है। यह सुनकर उसके मन मे शका उत्पन्न हुई कि जब लोक असख्यात है, तव उसमे अनन्त रात्रिया कैसे समा सकती हैं। यह बात उसे नही समझ पड रही थी। परन्तु वह उदार एव विचार वाला था। अत. निश्चय न कर सकने पर भी उसने उक्त वात को असत्य नही कहा।

एक समय स्वय भगवान् महावीर का वहां पधारना हो गया। उस खदक सन्यासी ने भी सुना कि भ० महावीर यहा पर पधारे हुए हैं। वह सोचने लगा कि एक लम्बे समय से मेरे मन मे यह शका खडी हुई है। मैंने सुना है कि भ० महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, उनका ज्ञान अथाह और अपार है। इसलिए अपनी शका के समाधान को पाने के लिए मुझे अपने पद

का मोह छोडकर—अभिमान छोडकर—उनके पास जाना चाहिए। तथा इस विषय मे उनका निर्णय लेना चाहिए। यदि उनके मुख से मुझे ठीक निर्णय मिल गया, तो मैं धन्य हो जाऊगा और यह मेरे,जीवन की सुनहरी घडी सिद्ध होगी। यदि वहा से ठीक समाधान नही मिला तब मैं मान लू गा कि यह बात झूठी है। यह सोचकर उसने अपने शिष्यों को अपने साथ भ०महावीर के पास चलने को कहा। शिष्य बोले—गुरुदेव, आप यह क्या कह रहे हैं ? हम तो आपको भ० महावीर से भी बढकर मानते हैं ? फिर आप महावीर से मिलने के लिए क्यो जा रहे हैं ? शिष्यो की यह बात सुनकर खन्दक ने उनसे कहा शिष्यो, तुम लोग गलत मार्ग पर हो। मैं न तो महावीर के समान हूँ और न उनसे बढकर ही हूँ। मैं तो एक साधारण सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक हू। और उसके भीतर ही अपने उपदेश का प्रचार करता हूं। परन्तु महावीर तो महा-वीर ही हैं। उनकी तुलना मैं नही कर सकता हूँ। इस प्रकार खन्दक सन्यासी ने अपने अन्तरात्मा की आवाज अपने शिष्यो को कही। देखो—एक दीपक भी प्रकाश करता है और गैस भी प्रकाश करता है। उन दोनो की तुलना की जाय तो गैस के प्रकाश के सामने दीपक का प्रकाश कुछ भी नही दिखेगा। इसी प्रकार आज भ० महावीर रूपी सूर्य का सर्वत्र प्रकाश फैल रहा है तब मेरा यह टिम टिमाता हुआ यह अल्प-सा दीपक उनके सामने क्या हस्ती रखता है। यदि तुम लोग उनकी सेवा मे चलना चाहते हो तो चलो। अन्यथा मैं तो उनकी सेवा मे जा ही रहा हू। यह मेरा दृढ़ सकल्प है।

ऐसा कहकर वह शुद्ध हृदय से भ० महावीर के पास अपनी शका का समाधान पाने के लिए चला। भ० महावीर अपने स्थान पर बैठे हुए धर्म—देशना दे रहे थे। उन्होंने खदक को आते हुए देखकर कहा—गौतम, तुम्हारे पूर्व भव का मित्र खन्दक सन्यासी मेरे पास प्रश्न पूछने के लिए आ रहा है। यद्यपि अन्यतीर्थी के स्वागतार्थ सामने जाना यह बात आर्हत-सिद्धान्त के प्रतिकूल हैं, तथापि यह नियम एक देशीय है, सर्व देशीय नहीं। क्योकि सर्वत्र सर्वदा, सर्वथा ऐसा व्यवहार करने पर हमारी मानवता मे कमी आती है। लोक-व्यवहार के शिष्टाचार को देखते हुए हमे अपनी नीति का भी ख्याल

रखना चाहिए। जब भगवान ने यह कहा, तब गौतम ने कहा—तथास्तु भगवन्! जो आपकी आज्ञा है, वह प्रमाण है। मैं तथैव उसका पालन करूंगा किन्तु मेरी एक शका है, उसे समाधान कीजिए कि मेरा यह मित्र खन्दक संन्यासी क्या आपके पास आकर श्रावक धर्म को स्वीकार करेगा, अथवा मुनि धर्म को स्वीकार करेगा? अथवा दोनो धर्मों मे से किसी भी धर्म को स्वीकार नहीं करेगा? तब भगवान ने कहा—'**हता गोयमा**', हे गौतम यह मुनि धर्म को स्वीकार करेगा। यह सुनकर गौतम ने विचार किया कि तब फिर मुझे उसके सामने जाने मे क्या आपत्ति है। तत्पश्चात् गौतम खन्दक सन्यासी के स्वागतार्थ सामने गये और उनको यथोचित अभिवादन करते हुए कहा– आओ खन्दक! ये शब्द सुनते ही खन्दक सन्यासी का हृदय आनन्द से भर गया। वह सोचने लगा—अहो ये आर्हत मतानुयायी कितने मिलनसार हैं? ये अपने पास आने वाले का हृदय से कैसा स्वागत करते हैं। यद्यपि हमारे और इनके सिद्धान्त परस्पर मिलते नही हैं, तथापि ये मानवता के अटल पुजारी है। ये लोग व्यवहार निभाने मे किसी प्रकार का भेद-भाव नही रखते हैं। देखो तो सही ये तो कर्म—सिद्धान्त के मानने वाले हैं और हम ईश्वरवादी हैं और उसे ही सृष्टि का कर्ता-धर्ता मानते हैं। जब कि ये कर्म को ही जगत् का विधायक मानते हैं। हमारा सिद्धान्त एकान्तवाद का है और ये अनेकान्तवादी हैं। इनमे मानवता बहुत बढी चढी दिख रही है। इस प्रकार विचार करता हुआ खन्दक भी गौतम से स्नेह पूर्वक मिला।

तत्पश्चात् गौतम के साथ खन्दक समवसरण मे पहुंचे। उनके सामने आते ही भगवान ने कहा—अहो खन्दक, 'लोक असख्यात हैं, फिर इसमे अनन्त रात्रिया कैसे आई और जा रही हैं', यह शका तुम्हारे हृदय को आन्दोलित कर रही है? खन्दक ने कहा—हा, भगवन् ठीक कहते हैं आप! यह कहते हुए वह बडे आश्चर्य मे पडा कि भगवान् ने मेरे मन की बात को कैसे जान लिया? अब तो उसने श्रद्धा पूर्वक दोनो हाथ जोडकर अपना मस्तक झुका दिया। तब भगवान ने कहा—हे खन्दक, तुम्हारी यह शका निर्मूल है,

क्योकि तुम यह सोचो कि रात्रिया क्या हैं ? रात्रि नाम काल का है और काल कहते हैं समय को। समय तो अनन्त वीत गया है और आगे अनन्त ही व्यतीत होगा। समय तो प्रति समय नवीन आता हुआ अनादि मे ही चला जा रहा है। उसका प्रवाह सतत प्रवहमान है। अत ये काल या समय रूपी रात्रिया कभी भी इस असख्यात प्रदेशी लोक मे भीडभाड करने वाली नही हैं। आज तक कितना काल चला गया इसकी कोई गणना कर सकता है क्या ? और आगे कितना समय आने वाला है, इसकी भी कोई गणना सभव नही है। इसलिए अनन्त रात्रिया गई हैं, जा रही हैं और जावेंगी। भगवान के मुखारविन्द से इस प्रकार शंका का समाधान सुनते ही खन्दक सन्यासी का हृदय वहुत प्रसन्न हुआ और उसके भीतर भगवान महावीर और उनके धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा जागृत हो गई। उसके हृदय का सारा अन्धकार विलीन हो गया। तदनन्तर उसने भगवान से अनेक और भी प्रश्न किये और उनका समुचित हृदयग्राही समाधान पाकर वह वहुत सन्तुष्ट हुआ।

भाई, खन्दक के मन मे शका अवश्य उत्पन्न हुई, किन्तु शका उत्पन्न होने पर वह उसके समाधान के लिए खोजी बना और जिज्ञासु होकर सर्वज्ञ के पास विनीतभाव से जाकर के उपस्थित हुआ तो उसकी सारी शकाए दूर भी हो गई। परन्तु आज के समय मे तो मामला ही कुछ और है। आज लोग जिसे पढते या सुनते हैं, उसे भली-भाति से सोचे-समझे विना ही झट कह उठते हैं कि यह सच है और यह झूठ है। मैं कहता हू कि अल्पज्ञ होते हुए तुम्हे सर्वज्ञ के वचनो को झूठा कहने का आखिर क्या अधिकार है ? तुम्हे झूठा कहने का कोई अधिकार नही है। तुम्हे तो केवल पढने का व समझने का अधिकार है। यदि पढ़ते हुए कोई शका होती हैं, अथवा किसी शब्द का अर्थ युक्ति-सगत नही जचता है, तो अपने से अधिक किसी दूसरे विशिष्ट-ज्ञानी के पास जाकर निर्णय करना चाहिए। परन्तु केवल अपनी मनचाही धारणा वनाकर और अपनी बुद्धि के अनुसार उत्सूत्र प्ररूपणा नही करना

चाहिए। विना विचारे भगवद् वचनो पर टीका-टिप्पणी करने का हम छद्मस्थो को कोई अधिकार नही है।

अपनी मत तानो ?

आज के मनुष्य क्षुद्र-बुद्धि होने पर भी पाण्डित्य के अभिमान रूपी हाथी पर चढकर हर वात को तोड-मरोड कर इधर-उधर करने मे नही हिचकिचाते हैं। अरे, देखो तो मही—वडी पुण्यवानी से और परम सौभाग्य से यह हीरे-पन्नो से जडा हुआ वादशाही दुपट्टा तुम्हे मिल गया है, तो इसे ओढकर इसका आनन्द लो। परन्तु खीचा-तानी मत करो और मेरे-तेरे के झगडे मे मत पडो। इसी खीचातानी मे ही उस दुपट्टे मे लगे ये अनमोल हीरे माणिक और मोती खिर-खिरकर गिर गये और रास्ता चलने वाले लोग उठाकर चल दिये। यदि विवेक का धागा रहा, तव तो वे रत्न खिच आवेंगे। अन्यथा इस दुपट्टे की वह शान नही रहने पायेगी। भगवान के ये वचन राजशाही दुपट्टा है। इसे अपने खजाने मे सुरक्षित रखो जिससे कि ममय-समय पर इसमे से मई-नई वस्तुए मिलती रहे। तथा जो हमारे समीप आवें उनको भी लाभ मिलता रहे।

भाइयो, यदि कोई सरोवर स्वच्छ जल से लवालव भरा होगा, तो कोई भी प्यासा पथिक आकर और उसका शीतल मधुर जल पीकर अपनी प्यास को शान्त करेगा और उसमे स्नान करके अपने शरीर की गर्मी को दूर करेगा, तथा परम आनन्द का अनुभव करेगा। इसीप्रकार भगवान के वचन रूपी सागर मे, सरोवर मे—जो भी प्राणी डुवकी लगाते हैं, वे एक अलौकिक आनन्द का अनुभव करके अपने जन्म, जरा और मरण की अनादिकालीन व्याधि को सदा के लिए शान्त कर लेते हैं और अजर, अमर पद को पाकर अनन्त सुख के भोक्ता वन जाते हैं।

आज मैंने आप लोगो के समक्ष मानव जीवन, मानवता, शास्त्र श्रवण और श्रद्धान ये चार वातें रखी हैं। मैं समझता हू कि इनके सम्वन्ध मे आपको पर्याप्त प्रकाश मिला होगा। इन चार वातो के साथ-साथ एक वात की और भी आवश्यकता है। जव तक वह प्राप्त नही होगी, तव तक ये

चारो बाते अधूरी रहेगी। जैसे आपको सीरा बनाना है। आपके पास मैदा है, घी है, शक्कर है, आग है और कढाव है। परन्तु एक पानी नही है, तो क्या सीरा बन जायगा? नही बनेगा। इसी प्रकार उपर्युक्त चार बातो के मिल जाने पर भी पाचवी बात के प्राप्त हुए बिना हमारे उद्देश्य की पूर्ति नही हो सकती है।

आपके पास तलवार है, घोडा है, और चलाने वाले आप भी मौजूद है। परन्तु जिसे निशाने पर वार करना याद नही है, वह युद्ध मे अपना उद्देश्य सिद्ध नही कर सकता है। आपके सामने बारूद से भरी हुई बन्दूक पडी है। उसे आपने उठा ली। अब केवल उसका घोडा दबाने की ही देर है कि वह लक्ष्य-वेध कर सकती है। परन्तु आपको घोडा पकडना और बन्दूक साधना याद नही है तो घोडे को दबाते ही वह ऐसी तेजी से पीछे आयगी कि आपकी छाती की हड्डिया तोड देगी। फिर तू औरो को क्या मारेगा, बल्कि स्वय मर जायगा। क्योकि तुझे उसका चलाना याद नही है। भाई, एक बात की कमी के कारण भी भारी हानि हो जाती है। इसलिए हमे किसी काम मे भी कोई कमी नही रखनी चाहिए। अपने उद्देश्य की पूर्ति मे जो जो कमिया दृष्टिगोचर हो, उन्हे मजिल को पार करते हुए निकालने का प्रयत्न करना चाहिए।

अब कोई कहे- क्या करें सा०, भूल हो गई। अरे, तुमसे तो भूल हो गई और भूल को भूल कहकर बरी हो गये। परन्तु उस भूल से दूसरो का कितना भारी नुकसान हो जाता है, इसका अनुमान लगाना भी कठिन हो जाता है। आपके पास सरकारी खजाना है और आप उसके खजाची हैं। अब उसके सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी आपकी है। अब किसी दिन आप ताला लगाना भूल गये और अपने घर चले गये। रात को चोर-डाकुओ ने सारा खजाना ही खाली कर दिया, तो बताओ—आपकी जरासी भूल ने गजब कर दिया। आप अपने किसी रोगी की दवा लेने को वैद्य के पास गये। उसने दवा की पुडिया दे दी। और आपने उसे जेब मे रख ली। योगवश उसी जेब मे एक सखिया की पुडिया भी पहिले से रखी हुई थी। अब आपने

घर आकर भूल से संखिया की पुडिया रोगी को दे दी और वह खाते ही मर गया। जब आपसे पूछा गया, तब आपने कह दिया कि क्या करूं, मुझसे भूल हो गई। परन्तु उस भूल से कितना बडा नुकसान हो गया।

इसी प्रकार भगवद् वचनो पर श्रद्धान रखते हुए भी उनको विवेकपूर्वक जानकर उन पर आचरण करने की और अपना पराक्रम फोडने की भी नितान्त आवश्यकता है। जब तक हम पुरुषार्थ प्रकट करके पराक्रम को नही फोडेंगे, तब तक आत्मा मे शुद्धि का निखार नहीं होगा। अतएव हमे अपनी सारी शक्ति उस पराक्रम को फोडने मे लगा देना चाहिए। जब आप पूर्ण पुरुषार्थ करेंगे, तब एक दिन आत्म शुद्धि को प्राप्त कर सिद्धि को अवश्य ही प्राप्त करेंगे।

हा, यदि हम हिम्मत हार गये— अपनी शक्ति को कुंठित कर ली, तो फिर कार्य की सिद्धि नही होगी। इसलिए जब आपने यह मानव-जीवन पाया है, तो मानवता को प्राप्त करो, जिन-वचनो पर अटूट श्रद्धा रखो और भगवान के बताये हुए मार्ग पर चलने मे अपनी शक्ति का शौर्य दिखाओ। बस, यही मानवता है, यही मानव-जीवन पाने का सार है और इसी में आत्म-कल्याण है।

वि० स० २०२७ भादवा सुदि ७
जोधपुर

●●

१२ | उपदेश किस को ?

सज्जनो, स्थानाङ्ग सूत्र मे एक चतुर्भङ्गी आती है कि 'आदेश दो, परन्तु उपदेश मत दो १। उपदेश दो, परन्तु आदेश मत दो २। आदेश भी दो और उपदेश भी दो ३। तथा आदेश भी मत दो और उपदेश भी मत दो ४। यह चतुर्भङ्गी है, इस पर शास्त्रज्ञो को—शास्त्र के वेत्ताओ को पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए कि चतुर्भङ्गी क्यो वतलाई गई है। गम्भीर चिन्तन करने पर ज्ञात होता है कि इसमे गूढ रहस्य भरा हुआ है। जिस भूमि मे जिस वीज के भले प्रकार से उत्पन्न होने की सभावना हो, वही पर उसका वोना लाभ-दायक होता है। परन्तु जहा वोने पर उसके विनाश की सभावना हो, वहा पर उसे वोने से क्या लाभ हो सकता है ? आपके पास केशर, कस्तूरी, अम्वर आदि वढिया से वढिया वस्तुए हैं,उन्हे आप अच्छी डिव्वी मे वन्द करते हैं और तिजोरी मे रखते हैं। यदि उसे तिजोरी मे न रखकर हीग के डिव्वे मे रख दो, तो बतलाओ वह मिट्टी होगी, या नही ? अवश्य ही मिट्टी हो जायगी। यद्यपि केशर, कस्तूरी आदि वहुमूल्य, वहु-लाभ-दायक एव अति उत्तम वस्तुए हैं, तथापि उनको खोटे स्थान पर रख देने से वे मिट्टी की हो जाती हैं, उनमे न उनकी सुगन्धि ही रहती हैं और न वे फिर कुछ लाभ ही पहूँचा सकती हैं उत्तम वस्तु को अधम स्थान पर रखने से यही नुकसान होता है। दूसरे किसी

उत्तम स्थान पर यदि कोई अधम वस्तु रख दी जाय, तो वह वेकार हो जाती है। जैसे कि शक्कर की किसी भरी वोरी पर पाव भर गीला सोमल रख दिया जाय तो सारी शक्कर जहर वन जायगी, या नही ? जरूर वन जायगी। ये दो वातें आपके सामने आई कि एक तो वुरे स्थान पर अच्छी वस्तु रखी जाय, तो वह वर्वाद हो जाती है। दूसरे अच्छे स्थान पर वुरी वस्तु रख दी जाय, तो वह अच्छी अधिक वस्तु भी विनष्ट हो जाती है। ये दोनो ही वातें वुरी हैं। यदि केशर, कस्तूरी और अम्वर को अच्छे पात्र मे—सोने—चादी के वर्तन मे—रखा जाता है, तो इससे उनकी भी शोभा है और पात्रो की भी शोभा वढती है। इसी प्रकार यदि कोई पुरुष वुरी वस्तु को वुरे पात्र मे रख देता है, तो वह भी ठीक है।

यहा चतुर्भङ्गी मे यह वतलाया जा रहा है कि आदेश दो, परन्तु उपदेश मत दो। कितने ही व्यक्ति इस जाति के होते हैं कि उन्हे आदेश देना ही श्रेयस्कर होता है कि तुम यह काम करो। यद्यपि उपदेश देना अच्छी वात है और देना भी चाहिए। परन्तु जो उपदश मे समझते ही नही हैं, उन्हे उपदेश देना वेकार है। दूसरा भग है—उपदेश दो, परन्तु आदेश मत दो। इसका अभिप्राय यह है कि जो प्रवुद्ध व्यक्ति हैं, उन्हे केवल उपदेश ही देना चाहिए। उनको आदेश देना व्यर्थ है। तीसरा भग है—उपदेश भी दो और आदेश भी दो। और चौथा भग है कि उपदेश भी मत दो और आदेश भी मत दो।

उपदेश क्या है ?

अव हमे पहिले भग पर विचार करना है कि उपदेश दो, परन्तु आदेश मत दो। यह भगवान की आज्ञा है कि जितने भी लघुकर्मी जीव हैं, अच्छे हैं, अपने जीवन का उत्थान करना चाहते है, उनको उपदेश देना चाहिए। उपदेश क्या है ? वस्तु-तत्त्व की व्याख्या करना, उसका स्वरूप वताना, उसे धर्म का मार्ग वतलाना कि दया, दम, त्याग और समाधि यह धर्म का मार्ग है, यही मुक्ति का मार्ग है और प्राणियो की हिंसा करना, झूठ वोलना, चोरी करना, कुशील सेवन करना, परिग्रह सचय करना पाप है, अधर्म का मार्ग है और ससार के वढ़ाने वाले हैं। धर्म-अधर्म की व्याख्या करते हुए समझाना

चाहिए कि हिंसा करना बुरा है और जीवो की रक्षा करना अच्छा है। सच बोलना अच्छा है, झूठ बोलना बुरा है, चोरी करना बुरा है और किसी की वस्तु का बिना दिये नही लेना अच्छा है। स्त्री-सेवन करना बुरा है, ब्रह्मचर्य पालना अच्छा है। अपनी जरूरत से अधिक वस्तुओ का सचय करना बुरा है, और अपनी इच्छाओ को सीमित रखना उत्तम है। इस प्रकार भले—बुरे का ज्ञान करा करके बुरे कामो से लोगो को छुडाना और अच्छे कामो मे लगाना ही उपदेश का फल है। इसीलिए अच्छे और बुरे का उपदेश देकर ज्ञान कराना आवश्यक है। क्योकि जब तक बुरे काम का बुरापन नही बताया जायगा, तब तक अच्छे कार्य का अच्छापन कैसे सिद्ध होगा ? उपदेश अच्छे प्रकार से दो, अच्छी युक्तिया लगाकर दो और जितना सुन्दर तुम्हारे दिमाग मे मसाला है, उसे सुन्दर से सुन्दर बनाकर श्रोताओ के सामने रखो। इस प्रकार से सामने रखा गया उपदेश श्रोताओ के हृदयो मे प्रवेश करेगा और वे उससे आनन्दित होगे। श्रोता लोग अपने अभीष्ट अर्थ के लिए उत्सुक रहा करते हैं। जब उनके सामने उनके मतलब की कोई बात आती है, तब वे उसे हर्ष के साथ तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं। आपको भूख लगी है, ऐसे समय पर यदि कोई मनुष्य सुन्दर जायकेदार भोजन थाल मे परोस कर आपके सामने बाजोट पर रख देवे, तो क्या फिर आप खाने मे पीछे रहेगे। किन्तु बडे हर्ष के साथ उसे खाना पसन्द करेंगे। साथ ही कहेगे कि आज जैसी भूख लगी थी, तदनुकूल वैसा ही बढिया भोजन खाने को मिला है। अच्छी भूख लगने पर यदि अच्छा भोजन खाने को मिलता है, तो उसके रस से रक्त बनता है, रक्त से हड्डी, मास, मज्जा और वीर्य आदि बनता है और इससे आपका शरीर पुष्ट होता है।

भगवान का विशेष रूप से उपदेश देने के दो कारण हैं। जब हम शास्त्र की रूह को देखते हैं – उसूलो को देखते हैं, तब हमे पता चलता है कि भगवान ने समय-समय पर उपदेश देने को ही क्यो कहा ? और आदेश देने के लिए क्यो नही कहा ? भगवान का अभिप्राय यही है कि भद्र व्यक्ति को उपदेश देते रहो, बार-बार समझाते रहो। इस प्रकार समझाते-समझाते वह एक दिन समझ जायगा और सुमार्ग पर आ जायगा।

जैसे कोई बालक शाला मे पढने को गया। उसे अभी क, ख, ग, का भी ज्ञान नही है। परन्तु समझाने वाला अध्यापक उसे हर प्रकार से समझाता है और धीरे-धीरे वह समझ जाता है। और फिर अध्यापक उस बालक को जैसा बनाना चाहता है, धीरे-धीरे वैसा ही बना भी देता है। इसी प्रकार उपदेश को सुनते-सुनते आप लोगो के हृदयो मे भी रुचि उत्पन्न हो जायगी और फिर धीरे-धीरे उन बातो पर अमल भी करने लगेगें।

उपदेश का पात्र भी तो हो ?

अब दूसरा भग है—आदेश दो, परन्तु उपदेश मत दो। आपके सामने कोई कीडी आ गई, कु थुआ आ गया या कुत्ता आकर कुछ खीचने लगा। अब ऐसे समय आप उसे उपदेश देने लगे कि 'ऐसा मतकर, ऐसा मतकर।' तो क्या वह समझेगा ? नही। उस समय तो पू जनी लेकर उसे दूर करना पडेगा। अथवा कोई अपने ऊपर वार कर रहा है तो उसे बचाना पडेगा और हटाना भी पडेगा। ऐसे व्यक्ति के लिए उपदेश क्या काम दे सकता है ? जो अक्खड है, जिसके दिमाग मे केवल भूसा ही भरा हुआ है तो उसको क्या उपदेश देना हितकर होगा ? नही, उसे तो आदेश ही देना पडेगा।

एकबार नाथ द्वारा मे जैन दिवाकर श्री चौथमलजी स्वामी उपदेश दे रहे थे। एक मनुष्य ने प्रश्न किया कि महाराज, आप प्रतिदिन दया दया कहते हैं, सो यह दया क्या है ? जब आप कहते हैं कि जीव कटता नही, सडता नही, जलता नहीं ? वह अजर-अमर है। तब यह मिट्टी का पुतला जले तो क्या ? और इसे मारे तो भी क्या ? आपको तो आत्मा की दया पालनी है, जड की दया नही पालनी है। फिर हमारा दिमाग क्यो पचा रहे हो ? दया किसे कहते हैं, यह बात हमे ठीक तरह से समझाइये। स्वामीजीने उसे अनेक प्रकार से समझाया। परन्तु वह मानने को तैयार ही नही हुआ। तब वहा के हाकिम कर्णसिहजी मेहता ने उठ कर कहा—अन्नदाता, ये बडे नामी पडित हैं। वे काशी मे पढे हुए नही है, ये ओघडपथ की पाठशाला मे पढे हुए हैं। इस पाठशाला मे पढे हुए का उत्तर मैं दूंगा। आप तो उपदेश फरमाओ। जनता आपकी वाणी सुनने के लिए बेचैन हो रही है। इनके प्रश्न

का उत्तर तो मैं दे दूगा। स्वामीजी ने व्याख्यान प्रारम्भ कर दिया। व्याख्यान समाप्त होने के वाद जव वाहिर निकले तो हाकिम साहव ने उस पडित के एक थप्पड मारी। अव वह करे तो क्या करे ? उस वक्त आजका जमाना नही था। परन्तु राजशाही जमाना था। उस समय कोई पूछने वाला नही था। आज तो जरा सी वात कहने पर हर कोई व्यक्ति सामना करने को तैयार है। क्योकि आजके हाकिम धोली आख के धनी हैं और पहिले के हाकिम लाल आखो के धनी थे। हा, तो जव हाकिम साहव ने उसे थप्पड मारी और फिर उससे पूछा कि क्यो, तुझे क्या हुआ ? उसने कहा—हाकिम साहव, हुआ तो वहुत है। मुझे थप्पड़ लगने से दर्द हुआ, दु ख हुआ है। हाकिम साहव वोले– वस, इसी दु ख-दर्द का नाम हिंसा है। यह जो थप्पड लगी और तुझे दु ख हुआ, इसी को हिंसा कहते हैं। किसी को थप्पड नही लगाना, उसे कष्ट नही पहुचाना और उसका मान-सम्मान रखना इसी का नाम अहिंसा है, दया है और करुणा है। उन्होने उससे पूछा कि अव तो समझ मे आगया कि दया क्या वस्तु है और हिंसा-अहिंसा क्या वस्तु है ? वह वोला हा साहव, अच्छी तरह समझ मे आगया। भाई, जैसा आदमी सामने होता है, उसके लिए वैसी ही परोसगारी करनी पडती है।

महाराज साहव सोजत मे एकवार भगवती सूत्र का व्याख्यान कर रहे थे। वही समीप मे एक व्यास जी भी भागवत का वाचन कर रहे थे। श्रोता लोग महाराज साहव के व्याख्यान मे अधिक आते थे और उधर-उनके व्याख्यान मे कम आते थे। यह देख करके व्यास जी मन ही मन कुडने लगे। सो ठीक ही है। नीति भी कहती है कि 'एकावृत्ति पर-वैरम्। अर्थात् एक-सी वृत्ति वालो मे परम वैर होता है। जिनके ज्ञान कम होता है उसे अपने प्रतिकूल वहुज्ञानी को देखकर चिढ आये विना नही रहती है। अत व्यास जी ने सोचा कि इस साधु का माजना विगाडना चाहिए। एक दिन अवसर देखकर— व्यासजी महाराज साहव के व्याख्यान मे आगये और पाच-सात मिनिट तक वैठकर पहिले तो व्याख्यान सुना। वाद मे खडे होकर पूछा– महाराज, आप क्या फरमा रहे हैं। महाराज ने उत्तर दिया—व्यास जी, भगवती सूत्र।

सुनकर व्यास जी बोले—तब तो ठीक है, आपकी तो है भगवती और हमारा है भागवत। दोनो का आपस मे विवाह करा दीजिए। तब महाराज साहब ने कहा—व्यास जी, यदि घर-वर ठीक होवे तो विवाह कराने मे ऐतराज नही है। परन्तु जान-बूझकर कौन अपनी लडकी को खड्डे मे डालेगा ? आप सोचो तो सही कि भागवत है नपु सक और भगवती है स्त्रीलिंग। तो फिर हिजड़ेको कैसे अपनी लडकी परणा दी जावे ? महाराज साहब का उत्तर सुनकर व्यास जी की बोलती बन्द हो गई और वे यह नही कह सके कि भागवत नपु सक लिंग नही है। भगवती तो स्त्रीलिंग है ही। यदि भागवत पुरुषलिंग होवे तो भगवती परणी जावे। व्यास जी ने सोचा कि यहा तो मामला ही उलटा हो गया है। मैं जिस उद्देश्य से आया था, वह सफल नही हो सकता। यहा अब आगे बोलने की गु जायश नही है। भाई, ऐसे द्वेष-भरे हुए व्यक्तियो को उपदेश नही लग सकता है। वे तो सुनकर अर्थ का अनर्थ ही करेंगे। इसलिए वक्ता को भी श्रोता को देखकर यथोचित उत्तर देना पडता है।

एकबार परदेशी (प्रदेशी) राजा घूमने के लिए अपने बगीचे मे गया। वहा पर केशीकुमार मुनिराज व्याख्यान दे रहे थे। राजा उधर से निकला और उनका तेज देखकर चकित-सा वही खडा रह गया ? कुछ देर बाद उसने पूछा—क्या आप जीव और काया दो मानते हैं ? अब केशी स्वामी यदि उससे कहते हैं कि श्रावक, यतनाचर करके आकर बैठो और फिर पीछे पूछो, तो वह राजा रास्ते पर आने वाला नही था। परन्तु केशीकुमार मुनिराज ने कहा कि आओ चोर ! क्योकि चोर कहने से ही वह रास्ते पर आनेवाला था। बस, फिर क्या था ? 'चोर' शब्द के सुनते ही वह सभा मे आया और उनसे 'चोर' शब्द का अर्थ पूछने लगा। केशीस्वामी ने चोर शब्द का वह घन-घोर अर्थ किया कि जिसे सुनकर राजा स्तम्भित रह गया। उसके नेत्र खुल गये। राजा विचारने लगा कि आज तक मुझे पृथ्वीनाथ, अन्नदाता, महाराज कहनेवाले तो लाखो व्यक्ति मिले, परन्तु 'चोर' कहने वाले तो ये एक ही मिले हैं ? इससे ज्ञात होता है कि यह साधु परम निस्पृही है,

खुशामदी नही है। मैं आशा करता हूं कि यह मुझे झुकायेगा। भाई, 'चोर' कहने से उसका दिमाग ठिकाने आ गया।

राजा श्रेणिक से अनाथी मुनि ने कहा कि 'अरे अनाथ, ? जब तू स्वय अनाथ है, तो मेरा क्या नाथ बनेगा ? पहिले तो अनाथ शब्द सुनकर राजा का मुख विगडा। परन्तु जब मुनि ने उसका अर्थ समझाया तो भक्त बन गया, भाई, समझाने के मार्ग भिन्न-भिन्न होते है। यही चतुरभगी का रहस्य है।

हा, तो भगवान कहते हैं कि उपदेश दो, परन्तु आदेश मत दो। उपदेश करने का सर्वत्र विधान है। सामायिक से बढकर इस जीव का कल्याण कारक और कोई नही है। भगवान ने सामायिक का उपदेश तो दिया। परन्तु सामायिक करो, त्याग करो, अमुक करो, तमुक करो, ऐसा उल्लेख कही नही मिलता है। पर आज के समय मे उस उपदेश पर रहे क्या ? ये पचम काल के चेले क्या करेंगे ? तुम्हारे दिमाग मे तो और ही और वस्तुये भरी हुई हैं। तुम्हे तो पूरी शिक्षा और चोट लगे, तब करने को तैयार होओगे ? अन्यथा नही इसलिए ऐसे श्रोताओ को देना पडता है आदेश कि यह काम तुम्हे करना चाहिए और यह नही करना चाहिए।

तीसरा अग है—उपदेश भी दो और आदेश भी दो। जो महान विद्वान है, भव्यात्मा हैं और समझदार पुरुष हैं, उन्हे उपदेश और आदेश भी देना चाहिए। इन्हे उपदेश मिलेगा तो विशेष तत्व की पहिचान होगी। और आदेश मिलेगा तो वे विवेक-पूर्वक यत्नाचार के साथ काम करेंगे।

मूर्ख के आगे मौन !

चौथा भग है—उपदेश भी मत दो और आदेश भी मत दो। जो निठल्ले और निकम्मे हैं। कुछ भी न करना चाहते हैं और न सुनना ही चाहते हैं, ऐमे लोगो के लिए न उपदेश ही हितकर है और न आदेश ही हितकर है। उनके लिए तो आज्ञा दी गई है कि —

'सक्किलेसकरट्ठाण दूरओ परिवज्जए।'

जहा पर क्लेश की सम्भावना हो, वहा उपदेश या आदेश कुछ भी मत दो, किन्तु उस स्थान को दूर से ही त्याग देना चाहिए।

भाइयो, भगवान् ने कैसे कैसे वचनो मे अपनी वचनावली रखी है ? जैसी हमारी रुचि है, वैसी उक्ति को धारण करके अपना कल्याण कर सकते हैं। परन्तु जिनको विवेक ही नही है, आगे-पीछे का विचार ही नही है, उनके लिए क्या किया जा सकता है ? कहा है—

'अक्षर न वाची सके, ताको कहा फारसी ?'

अक्षर तो पढ़े नही, सुने नही और फारसी की पुस्तक लेकर बैठ गये, तो फारसी कैसे आजायगी ? अरे पगले, तू पहिले विद्वान् के पास बैठ और अक्षराभ्यास कर। तब कही पुस्तक पढ सकेगा। कहा है कि—

हाथ ही रोते ही बैठे, अन्धेरहु की आरसी।'

अन्धे के हाथ मे हीरा, माणिक लेकर कहो कि थोडी परीक्षा करके बताओ कि किसमे कितना पानी है ? और कौन-सा नग कितनी कीमत का है ? अरे जब उसकी आखो का पानी ही खत्म हो चुका है, तब वह नगीने का पानी कैसे देखेगा ? कभी नही देख सकता। और भी कहा है—

शका में उलझ रहे, जाने न तत्त्व की बात,
ताको कहा उपदेश, संशय है न टारसी।

जो स्वय ही शका मे उलझ रहा है, उससे यदि कोई शका का समाधान चाहे, तो वह क्या कर सकेगा ? कभी नही कर सकेगा। और भी कहा है—

जो भोग मे फसे हैं कीट के समान
वो क्या भक्तो को दुनिया से तार सी।

अरे, जो विषय-भोग की कीचड मे स्वय कीट-पतग के समान फस रहे हैं, डूबे हुए हैं, वह अपने भक्तो को ससार से कैसे तार देगा ? कभी नही तार सकेगा। कहा भी है—

स्वयं पतन्तोऽन्येषा न हि हस्तावलम्बनम्।

जो स्वय समुद्र मे गिर रहे हैं, डूब रहे हैं, वे पुरुष दूसरो को हस्तावलम्बन नही दे सकते है। महर्षियो ने ठीक ही कहा है—

जहा असावणी नाव जाइ अन्धो दुराहिय।
इच्छंतो पारमागंतु अन्तरा य विसीयइ॥

एक तो पत्थर की नाव, फिर उसका केवटिया अन्धा है, फिर भी यदि कोई उस नाव में वैठकर समुद्र या नदी के पार पहुँचने की इच्छा करे तो वह पार उतार देगी ? अरे, वह तो डुवाएगी ही। उसके तिरने मे वडी अन्तराय है। वह तिरेगा क्या, परन्तु उसका तो पानी मे उलाघना भी नही हो सकेगा। किन्तु जो नाव काठ की है, वडी मजवूत और सुन्दर व्यवस्थित ढग से वनी हुई है, उसमे कही पर भी कोई छेद नही है और नाविक भी वडा चतुर और शक्तिशाली है फिर उसकी नाव मे वैठकर पार जाने मे कोई खतरा नही है। वीच मे चाहे जैसी भवर आ जाय, परन्तु उसको ऐसी मोड याद है कि वह भवर से नाव को वचाकर ले जायगा। वह स्वय भी तिरेगा और दूसरो को भी पार उतार देगा।

भाइयो यह नाव की उपमा क्यो दी गई है ? यह पाप की, आश्रव की नाव है और आश्रव के छिद्रो द्वारा इसमे कर्म रूप पानी आ रहा है, वह भरेगी और वीच गहराई मे जाकर ले डूवेगी। आज ससार मे ऐसे-ऐसे पन्थ प्रकट हुए हैं कि जिनकी वातें सुन करके दातो तले अगुली दवानी पडती है। कितने ही पन्थ वाले उपदेश देते हैं कि जो शरीर का दान दोगे तो तुम्हे गगाजल के समान पुण्य होगा। एक महात्मा जी रामायण सुना रहे थे। उन्होने अपनी ही रामायण वाचना शुरू कर दिया—

कामी गुरु सो कृष्ण समाना क्रोधी गुरु दुर्वासा माना।

अरे भक्तो, तुम्हे गुरु की कुछ भी परीक्षा करने की आवश्यकता नही है, तुम्हे सन्तो के गुण-दोष नही देखना चाहिए। यदि वे कामी हैं, भोगो मे मस्त हैं, तो उन्हें कृष्ण का अवतार मान लेना चाहिए। और यदि गुरु क्रोधी हैं तो उन्हें दुर्वासा ऋषि का अवतार समझ लेना चाहिए। इसलिए गुरु से कभी दोष नही देखना चाहिए। यदि दोष देखोगे तो कालीधार डूव जाओगे। भाइयो, स्वय ही आप लोग सोच लेवें कि यह नाव काष्ठ की है, या पत्थर की है ? अरे, अपने अवगुणो को छिपाने के लिए उनको कृष्ण जैसा वना दिया। जो स्वय गिरे हुए हैं, डूव रहे हैं, वे दूसरो को क्या तारेंगे।

आज आचार-हीन को शिक्षा दो कि महाराज, ऐसे क्यो चलते हो, ऐसा क्यो करते हो ? तो कहते हैं कि तुमको क्या ज्ञान है ? हम शास्त्रो को जानते हैं। भगवान ने सात नय वतलाये हैं। हम पूछते हैं कि भगवान ने जो सात नय वतलाये हैं, वे समार मे डूवने के लिए वतलाये हैं, अथवा पार उतारने के लिए वतलाये हैं। किसी भी वैद्य से मरीज कहे कि हमारी बीमारी दूर करो। तो वह कहेगा कि साहव, सूठ, हलदी, धाना सोना-मुखी का काढा लो। किन्तु मरीज कहे कि वैद्यराज जी, मुझे तो खट्टी छाछ के विना रोटी नही भाती है तो उसको वैद्य क्या कह सकता है कि मेरी दवा लो। वह तो कहेगा कि दवा मे तो खारा, खट्टा गुड, तैल, मिर्च और काचरी की मनाई है। इसी प्रकार सर्वज्ञ केवली जिनेश्वर भगवान क्या ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे भ्रष्टाचार और शिथिलाचार वढ़े ? कहा है —

केवली किम मुख कहै, हिंसा मे धर्मज होइ।
केहरी किम मुख कहै काम मुज्झ कर दो कोइ ॥
कामधेनु किम कहै दूध थी रहो निरासे।
कल्पवृक्ष किम कहै, देन को नहीं मुझ पासे ॥
ऊँचा नीचा ना भजै, रहै न आमन-दूमना।
पतिव्रता पियु ने कहै, म्होटा ने कुणसी मना ॥

वीतराग, सर्वज्ञ, परम करुणावान, जिनेन्द्र भगवान् क्या मुख से कह दगे कि हिंसा मे धर्म होता है। परन्तु पेट भरने वाले तो कह रहे हैं कि विना हिसा के धर्म होता ही नही है। ऐसे हिंसा के विना धर्म सभव नही कहने वाले पेटार्थी है, वे लोग ही ऐसा कह सकते हैं। केवली भगवान् नही कह सकते हैं। वे तो तीन काल मे भी हिंसा मे धर्म नही फरमा सकते हैं। परन्तु उनके वचनो पर चलने वाले ये श्रावक-श्राविका भी नही कहते हैं कि हिंसा मे धर्म होता है। फिर केवली भगवान् हिंसा मे धर्म कैसे फरमावेंगे ? देखो केसरीसिह है और वह तीन दिन का भूखा है, उसको खाना नही मिला है, परन्तु वह दीन-हीन कूकर के समान

किसी के सामने पैरो पर पडकर और अपना पेट दिखला करके यह नही कहता है कि मैं भूखा हू, मुझे खाने को दो। वह मर जायगा, पर किसी के सामने दीनता प्रकट नही करेगा। जो कामधेनु है, उसके पास प्रात, मध्याह्न या सायकाल किसी भी समय जाओ, मगर वह यह कभी नहीं कहेगी कि मेरे थनो मे दूध नही है। यदि उसने नही का नाम ले लिया तो समझो वह कामधेनु नही है, किन्तु अन्य साधारण गाय है। कामधेनु से जब और जितना चाहो—दूध से बर्तन भर सकते हो। इसी प्रकार कल्पवृक्ष के नीचे कोई जावे और कहे कि मुझे अमुक वस्तु दो तो कल्पवृक्ष तुरन्त ही उसको मनोवाछित फल प्रदान करेगा। वह उससे जिस किसी भी वस्तु की याचना करेगा, कल्पवृक्ष बराबर उन सबको देगा। यदि कल्पवृक्ष मनोवाछित वस्तु न देवें और उत्तर मे कहे कि मेरे पास देने को नही तो समझ लो कि वह कल्पवृक्ष नही है, किन्तु कोई साधारण बिना फल वाला वृक्ष है। जिस व्यक्ति की भावनाए ऊची है, विचार उन्नत हैं, वे कभी ओछा या हलका विचार नही करते हैं। न कभी वे चिन्ता लाते हैं, न कभी उदास मुख ही रहते हैं। उनके मनमें कभी कुत्सित विचार या सकल्प-विकल्प भी नही होते हैं। वे तो आनन्द व सुख मे मग्न रहते हैं। जो बडे कहलाते हैं, उनके किसी बात की कमी नही रहती है। जब बडप्पन धारण कर लिया, गुणो मे बडे बन गये, तब उन्हे अपने भीतर छोटापन लाने की क्या आवश्यकता है? बडे पुरुष तो सदा अपना बडप्पन ही कायम रखेंगे। उनको कडुआ कह दो, गाली दे दो, या किसी भी प्रकार का अपमान कर दो, फिर भी वे कभी भी अपने न्याय मार्ग से पीछे नही हटते हैं। किन्तु किसी ओछे व्यक्ति को कोई ओछा शब्द कह दो तो वह तुरन्त उछल पडेगा। परन्तु बडा आदमी नही उछलेगा।

आसोप ठाकुर महेशदान जी मरहठो की लडाई मे काम आ गये और मुकुन्ददास जी खीची भाग गये। तब दरबार ने कहा—कि महेशदान जी लडाई मे खूब लडे, परन्तु मर गये और मरहठो को भगा दिया। अब उनके पीछे कोई नही है और फौज की देख-रेख मुकुन्दसिंह जी ने सभाल

रखी थी, सो उनके नाम आसोप का पट्टा लिख दिया। तब महेशदान जी की स्त्री और लडके को महल छोडकर निकलना पडा। उन्होंने अपने खेत पर छोटी-सी झोपडी बना ली और मा-बेटे वही पर रहने लगे और खेती करके अपना निर्वाह करने लगे। भाइयो, मुसीबत तो सब पर आती है। कहा है—

अजना मेणरेहा सीता, द्रौपदी मे बीतक बहु बीता।
घोर दु.ख सहा मार पीता, उन्होने कष्टो को जीता।

अजना, सीता, द्रौपदी आदि जितनी भी सतिया हो गई हैं, उनके ऊपर क्या मुसीवतें नही आई ? क्या घनघोर सकट नही पडे ? ऐसे अनेक उदाहरण आप लोगो को ज्ञात है। भाई, सोने की परीक्षा तो होती ही है। लोग कसोटी पर कसते हैं और अग्नि मे तपा करके भी देखते हैं। अरे, पापी हत्यारे को क्या कोई कभी कसौटी पर कसता है ? वे क्या कष्ट सहन कर सकते हैं।

हा, तो महेशदान जी की स्त्री और पुत्र झोपडी मे रहकर और खेत पर मेहनत करके अपने दिन निकालने लगे। उनकी स्त्री जाति की क्षत्राणी थी, अत अपने पुत्र को भी क्षत्रिय-पुत्रोचित शिक्षा देकर तैयार करने लगी। किसी समय विल्लू जी नाम का बारठ (चारण) किसी गाव को जा रहा था। जहा वह गया, वहा पर उसका मान-सत्कार नही हुआ। मान-सत्कार के बिना इन कवियो का, बारठो का भोगना (शिर) फिरते देर नही लगती है, सो वह वहा से वापिस लौट आया और उस झोपडी के पास पहुँचा। पहिले जमाने मे व्यक्ति के वेप से ही मालूम हो जाता था कि वह कौन और किस जाति का है। परन्तु आज तो किसी को नही पहिचान सकते हैं। झोपडी पर पहुचते ही बारठ जी को मालूम हुआ कि यह स्त्री है तो कोई राजपूतनी। अत पास पहुचकर उन्होंने उसे बधाया। वह क्षत्राणी बोली—भाई, आप कौन हैं ? इसने कहा—मा सा०, मैं बारठ हूं। क्षत्राणी बोली—अरे बारठ, मारवाड मे क्या कोई उनकी औलाद जीवित है। बारठ बोला—भवानी, इतनी टेडी क्यो हो रही हो ? खोज क्यो गवाती हो। क्षत्राणी

बोली कि मुझको तो मालूम नही होता है कि कोई जीवित है ? बारठ जी जीवित होते तो मेरे बेटे की यह हालत नही होती ? तुम्हे मालूम होना चाहिए कि आसोप का धणी यही है। तब बारठ ने कहा—अरे, आप महेशदान जी की महारानी सा० हो ? उसने कहा—हा मैं ही हूं और यह उनका राजकुमार है। महारानी के आग्रह पर वह बारठ वहीं ठहर गया और भोजन-विश्राम किया। फिर वह वहा से सीधा जोधपुर पहुँचा। दरबार की सेवा मे सब आठो मिसल के सरकार मौजूद थे। अब इस बारठ ने वहा जाकर दरबार को सलामी दी नही, नमस्कार किया नही और हाजरी भरी नही। बल्कि दरबार की ओर कुछ पीठ करके खडा हो गया। यह देखकर सरदारो ने कहा कि बारठ जी, क्या आप कभी दरबार मे आये हुए नहीं हैं ? ये चुप रहे और कुछ उत्तर नही दिया। तब सरदारो ने कहा कि क्या कम सुनते हो ? ये फिर भी चुप रहे। तब एक सरदार ने उठकर कहा कि थोडे ऐसे सीधे हो जाओ। तब बारठ बोला—मैं राजगद्दी के धणी को पीठ नही देता हू। परन्तु मैं तो गद्दी के अन्धे को पूठ देता हू। भाइयो, भरे दरबार मे ऐसा कहने पर क्या कोई जीवित रह सकता है ? तब दरबार ने कहा कि यह पागल कहा से आगया ? यह सुनते ही बारठ ने दरबार की ओर पीठ पूरी ही फेर दी और कहने लगा—सुनो सरदारो, मैं यहा एक सलाह देने को आया हूं, हाजरी भरने को नही आया हूं। आप राजपूत हैं और मैं बारठ हू। मेरा कर्त्तव्य है कि जहा राजपूत चूकें, वहा जा करके मैं उन्हे सावचेत करू। सो मैं सावचेत करने को आया हू। आप सब लोग कान खोलकर सुन लें कि—

मर जो मती महेष ज्यूं, राड बीचे पग रोप।
झगड़ा मे भागा जिके, आछी लई आसोप॥

वह कहता है कि इस जाति गादी के वास्ते कोई लडाई मे मरना मत और बच्चो को रुलाना मत। क्योकि जो लडाई मे पैर रोपकर, आसोप के ठाकुर के समान मरता है उसका पट्टा जप्त हो जाता है। परन्तु जिसने लडाई मे पीठ दिखाई और रण छोडकर भाग गया, उसको इनाम मे आसोप

मिला है। सो रण से जो भागे, उसकी तारीफ है, जो रण मे रुके, शत्रु से लडे और उन्हे मारता हुआ मरे, उसकी तारीफ नही है। दरवार ने यह सुना तो सोचा कि यह झूठी वात नही कह रहा है, परन्तु सच कह रहा है और मेरा भाई लडाई में मारा गया है। तव दरवार ने कहा—वारठ जी इधर आओ। लोग सोचने लगे कि अब तो इसकी मौत आ गई। किन्तु वारठ जी को कोई भय नही था। वह जानते थे कि ये क्षत्रिय है, ये ब्राह्मण गाय, वच्चे और स्त्री के ऊपर हाथ नही उठाते हैं। यदि उठाने वाले होते तो मुझे अपने पास बुलाते नही। वारठ जी दरवार के पास गये। दरवार ने पूछा कि वारठ जी, क्या वोल रहे हो ! वारठ जी को जो सच्चा हाल सुनाना था, वह सव सुना दिया। दरवार ने भी सव शान्ति से सुन लिया। फिर पूछा कि यह वताओ कि महेशदान जी के कोई औलाद है क्या ? वारठ जी ने कहा—अन्नदाता, वारह वर्षों से तपस्या कर रही है। यह सुनकर दरवार क्रोधित होकर वोले—कि ऐसा नालायक वह कौन है जिसने मुझसे कहा कि उनके कोई औलाद नही है। यह भूल मेरी नही है। मुझे यह वताया गया कि महेशदान जी के कोई औलाद नही है। और कहा कि मुकुन्दसिंह को—जिसने लडाई की देख-रेख की—उसे आसोप का ठिकाना दे दिया, अव वोलो सरदारो ! महेशदान जी के क्या कोई सतान नही है ? सवने एक स्वर से कहा—हे अन्नदाता ! यह सुनकर दरवार ने कहा—आप लोगो ने इतने वर्षों तक अधेरे मे रखा। और जिसने मेरी लाज रखी, उसके स्त्री और वच्चे रुलते फिरें, यह कहा का न्याय है ? यह तो वहुत अनुचित वात हुई है। अव मुकुन्ददास जी की जागीर जप्त की जाती है और वह महेशदान जी के लडके को दिलाई जाती है। उसका नाम है रायसिंह जी। दरवार ने कहा कि जो मैं रायसिंह जी को पट्टा दूगा, उस पर आसोप की साख लिखी जायगी, वह परवाना सही समझा जायगा, अन्यथा नही। तथा उस विल्लू जी चारण को जिसने दरवार को गादी का अन्धा कहा था, उसे दरवार ने लाख रुपये का पट्टा दिया और कहा कि

तूने मेरी आखें खोली हैं। देखो—एक चारण ने दरबार से ऐसी बात कह दी, तो क्या वह मामूली बात थी। परन्तु वे इस बात को जानते थे कि यह कडुआ बोल रहा है तो इसके हृदय मे मेरे प्रति प्रेम है मेरे लिए दर्द है और इसीलिए यह ऐसा बोल रहा है। भाई, जीवन तो सब चाहते हैं, मरना कोई नही चाहता है। एक अदना आदमी को यदि अन्धा कह दो तो वह भी प्राण लेने को उतारू हो जायगा और कहेगा कि इसने मुझे ऐसा कह दिया।

प्रकृत मे आदेश और उपदेश भगवान की वाणी है। भगवान् यह कभी नही कहते कि तुम शिथिलाचार का पोषण करो और इस ओर कदम बढाते हो तो माफ हो जायगा। भाइयो, किये हुए कर्मो का फल तो भुगतना ही पडेगा। कहा भी है कि—

> **अवश्य ह्यनुभोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम्।**
>
> **तथा च—**
>
> **कडाण कम्माण ण मोक्खअत्थि।**

किये हुए कर्मो का फल भोगे बिना छुटकारा नही है, किये हुए भले-बुरे कर्म अवश्य ही भोगने पडते हैं। इसलिए भगवद् वाणी पुकार-पुकार करके उपदेश दे रही है कि भाइयो, कर्म मत बाँधो। कर्मों से बचते रहो, उनके भार से हल्के रहो तो मार्ग अच्छा मिलेगा। कहा है कि—

> **जाकी भव थिति पक गई, ताको यह उपदेश।**
>
> **वीतराग वाणी विषै कूर नही लवलेश।**

वीतराग की वाणी मे कूट-कपट या कूडा कर्कट कुछ नही है। परन्तु जिन भव्यात्माओ की भवस्थिति पक गई है, उनके ही यह लगती है और उन पर ही इसका असर होता है। परन्तु जिनका ससार परिभ्रमण अभी बहुत शेष है, जो दुष्कर्मी हैं और दीर्घससारी हैं, उनको भगवद्-वाणी नही लगती है नही रुचती है। फिर आज के मनुष्यों की तो ताकत ही

क्या है ? जैसे जमाली ठिकाने गया, इधर देखो तो भगवान का जमाई और उधर शिष्य था। इससे बड़ा और सम्बन्ध क्या हो सकता है ? परन्तु जिनके घट में सम्यक्त्व नहीं है, उनको उपदेश लगना बहुत कठिन है। उपदेश होता है हलुकर्मी-लघुकर्मी जीव के लिए, बहुकर्मी या दीर्घसंसारी पुरुष के लिए किसी का कोई भी उपदेश कारगर नहीं होता।

वि० सं० २०२७ भाद्रपदकृष्णा ५
जोधपुर

१३ | आत्मदर्शन का साधन–धर्मध्यान

उग्ग तवयरणकरणेहिं झाण गया,
धम्मवरझाण सुक्केक्क झाण गया।
णिब्भर तवसिरीए समालिगया,
साहवो ते महामोक्खपहमग्गया ॥

इस स्तुति मे साधु महाराज का स्मरण करते हुए कहा गया है कि वे उत्कृष्ट धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान मे निमग्न रहते हैं। शुक्लध्यान तो श्रेणीपर चढने पर होता है और वह अन्तर्मुहूर्त मात्र मे ही कर्मो का क्षय करके जीवको परमात्मपद प्रदान करता है। उसकी प्राप्ति के लिए पहिले धर्मध्यान का होना आवश्यक है। धर्मध्यान यह एक शब्द है और इसकी वाच्यभूत वस्तु दो हैं। धर्म वस्तु भिन्न है और ध्यान वस्तु भिन्न है। इन दोनो के सम्मेलन से यह धर्मध्यान शब्द बना है। इनमे प्रथम वस्तु है धर्म। धर्म कब प्राप्त होता है ? जब कि आत्मा सरल हो। यदि कपडा स्वच्छ श्वेत है तो उस पर आप जो भी रग चढाना चाहे, वही चढ जायगा। परन्तु जो कपडा रगा हुआ है, उस पर जो रग चढ सकता है, वही चढ़ेगा आपकी इच्छा के अनुसार मन चाहा रग नही चढ सकता है।

धर्मोपदेशक कैसा हो ?

जो व्यक्ति यह विचार कर रहा हैं कि मैं धर्म का बड़ा प्रचारक हू,

वडा उपदेशक हू और कथावाचक हू । इससे वढकर धर्म क्या होगा ? जो ऐसा समझता है तो समझना चाहिए कि वह दीपक का साथी है । दीपक जो होता है वह दुनिया मे प्रकाश फैलाता है, परन्तु उसके नीचे अधेरा ही रहता है । इसी प्रकार जिनके भीतर निजमे अज्ञान का अन्धकार भरा हुआ है, जिनमे देव, गुरु और धर्म के प्रति श्रद्धा नही, और अपने आप मे लेभग्गू हैं । दो वातें आपसे ली और दो वाते उनसे ली और उनको लेकर यह सोच लेवे कि मैं दुनिया मे पडित वन गया ? तो हे भोले जीव, क्या इस प्रकार सूठ और हल्दी की गाठे ले करके पसारी कहला सकता है ? जव कि पसारी के पास हजारो प्रकार की वस्तुएँ होती हैं । पसारी की स्मरणशक्ति कितनी तेज होती है कि यदि उससे पूछा जाय कि काली मिर्च है ? तो वह कहेगा—हा है । काली मिर्च, दाल चीनी, चावल, तज, पत्रज, लोग, इलायची आदि जो भी आप पूछेंगे, वह एक ही उत्तर देगा कि हा है । दुकान मे रखी सैंकडो-हजारो वस्तुओं की उसे याद है, और प्रत्येक का अलग-अलग भाव भी मालूम है । ग्राहक आकर जो भी वस्तु मागता है, वह तुरन्त उसी स्थान से उठा करके उसे देता है और तोल के हिसाव से दाम ले लेता है । यदि कोई आदमी दवाइयो का नुस्खा लेकर आया और पसारी से कहा कि ये दवाइया दे दो । भाई, एक पसारी आधा वैद्य होता है, क्योकि उसके पास सैंकडो प्रकार के नुस्खे आते रहते हैं । वह ग्राहक का नुस्खा देखता है, यदि उसमे कोई वस्तु लिखने मे रह गई है तो वह झट कह देगा कि नुस्खा ठीक नही है । इसमे अमुक वस्तु लिखने से रह गई है, अथवा अमुक वस्तु अधिक लिखी गई है । वह रोग को पहिचान करके नुस्खा भी वना देता है । वह रोगी की प्रकृति का भी ज्ञाता होता है । इस प्रकार की जानकरी होने से ही वह पसारी कहलाता हैं । यदि उसे सर्व प्रकार की वस्तुओ की जानकारी नही है, तव वह पसारी नही कहा जा सकता ।

इधर-उधर से दो चार वाते जान लेने ही वाला पसारी की भाति अधूरा है, दवाओ के नाम और नुस्खे जानने मात्र से कोई वैद्य नही वनता, वैसे ही दो-चार दस ग्रथो के नाम व पद रट लेने मात्र से ही विद्वान नही कहा जा

सकता है। कोई विद्वान् के पास भी हजारो प्रकार की वस्तुओ का ज्ञान होता है और लाखो का उत्तर दिमाग मे उपस्थित रहता है। कोई भी व्यक्ति, किसी भी समय किसी भी प्रकार का प्रश्न आकर पूछता है, तो वह तुरन्त उसके समुचित आगमोक्त उत्तर देता है और उसकी शका का समाधान कर देता है। उस समय यदि वह पोथी खोल कर उत्तर देता है तो पोथी की बात थोथी रह जाती है। परन्तु यदि पूछने के साथ ही प्रश्नकर्त्ता को समुचित समाधान मिलता है तो उसे सन्तोष प्राप्त होता है। किन्तु जो पल्लवग्राही पाण्डित्य वाले हैं, जिनके पास जड-मूल, शाखा-प्रशाखा रूप तत्त्व ज्ञान कुछ भी नही है, केवल इधर-उधर के वृक्षो से उडे हुए पत्रो का सचय कुछ कर लिया है और उसके बल-बूते पर ही वह अभिमान करे कि मैं ही पडित हू, तो समझ लो कि वहा पाण्डित्य कुछ भी नही है। जहा पर अभिमान है—मान कषाय—है, वहा पर धर्मध्यान कहा से हो सकता है ? धर्म तो सरल हृदय मे ही ठहर सकता है, कोमल चित्त मे ही उत्पन्न हो सकता है और फल-फूल सकता है। कठोर हृदय मे धर्म नही ठहर सकता, न उसमे फल-फूल ही लग सकता है।

जो व्यक्ति धर्म का जिज्ञासु होता है तो उसकी यह भावना रहती है कि यदि मुझे कही से कोई धर्म की बात मिले तो मैं उसे ग्रहण करू। नई बात उसे तभी मिलेगी, जबकि वह जिज्ञासु होगा। वह यदि प्राप्त निमित्त से नई बात ग्रहण करेगा, तो उसके हृदय मे वह फूलेगी-फलेगी। जो धर्म का प्रेमी है, वह जहा से और जिस व्यक्ति से जो बात ग्रहण करेगा, तो उसके लिए वह उसका कृतज्ञ रहेगा और कहेगा कि मैंने अमुक गुरु से यह बात जानी है, तो समझिये कि उसके हृदय मे गुरु भाव है। किन्तु जो दूसरो से ज्ञान को प्राप्त करके भी उनके प्रति कृतज्ञभाव नही रखते हैं और दूसरो से ली बात को स्वय ही अपने दिमाग की उपज बतलाकर उसके मालिक बनते हैं, समझो कि उनके भीतर धर्म की वासना भी नही है।

मैं एक जगह व्याख्यान दे रहा था। प्रकरण मे कुछ भागे आये। मैंने उनका स्वरूप बताया। एक अन्य सम्प्रदाय के महात्मा जी सुन रहे थे सो

उन्होने उन भागो को हृदयगम किया। परन्तु कुछ कसर रह गई। यह तो हिसाव है,वरावर मिलान मिले तो ही ठीक हिसाव वैठता है। मैंने आहार पानी किया। वे महात्मा जी आकर वोले—स्वामी जी, ये भागे आपने ऐसे कैसे कह दिये ? मैंने कहा कि कैसे कह दिये ? कैसे कहना चाहिए, आप फरमाओ ! वोले—आपने यो कैसे कह दिया ? मैंने कहा कि यदि मैं चूक गया और मिलान नही वैठा है तो आपको कहा शका खडी हुई है ? उनका मतलव था कि मैं दूसरी वार कह दू तो उनको वे भागे ठिकाने वैठ जावें। इस प्रकार हम इनसे यह चीज भी ले लेवें और इनका उपकार मानने की भी जरूरत नही रहे। इस प्रकार उन्होने दो-चार वार आटा खाया। तव मैंने उनसे कहा कि ऐसे आटा मत खाओ। परन्तु साफ कहो कि यह चीज ऐसी नही किन्तु ऐसी है। भाई, हम तो व्यापारी हैं। जो वस्तु जहा से मिलती है, उसे वहा से ले लेते हैं। तो कहा है कि—

गीते नादे पठे वादे—सग्रामेषु सुसग्रहे।
आहारे व्यवहारेषु-प्राप्ते लज्जा न धारयेत् ॥१॥

गीत तो गाने को तैयार हो गये और राग याद नही है। जिसे वह राग याद है, यदि उसकी गरज नही करे तो वह स्वर घर मे वैठेगा क्या ? वाचने को तैयार हो गये और मच पर जाकर कहे कि मुझे तो वोलने मे शर्म आती है, तो भाई, फिर यहा पधारे ही क्यो ? पढने को वैठे, अव आचार्य तैयार और सव सामग्री भी तैयार है। फिर पढने वाला कहे कि मुझे तो पढने मे लाज आती है तो भाई मत पढो। युद्ध मे किसी ने छेड दिया और सुभट कहे कि मुझे तो मुकाविला करने मे शर्म आती है तो सुभटपना क्या रहा ? किसी से चर्चा करने को वैठ गये और फिर चार लोगो के सामने कहने लगे कि मुझे तो चर्चा करने मे शर्म आती है तो वह फिर चर्चा नही कर सकता। इसलिए जिज्ञासु व्यक्ति को सदा उत्तम उत्तम वस्तुओ का सग्रह करना चाहिए। सभी वातें एक स्थान पर नही मिलती हैं, अनेक स्थानो पर मिलती हैं। यदि इसमे भी लाज रखोगे तो कुछ भी ज्ञान का सग्रह नही कर सकोगे।

विनय से विद्या

हा, तो मैंने उन महात्मा जी से कहा कि हमे किसी प्रकार की कोई उज्र नही है, आप फरमाइये। तव उन्होने कहा कि मुझे याद नही है। तव मैंने कहा—स्वामी जी, यह जैन मार्ग है विनय का। कपटाई का नही है। आप कपटाई के साथ मेरी भूल वताकर स्वीकार कराना चाहो तो मैं भी कोई जाति का कुम्हार नही हू। और आपको गोते खाने की आवश्यकता नही है कि यो नही। यह वात सुनते ही उनके पैर फूल गये और यथार्थ वात को स्वीकार कर लिया। भाई यथार्थ वात यह है कि यदि हम किसी से कोई वात लेना चाहे, तो विनय के साथ ही ली जा सकती है, अकडाई के साथ नही ली जा सकती है। विनय से, विनम्रता से हम किसी से भी काम ले सकते हैं,परन्तु अकडाई या कपटाई से नही ले सकते हैं। यदि किसी वात को सुधार पर लाना है तो अपने को ऐसी प्रकृति वनानी पडेगी जिससे कि किसी को कोई अडचन पैदा न होवे।

वम्वई मे लाल तालाव है, पानी काम मे आता है। लोग सुपात्र भी होते हैं और कुपात्र भी होते हैं। आपके जोधपुर मे भी रामसर और पद्म-सर हैं। इनका पानी पीने के काम आता है। तो क्या वहा टट्टी जाने वाले भी हैं, या नही ? हैं। इसी प्रकार वम्वई के उस लाल तालाव मे भी लोग टट्टी जाने लगे। सरकार के पास शिकायत पहुची तो लोगो का चालान भी होने लगा। परन्तु लोग तो टेढ़े हैं। उन्होंने टट्टी जाना वन्द नही किया। तव महात्मा गाधी का वहा जाना हुआ। उन्होने कहा कि रिपोर्ट क्यो करते हो और हाका भी क्यो करते हो ? मैं इन्तजाम कर दूगा। अव वे महात्मा जी वडे सवेरे ही एक हाथ मे वालटी और दूसरे मे झाडू लेकर लाल तालाव पर जा पहुचे। अव जो लोग वहा टट्टी जाने लगे तो वे उसे साफ करने लगे। लोगो को ज्यो ही इसका पता लगा तो आकर कहने लगे – वावा सा० यह क्या कर रहे हो ? उन्होंने कहा—मैं ठीक ही तो कर रहा हू, क्योंकि यह स्थान उत्तम है, पानी पीने का स्थल है, अत यहा पर लोगो का टट्टी जाना मुझे पसन्द नहीं है। आप लोग खूब जाओ, मैं आपकी सेवा करने को

तैयार हू। उन्होंने इस प्रकार वहां पर दो-तीन दिन सफाई की। जिसका परिणाम यह हुआ कि आज तक वहा कोई भी टट्टी नही जाता है। भाई, जब उन महात्मा जी ने स्वय यह काम हाथ मे लिया और मान को हटाया तब जा करके सुधार हुआ। यदि हम स्वय तो सुधार करना चाहे नही और दूसरो की आलोचना करें और टीका-टिप्पणी करें तो फिर काम कैसे चलेगा?

विवेकहीन भी अधे के समान

दुनिया मे लोग पूछते है कि ज्ञानी अधिक हैं, या अज्ञानी? अब आप क्या उत्तर देंगे? आपको यही कहना पडेगा कि अज्ञानी अधिक हैं। एक वार वादशाह अकवर ने वीरवल से पूछा—कि वीरवल, दुनिया मे अन्धे अधिक हैं, या सूझते अधिक हैं? पूछने वाले का मुख खुला है, वह कुछ भी पूछ सकता है। तव वीरवल ने उत्तर दिया—जहापनाह, अन्धे अधिक हैं औरसूझते कम हैं। अकवर वोला—अरे वेवकूफ,यह क्या वात कर रहा है। अरे, अन्धे तो गिनती के इने-गिने ही मिलते हैं और सूझती तो सारी दुनिया है ही। यह हम प्रत्यक्ष मे देख रहे हैं। परन्तु तूने यह कैसे कहा कि अन्धे अधिक हैं। वीरवल ने कहा, वादशाह सलामत को किसी दिन वता दूगा। एक दिन वीरवल लाल किले के दरवाजे के सामने फटे-पुराने जूते लेकर वैठ गया और पास मे एक रजिस्टर भी रख लिया। वह स्वयं जूते सीने लगा। अब जो भी किले के भीतर जाता है, अथवा वाहिर निकलता है, तो वह पूछता है कि वीरवल सा०, आप क्या कर रहे हैं? ऐसा कहते ही उसका वीरवल रजिस्टर के भीतर अन्धो की सूची मे लिख देता है। इस प्रकार हजारो आदमी आये और गये, सभी ने यही प्रश्न किया कि वीरवल, क्या कर रहे हो? वीरवल उन सवके नाम अन्धो की सूची मे लिखता गया। थोडी देर के वाद वादशाह की सवारी भी आ गई। उन्होने भी वही पूछा कि वीरवल, क्या कर रहे हो? वीरवल ने वादशाह का नाम भी अन्धो की सूची मे लिख लिया। आने जाने वालो मे वहुत ही कम लोगो ने नही पूछा कि क्या कर रहे हो। वल्कि उन्होने यही कहा कि वीरवल साहव, आपको

यह काम करना शोभा नही देता। वीरवल ने ऐसे लोगो का नाम सूझतो मे लिख लिया। दोनो सूचिया लेकर वीरवल दरवार मे गया और खडे होकर वोला—जहापनाह, अव आप इम रजिस्टर मे मुलाहिजा फरमा लीजिए कि अन्धे अधिक हैं, या सूजते ! वादशाह ने रजिस्टर मे सख्या देखी तो मालूम हुआ कि अन्धे अधिक हैं और सूझतो की सख्या कम है। और आश्चर्य की वात यह थी कि अन्धो की सूची मे वादशाह का नाम भी लिखा हुआ था। यह देख वादशाह ने पूछा कि क्या यह सख्या गलत है ? वीरवल वोला—नही जहापनाह, सख्या विलकुल ठीक है। तव वादशाह बोला—अरे, तूने तो मुझे भी अन्धो मे लिख दिया ! वीरवल ने कहा—आप अन्धे हो गये होगे, तभी आपका नाम अन्धो मे लिखा गया होगा। वादशाह ने पूछा कि मैं अन्धा कैसे हो गया होऊगा ! वीरवल वोला—वादशाह सलामत, आपने मुझसे पूछा कि क्या कर रहे हो ? उस समय क्या आपकी आखें नही थी ? आप देख तो रहे थे कि मैं जूते सी रहा था। फिर भी आपने पूछा कि क्या कर रहे हो ? यदि सूझते होते तो ऐसा कैसे पूछते ?

भाइयो, कहानी का सार यह है कि आखो के होते हुए भी जिनके विवेक नही, वे मनुष्य अन्धो की श्रेणी मे ही हैं। सयम भी जीवन सुधार का मार्ग है और धर्म भी सुधार का मार्ग है। जो धर्मात्मा होता है, वह अभिमानी या अहकारी नही होता है। उसे कुछ भी कह दो, तो भी वह विचार नही करता है। आपने आज एक क्रोधी के सामने क्रोध किया तो जीता कौन ? क्रोधी जीता, या आप जीते ? उस क्रोधी का प्रभाव आपके ऊपर पड गया, अत वह जीता और आप हारे। यदि क्रोधी के क्रोध करने पर आपने शान्ति धारण कर ली तो आप जीते, क्योकि उसका प्रभाव आप पर नही पडा। वल्कि आपका प्रभाव उस पर पडता है कि देखो—मैंने इतना भला-बुरा कहा, तो भी इन्होने मुझे कुछ भी नही कहा, प्रत्युत शान्ति रखी। यदि क्रोधी के द्वारा कुछ भी यद्वा-तद्वा कहे जाने पर कोई कहे कि उसने हमे ऐसा कह दिया तो क्या आप लखनऊ के नवाव हैं ? अरे, आज तो लखनऊ के नवावो के लडके भी वही पर तागा चलाते दिखाई देते हैं।

जो पहिले राजा-महाराजा थे, और जिनके लडके राजा साहब कहलाते थे, वे भी आज छोटे से छोटा काम करने लगे है तो क्या छोटे कहलायेंगे ? नही, नहीं कहलावेंगे। इसलिए किसी के द्वारा छोटा कह दिये जाने पर भी हमे न क्रोधित ही होना चाहिए और न उसे ही भला-बुरा कहना चाहिए।

रामचन्द्र जी समदरिया श्री जयमल जी महाराज के निकटवर्ती थे। जयमल जी और रिडमल जी दो भाई थे। जिसमे से रिडमल जी के परिवार वाले नानणे में हैं और अनुयायी हैं जयमल जी मा० मा० की सप्रदाय के। वे बैठे हुए थे। तब उन रामचद्रजी ने मुझसे पूछा कि साधुपना कब लिया ? और क्या-क्या पढे हो ? तथा 'साधु जी ने वन्दना नित नित कीजे' यह आता है, या नही ? मैंने उत्तर दिया कि कुछ आता है और कुछ नही आता है। तब रामचन्द्र जी ने कहा– अरे महाराज, साधु जी की वन्दना भी नही आती है, तो क्या पढा है ? मैंने कहा—भाई, चाहे जो समझ लो। इतने मे उनके भतीजे गजराज जी आये और बोले क्यो माथा फोड कर रहे हो ? इनका ज्ञान यहीं तक हैं। ये तो इसको ही खास ज्ञान समझते है तो इनके कहने मे गलत क्या है ? अब ये जो बात पूछें और मैं नही बताऊ तो कहेगे कि महाराज क्या पढे हैं ? कोई साधु चौदहपूर्व का तो पाठी है और उनसे पूछा जाय कि नवकार मत्र आता है, या नही ? तो इसमे पूछने की बात ही क्या है ? यह तो आता ही है। कोई कुछ भी पूछें, सामने वाले को—सुनने वाले को—थोडी गम्भीरता रखनी चाहिए। कोई कहता है कि उसने हमे ऐसा कह दिया ? अरे भाई, तुम किस बाग की मूली हो ? अरे, प्रधानमत्री इन्दिरा गाधी को विरोधी पार्टी वाले प्रतिदिन कितने और कैसे-कैसे शब्द कहते हैं और आये दिन काले झण्डे दिखाते हैं। पर वे क्या इसका विचार करती हैं ? स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद पन्द्रह अगस्त को दिल्ली मे लाल किले के ऊपर हमेशा झण्डा फहराया जाता है। इस वर्ष उन्हे पहुचने मे दो मिनिट की देरी हो गई तो दूसरे ने झण्डा फहरा दिया। तब सब कहने लगे कि इन्दिरा जी ने क्यो नही फहराया ? यह तो अपशकुन हो गया। अब ये अधिक दिन प्रधानमत्री के पद पर नही रह सकती है। भाई, यह बताओ

कि क्या तुमको पता है कि वे क्यो नही पहुची ? कोई आवश्यक कार्य हो गया होगा जिससे वे पहुच न सकी। पर इतने मात्र मे लोगो ने कह दिया कि इसके हाथ से झण्डा गया। यदि लोगो की जवान पर अकुश रहे, तो वे विचार कर कहेगे। कहने वाले कुछ भी कहा करें, हमे अपने भीतर थोडा विवेक रखना चाहिए और गम्भीरता से हर वात का विचार करना चाहिए।

धर्म की परिभाषा

प्रकरण चल रहा है धर्मध्यान का। धर्म शब्द की परिभाषा लोगो ने—विभिन्न मतावलम्बियो ने अनेक प्रकार से की है। मगर धर्म शब्द ध्री धातु से वना है, तदनुसार अर्थ होता है **धरति ध्रियते, धार्यते अनेन वा धर्म.।** अर्थात् जो हमे धारण करे, वह धर्म है। इसी प्रकार ध्यान शब्द 'ध्यै चिन्तायां' धातु से वना है। **ध्यायते इति ध्यानम्।** जो चितवन किया जाता है, वह ध्यान कहलाता है। इस प्रकार धर्म और ध्यान शब्द की व्युत्पत्ति भिन्न-भिन्न है। धर्म क्या वस्तु है, इस वात के विचार को, चितवन करने को धर्मध्यान कहते हैं। धर्म का लक्षण कहा गया है कि **'यतोऽभ्युदयनि.श्रेयस सिद्धिर्भवति स धर्म'**। अर्थात् जिससे अभ्युदय (सासारिक सुख) और नि श्रेयस (मुक्ति सुख) की सिद्धि या प्राप्ति होती है, वह धर्म है। इस प्रकार से सुख पाने का मूल आधार है—हृदय की स्वच्छता और सरलता। जव तक हृदय स्वच्छ नही होता, नाना प्रकार के विकल्पो से विमुक्त होकर सरल नही वन जाता है, तव तक धर्म का प्रादुर्भाव नही हो सकता है। धर्मरूपी अमृत को हृदय रूपी कमल मे धारण किया जाता है। धर्म धारणा करने के आठ गुण श्रीमद् स्थानाग सूत्र मे वतलाये गये हैं। जिसमे वे आठ गुण होवें तो समझना चाहिए कि वह धर्म का रागी है, उसके हृदय मे धर्म का वात्सल्य और प्रेम है। जिसमे ये आठ गुण नही हो तो समझना चाहिए कि वह धर्मानुरागी नही है और धर्म से अभी वह वहुत दूर है। वे आठ गुण ये हैं—

करुणा वत्सल सज्जनता, आतम निन्दा पाठ।
समता दमता विरागता, धर्म राग गुण आठ ॥१॥

मनुष्य के भीतर सबसे पहिले करुणाभाव होना चाहिए। अर्थात् सर्व-प्राणियो को अपने समान समझे, उनको अपना कुटुम्बी माने, उनके दुख को अपना दुख समझ करके उसे दूर करने का प्रयत्न करे। प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति चाहे और स्वप्न मे भी दूसरे को दुख पहुचाने की भावना न रखे। अपनी निन्दा करे, अपनी भूलो को देखे, और उन्हें निकालने का प्रयत्न करे। दूसरो के दोषो को न देखे, न सुने और न कहे। महात्मा गाधी कही पधारते, किसी काम को हाथ मे लेते और सफलता नही मिलती तो कहते कि मेरे भीतर कोई कमी है, इससे मेरी बात का लोगो पर प्रभाव नही पडा है। वे अपनी भूल को देखकर आत्मशुद्धि के लिए प्रायश्चित स्वरूप उपवास करते और कमी का दण्ड लेते थे। इसलिए आत्मशुद्धि के लिए आत्म-निरीक्षण करना बहुत आवश्यक है। मनुष्यो को आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिए और अपनी भूल दृष्टिगोचर होते ही अपनी निन्दा करनी चाहिए। तथा हृदय मे समभाव होना चाहिए। जैसे **'सागर पड्या सो लीन'** जो भी वस्तु आकर समुद्र मे पडी, वह उसी मे लीन हो जाती है। वैसे ही जो भी बात समय पर भली-बुरी आ जावे तो उसे आत्मसात् कर लेवे, परन्तु ऊपर परिवर्तन न दिखाई देवे। तथा इन्द्रियो का दमन करे। इसी प्रकार आत्मा मे उद्योत और उत्साह होना चाहिए। ये आठ गुण जिस व्यक्ति मे हैं, वही धर्म का अनुरागी है। जिसने अभी धर्म तो नही धारण किया है, परन्तु धर्म का अनुरागी-प्रेमी बना है और उसमे उक्त आठ गुण आ गये है तो वह धर्मात्मा ही समझना चाहिए।

जो व्यक्ति औरो को तो उपदेश देवे। परन्तु उनसे पूछो कि सामायिक भी करते हो? तो कहता है कि मुझसे सामायिक नही बन पाती है। तो भाई, क्या कर्म और कमाई ही बन आती है। कोई कहे कि सामायिक मे कुछ नही रखा है। तो मैं उनसे पूछता हू कि क्या निन्दा करने मे, अग्नि का आरम्भ करने मे रखा है? धर्म किस मे रखा है। अरे, तुमसे सामायिक होती नही, सवर होता नही, त्याग और प्रत्याख्यान होता नही। फिर ऐसे

ही पच वनने को तैयार हो गये ? तो भाई, ऐसे काम नही चल सकता है। पहिले स्वय रास्ते पर चलो और चलते-चलते जव रास्ते का आनन्द तुम्हे आ जाये, तव दूसरो को भी आनन्द दो। परन्तु जो लोग स्वय तो धर्म-साधन करते नही और करने वालो से कहे कि इसमे क्या रखा है ? अरे, लोगो को इकट्ठे कर लिए और अपने पक्ष के कुछ लोग वुला लिए और लगे अपने स्वार्थ-सिद्धि के भाषण देने तो क्या इसमे ही सिद्धि है ? ये काग्रेस की पार्टिया आती हैं और वडे-वडे नेता भाषण देते है तो लोग हजारो की सख्या मे इकट्ठे हो जाते हैं। वे लोग जव सभा-मच पर अपनी वात रखते हैं तो सभी के मस्तिष्क मे यही आ जाता है कि ये सही कह रहे है। जव वे लोग सभामच से चले जाते हैं और दूसरी विरोधी पार्टी वाले भाषण देने लगते हैं तो उसे सुनकर वे ही लोग कहने लगते है कि वे लोग ठीक नही कह रहे थे, किन्तु ये लोग ठीक कह रहे हैं। भाई, सव लोग सव कुछ कह आखिर मे अपने मतलव के ऊपर आते हैं और कहते हैं कि भाइयो, ध्यान रखना और अपना उत्थान चाहो तो अपना कीमती वोट हमारी ही पार्टी को देना। इस प्रकार अन्त मे सव अपने स्वार्थ पर आ जाते हैं। किन्तु जो वात परमार्थ की है, वह तो परमार्थ की ही है। वह तो आनन्द की ही वस्तु है, उसमे हमे या किसी भी सन्त वक्ता को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से कोई प्रयोजन नही है। वह तो जो कुछ भी कहेगा, वह सव आप लोगो के हित के ही लिए कहेगा।

अपनी कमी औरो के सिर

आप सामायिक करने के लिए वैठे है, एक मुहूर्त्त, दो मुहूर्त्त या चार-छह मुहूर्त्त का नियम लेकर वैठे हैं, तो आपने उतने समय तक की मर्यादा कर ली कि इतने समय तक सर्व प्रकार के सावद्ययोग का त्याग कर समभाव मे अवस्थित रहूगा। इस प्रकार जितने समय तक सामायिक मे वैठे हो, उतने समय तक सभी पापास्रवो से अलग हुए, या नही ? भाई, आस्रव से जितना वच सके, उतना ही अच्छा है। अव कहो

कि मन तो ठिकाने ही नही है, फिर सामायिक करने से क्या लाभ है ? ऐसा कहने वालो ने एक ही पूंछडा पकड रखा है ।

कवीर जी ने कहा है—कि मुख से जो वचन निकला सो निकल गया, वह तो वापिस नही आ सकता है । किन्तु यदि मन वाहिर जायगा तो वह इधर-उधर भटक कर कुछ देर मे तो ठिकाने आ ही जायगा । आपने यहा पर वैठे वैठे मन मे विचार किया कि अमुक व्यक्ति की तिजोरी का ताला तोडकर रकम निकाल ल । परन्तु वचन से नही कहा, तो गिरफ्तार नही होओगे, क्योकि चोरी नही की है । जो लोग केवल एक मन को लेकर ही सामायिक करने वालो की समालोचना करते हैं, वे लोग स्वय भी विगडते हैं और दूसरो को भी विगाडते हैं । मैं पूछता हू कि इस प्रकार कहकर और लोगों से सामायिक करना छुडवाकर आप क्या लोगो को नास्तिक वनाना चाहते हैं ? ऐसे-ऐसे सूठ-हल्दी के पसारी मिलते हैं जो लोगो को कुहेतु देकर विगाडते है और कहते हैं कि जो महाराज के पास पढते हैं, मुहपत्ती वाधते हैं और प्रतिदिन व्याख्यान सुनते हैं, वे लोग देखो तो सही कि कैसे-कैसे काम करते हैं ? उनके ऐसे कार्यों को देखकर हमे सामायिक करना अच्छा नही लगता है, हमारी उस पर से श्रद्धा उठ जाती है । ऐसा कहने वालो से मैं कहता हू कि यदि किसी ने दिवाला निकाल दिया तो उसी के गीत क्यो गाते हो ? साहूकार के गीत गाओ । जो वर्वाद होता है, उसे होने दो । परन्तु तुम तो साहूकार से मेल-मिलाप रखो । परन्तु कहा है कि—

"आप हुए दीवालिए, कठे हुडियो चाले ।
व्रत पोता से ना पले-जव शंका लोगारे घाले ।"

स्वय तो दिवालिया हो गया । पर यदि उससे पूछो कि वाजार का व्यवहार कैसा है ? तो कहता है कि वाजार ही पर चार गया है और सव दिवालिया हैं । यह तो आपकी पुण्यवानी से एक आना, दो आना, चा -आठ आना या सोलह आना वचा हुआ है । मान गौरव यही है । जो लोग समझदार हैं, वे समझ लेते हैं कि दिवालिया यही है । अरे, दिवालिया तो एक दो व्यक्ति ही होते हैं, वाजार भर के सभी लोग दिवालिया थोडे ही

होते हैं ? बाजार तो साहूकार ही कहलायगा। जो लोग पास मे बैठते है और काम-काज करते हैं, परन्तु अशुभ कर्म का उदय अधिक प्रबल है—तिरने का अवसर नही आया है, तो ऐसे व्यापार मे बैठकर भी कमाई नही कर सके, तो यह परवश की बात है। परन्तु जो सुधार करे तो क्या यह कम है ? अरे, आज भी भरी जवानी मे चोथे ब्रह्मचर्य व्रत के धारण करने वाले हैं, लीलोती (सचित्त हरी) का त्याग कर रहे हैं तो क्या यह कम बात है ? केवल इस जीभ को हिलाकर दूसरो की टीका-टिप्पणी करने से क्या होता है ? परन्तु करने मे--व्रत-नियम धारण करने मे जोर पडता है। इस नई अवस्था मे जिन्होंने खाना-पीना और ऐशो-आराम करना छोडा और घर-बार से मुख मोडा तो उनका यह त्याग तो त्याग ही है। त्याग का फल तो उनको मिलेगा ही। यदि ऐसा व्यक्ति परिणामो की उच्च श्रेणी पर चढ जाय, तो थोडे से परिश्रम मे अधिक प्राप्त हो जाता है। यदि उस श्रेणी पर नही चढ पाता है तो जितना लाभ मिलना चाहिए, उतना नहीं मिलता है। भाई, बात यह है कि लापसी जो बनती है तो उसमें सेर घी डालकर भी बनाते हैं और कोई पाच सेर मणमे डालते हैं और दस सेर घी भी डालते हैं। और सोजत मे तो तेतीसा घी भी डालते हैं, तो लापसी तो वह भी कहलाती है और यह भी कहलाती है। जैसा मसाला उसके भीतर पडेगा, वह वैसी ही बन जायगी। परन्तु कहलायगी लापसी ही।

सामायिक के लाभ

सामायिक करने से जहा पारमार्थिक लाभ है, वहा पर लौकिक लाभ भी है। मान लीजिए—आप यहा पर सामायिक करने के लिए बैठे हैं। यदि इस समय कोई सरकारी कर्मचारी वारण्ट लेकर पकडने को आगया, तो वह आप को धार्मिक कार्य करते देखकर रुकेगा और विचार करेगा कि धर्माराधन के समय पकडना उचित नही है। आपके सामायिक कर लेने पर ही वह वारण्ट की बात कहेगा। इस प्रकार लौकिक दृष्टि से भी सामायिक करने मे लाभ ही है। किन्तु जो केवल पचायती ही करता फिरे और कहे कि इसमे क्या रखा है, तो भाई, तुम्हारे पास भी क्या रखा है सो बताओ ?

प्रत्येक कार्य के करने मे समय देना पडता है, कुछ त्याग करना पडता है, तभी कार्य की सिद्धि होती है। दुनिया मे पडितो की कमी नही, उपदेश देने वालो की कमी और कथा-वाचको की भी कमी नही। ये तो सर्वत्र मिलते ही रहते हैं। परन्तु धर्म प्रभावना करने वाले बहुत कम मिलते हैं। धर्म प्रभावना और प्रचार की बात ठिकाने आकर बैठ जाय और दुनिया के मुख से यह बात निकले कि जैनियो की अमुक क्रिया बडी सुन्दर है, तभी धर्म की सच्ची प्रभावना समझना चाहिए। आज आप जैनियों के त्याग, तप और व्रत-प्रत्याख्यान आदि के लिए अन्य धर्मावलम्बियो के मुकाबिले मे वोट लेकर देख लीजिए, जैनियो को ही सबसे अधिक वोट मिलेंगे। दुनिया मे अन्य तीर्थी भी बहुत हैं और वे भी अपने-अपने मत की बात करते हैं। परन्तु उनसे पूछ कर आप देखलेवें कि क्रिया और त्याग किसके अच्छे हैं ? तो वे भी कहेंगे क्रिया और त्याग तो जैनियो का ही है। अन्यतीर्थी यद्यपि अपने-अपने मत का आचार-विचार पालन करते हैं, तथापि वे भी जैनियो के उक्त कार्यों की सराहना करते हैं। उनके भी बड़े-बडे साधु हैं, महन्त और मठाधीश हैं और हजारो लाखो रुपये उनके पीछे वे लोग खर्च करते हैं। परन्तु अवसर आने पर वे भी कह देंगे कि साधुपना तो जैनियो का है। न्याय की बात के लिए तो वे भी कह देंगे। और लडाई-झगडा करेंगे, तब तो अपन खारे लगेंगे ही। परन्तु महिमा तो त्याग की ही है। इसलिए जो धर्म है वह त्याग मे है। बिना त्याग के धर्म नही है। किसी भी प्रकार का त्याग करते हो, यदि विवेक है तो धर्म अवश्य है। त्याग चाहे छोटा हो, अथवा बडा ? शक्ति के अनुसार जो विवेक पूर्वक किया जाय, वही सच्चा है। खेती की, परन्तु बोई कितनी ? जितनी कि जमीन थी और जितना बीज मिला, उतना ही बोया। अब यदि कोई कहे कि इतनी ही क्यो बोई ? तो उत्तर है कि भाई इतनी ही जमीन थी और बीज भी इतना ही था। तेरे पास जमीन अधिक है तो तू अधिक बो। यदि तूने थोडी भी जमीन बोई है तो धान तो उसके अनुसार आवेगा ही। इस सबके कहने का सार-निष्कर्ष—यही है कि हमे धर्म-कार्य करने में सदा तैयार रहना चाहिए।

कल पचमी थी और पचमी मे छट्ट का भेल आ गया तो औरतो के लिए अव छठ लग गई। ये वैष्णव स्त्रिया सवेरे से लेकर जव तक चन्द्रोदय नही होगा, तब तक खडे रहकर ही समय व्यतीत करेंगी। वे भी कहती हैं कि हम धर्म कर रही हैं। उनके ऐसा करने मे थोडा-वहुत त्याग तो हुआ ही है।

मैं एकवार एकलिगजी गया। उदयपुर का राज्य एकलिगजी का ही माना जाता है, वह कैलाशपुरी भी कहलाती है। कैलाशपुरी के महन्त जी का राजशाही ठाठ-बाट है। मैंने उनसे कहा कि आप तो महन्तपने का वडा भारी आनन्द ले रहे हैं ? वे कहने लगे—स्वामी जी, हमारी तो वडी आफत है। मैंने पूछा—कैसे ? उत्तर मे कहने लगे कि सवेरे छह वजे जागते हैं, जिसके खडे-खडे साढे वारह वजते हैं और इतने समय तक नीचे नही वैठ सकते हैं। कही वाहिर भी नही निकल सकते हैं और किसी से वात भी नही कर सकते हैं। यदि वुखार भी चढ़ा हुआ हो तो भी खडा रहना पडता है। उनकी यह वात सुनकर मुझे यह ख्याल आया कि ये इतना वैभव भोगते हैं तो त्याग भी इनके पास है। यदि ये ६-६॥ घटे खडे रहने का परिश्रम प्रमाद-परित्यागरूप परिश्रम न करें तो महन्तपने की गादी से उतार दिये जाये। कई कनफड (नाथ) कान फडाते हैं, कितने ही विशेष प्रकार की छाप लगाते हैं, तो कितने ही लोग कुछ न कुछ कष्ट तो उठाते ही हैं। उनके मतानुसार तकलीफ तो उन्हे भी उठानी ही पडती है। विना त्याग के कही भी महत्त्व नही मिल सकता है। इसलिए भाइयो, सर्वस्व का त्याग करो। यदि सर्वस्व त्याग की शक्ति नही है तो एक देश ही त्याग करो। आपको ऐसा उत्तम मार्ग मिल गया है फिर भी आप लोग इधर-उधर भटक रहे हो। आप लोगो को समकित का लेशमात्र भी ध्यान नही है। धर्मतत्त्व का, देव तत्त्व का कुछ भी वोध नही है और ऐसे ही मागधी पडित वनकर वैठ जाते हैं, तो इससे क्या लाभ है ? कुछ भी नही है।

राजा भोज की सभा मे एकवार एक विदेशी विद्वान् आया। वह प्रकाण्ड पण्डत था। उसकी उपलब्धि वडी जोरदार थी। उसने आते ही विद्वानो

। चुनौती दी कि धारा नगरी मे चौदह सौ पडित हैं। वे एक-एक करके
रे सामने आवें और मुझे शास्त्रार्थ मे जीतें। यदि मुझे नही जीत सकते हैं
ो राजा लिख कर देवे कि यहा के सब विद्वान् हार गये। इसकी घोषणा
ुन करके विद्वान् लोग आये और अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। इनमे
ो साधारण पडित थे वे तो उसका नाम सुनकर शास्त्रार्थ केलिए उठे ही नही
अर्थात् विना शास्त्रार्थ किये ही उन लोगो ने यह स्वीकार कर लिया कि
हम इस आगन्तुक विद्वान का मुकाबला नही कर सकते हैं। और जो
धुरन्धर विद्वान् थे, उन्हें वह आगन्तुक विद्वान् एक-एक करके परास्त करता
ही चला गया। इस प्रकार शास्त्रार्थ होते दो-तीन दिन निकल गये। राजा
भोज अपने विद्वानो को हारता हुआ देखकर चिन्तित हुआ कि मेरे पास
१४०० विद्वान् हैं और यह क्रम से सवको जीतता चला जा रहा है। राजा
को चिन्तित देखकर सब पडितो ने एकत्रित हो करके कहा—महाराज, हार
लिख दीजिए। राजा भोज ने कहा नही। पुन प्रत्यक्ष मे उस आगन्तुक
पडित से कहा कि हमारे जो महामहोपाध्याय हैं, आप उससे चर्चा कीजिए।
राजा ने सोचा कि कोई जैसे को तैसा विद्वान् मिल जावे और इसे जीत लेवे
तो झझट मिट जावे। दूसरे दिन प्रात॰काल राजा भोज वायुसेवन के लिए
निकले। रास्ते मे उन्होने गागला तेली को देखा जो कि रुपये की अधेली
कर रहा था। वह घानी चला रहा था और कपडे से लेकर तेल को डाल
रहा था। वह एक बूँद भी तेल नीचे नही गिरने देता था। यह देखने मे
तो अच्छा था, परन्तु था क्रोधी। राजा ने देखा कि यह चतुर प्रतीत होता
है। उसे बुला कर पूछा कि क्या नाम है? उसने कहा—मेरा नाम गागा है।
राजा ने पूछा—अपने यहाँ वाहिर से पडित जी आये हैं, उनसे शास्त्रार्थ
करोगे? उसने कहा—हाँ महाराज, राजा ने पूछा—कैसे करोगे? वह
वोला—हाथो से, वातो से और लातो से। जसे भी वह करना चाहेगा, वैसे
ही करूँगा। राजा ने पूछा—तू जीत जायगा? वह वोला—मैं तो जीता
हुआ ही हूँ। अब भाई, पढा हुआ हो तो जीते-हारे। परन्तु जिसे काला
अक्षर भैंस बराबर हो, वह क्या तो जीते और क्या हारे? राजा घूमकर

राजमहल वापिस आया और उसके लिए एक वढिया पोशाक भिजवा दी। उसे स्नान कराके, तिलक-मुद्रा लगवा के और वढिया पालकी पर वैठा करके सभा स्थल पर बुलवाया। दूसरे पडितो से कह दिया कि वे उसकी विरुदावली बोलते हुए उसके साथ-साथ आवें। पडित लोग विचारने लगे कि यह क्या मामला है ? महाराज हम लोगो को इस तेली के सामने उसकी विरुदावली बोलने के लिए कह रहे है। गागा कहता है कि भगवान ने मेरी खूब सुनी। ऐसा ज्ञानी तो मैंने नही सुना। परन्तु जीत लू तव वात है। इस प्रकार बड़े साज-वाज के साथ उसकी सवारी सभास्थल तक पहुच गई। इधर वह विदेशी विद्वान् जो कि पेट पर पट्टा बाधे हुए है, पास मे एक निसन्नी है, एक कुदाली है और घास का एक पूला लिए हुए वैठा है। उससे पूछा गया कि पेट पर पट्टा क्यो वाँधा हुआ है ? तो वह उत्तर देता है कि मैं पढा बहुत हूँ। कही पेट न फूट जाय, इसलिए पेट पर पट्टा वाँध रखा है। निसन्नी क्यो ले रखी है ? यह पूछने पर उत्तर देता है कि यदि कोई प्रतिवादी उडकर आकाश मे चला जाय तो इस पर चढकर उसे पकड के ले आता हूँ। यह कुदाली क्यो ले रखी है ? तो इसके उत्तर मे कहता है कि यदि कोई पडित चर्चा करते हुए पाताल मे चला जाय तो इससे भूमि को खोद करके बाहिर निकाल लाता हूँ। यह घास का पूला क्यो ले रखा है, इसके उत्तर मे वह कहता है कि जो पडित हार जाय, उसे खाने के लिए यह घास का पूला दे देता हूँ। इधर जव उसने देखा कि महामहोपाध्याय विद्वान् महाशय आ रहे हैं और उनकी विरुदावलियाँ वोली जा रही हैं। तव उसने सोचा कि यह कोई वडा प्रवल प्रवादी महापण्डित प्रतीत होता है। अत आज बोलने मे सावधानी रखनी होगी। वह शरीर में हट्टा कट्टा भी है। वह विदेशी विद्वान् इस प्रकार अपनी कल्पना की उधेड-बुन मे सलग्न था कि इतने मे ही उस गागा तेली की सवारी आ गई। वह राजा को नमस्कार करके अपने स्थान पर वैठ गया। अव राजा ने उस आगन्तुक विद्वान् से कहा- पडित जी, हमारे महामहोपाध्याय जी पधार गये हैं। अव आपको जो कुछ पूछना हो, वह इनसे पूछ लीजिए। भाइयो, जव सामने

वाले को देखकर मन मे कच्चावट आ जाती है, तव शरीर मे भी कमजोरी आ जाती है, इसलिए उसने सोचा कि यह महामहोपाध्याय है, बडा भारी विद्वान् है, तो इससे वोल कर शास्त्रार्थ न करके सकेतो से ही शास्त्रार्थ करना चाहिए। ऐसा विचार करके उसने शास्त्रार्थ प्रारम्भ करते हुए अपनी एक अगुली ऊँची की। उसकी एक अगुली को ऊँची देखकर गागा तेली ने दो अँगुलिया ऊँची कर दी। पुनः उस पडित ने अपना हाथ (पजा) सामने किया तो यह देखते ही गागा पडित ने उसके सामने मुक्का तान दिया, इस अभिप्राय से कि यदि तेरे पर यह पडा तो रसातल को चला जायगा। पडित तो पाडित्य के गम्भीर अभिप्राय से सकेत कर रहा है, परन्तु यह तो अपनी मूढ वुद्धि से उसका उत्तर दे रहा है। इस प्रकार उन पडितजी के हिसाव से दोनो प्रश्नो के उत्तर सही मिल गये। यह देखकर उन्होंने अपने पेट का पट्टा खोल दिया और शेप सव चीजें भी जमीन पर डाल दी। वह उठ कर राजा भोज से वोला—महाराज, आपके ये पडित जी तो वहुत वडे विद्वान हैं। इन्होंने मेरे गूढ प्रश्नो का गूढ रूप से ही सकेतो द्वारा सही उत्तर दे दिया है। राजा ने पूछा कि यह कैसे किया आपने ? पडितजी, आपने इनके साथ क्या चर्चा की, यह तो हमने कुछ समझी ही नही ? उन्होने वताया कि मैंने अपनी एक अगुली ऊँची इस अभिप्राय से की थी कि परम व्रह्म एक है, जो सर्वत्र व्यापक है। आपके पडितजी ने इसके उत्तर मे दो अँगुलियाँ ऊँची करके यह वताया कि परम व्रह्म एक नही, किन्तु शिव और शक्ति ये दो हैं। मैंने उनका यह उत्तर स्वीकार कर लिया कि अकेला शिव कुछ नही कर सकता है, साथ मे शक्ति भी होनी चाहिए। फिर मैंने पाच अँगुलियाँ वतलाते हुए यह सकेत किया कि यह सारा विश्व पचभूतात्मक है। परन्तु आपके पडितजी वहुत योग्य विद्वान् हैं। उन्होंने मुक्का दिखा करके यह वताया कि पचभूत अलग-अलग कुछ काम नही कर सकते हैं। किन्तु जव वे एकत्रित हो जाते हैं तो उनमे एक चैतन्य शक्ति प्रकट हो जाती है। मैंने उनके इस उत्तर को भी स्वीकार कर लिया। राजा ने कहा—ठीक है, अव आप

पधारो। आपका कोई अपमान नही कर सकेगा और आपके भाग्य मे जो लिखा होगा, वह पुरस्कार आपको मिल जायगा। यह कह कर राजा ने उन्हे विदा किया।

तत्पश्चात् गागा तेली को राजा ने अपने पास बुलाया और पूछा कि बोल, तूने कैसे चर्चा की ? उसने उत्तर दिया—महाराज, वह पडित बडा बदमाश था। उसने मेरे सामने एक अगुली उठा कर यह सकेत किया कि मैं तेरी एक आख फोड दूगा। यह देख मुझे गुस्सा आया और उत्तर मे मैंने दो अगुलिया सामने दिखाकर यह सकेत किया कि मैं तेरी दोनो ही आखें फोड दूगा। राजा ने हसकर कहा—भाई, तुमने खूब शानदार चर्चा की। पुन महाराज, उसने मेरे सामने पजा उठाया, तो मैंने अपना मुक्का दिखाया कि यह मेरे हाथ का एक ही मुक्का तेरी छाती पर पड गया, तो फिर पीने को पानी भी नही मागेगा। राजा और सारे सदस्य सुनकर हस पडे और गागा तेली को यथोचित पुरस्कार देकर विदा किया।

भाइयो, इस प्रकार से शास्त्रार्थ मे विजय पाने वाले गागा तेली को सचमुच मे क्या विद्वान् समझा जायगा ? नही। भले ही मूर्ख लोग उसे शास्त्रार्थ-विजयी घोषित क्यो न कर देवें। पर वह शास्त्र-पारगत या शास्त्र-वेत्ता नहीं माना जा सकता है। इसी प्रकार जो एक दो बातें धारण करके पडित बनना चाहे तो नही बन सकता है। यह तो तीर मे तुक्के के समान है। पडित बनने के लिए जिन-जिन बातो का परिज्ञान होना आवश्यक है, वह होना चाहिए। तथा उसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का भी वेत्ता होना चाहिए, तभी वह पडित माना जा सकता है। ऐसा विद्वान् पुरुष ही धर्म मे स्थिरीभूत हो सकता है। और क्रिया मे भी वही दृढ हो सकता है।

हम क्या क्या पढ रहे हैं, इसका चिन्तवन करना ध्यान है। भगवान ने धर्म के चिन्तन-मनन को धर्मध्यान कहा है। इसके आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और सस्थान विचय इस प्रकार से चार भेद बतलाये हैं ? और

दश प्रकार के क्षमादि धर्मों का चिन्तवन करना, वारह भावनाओ का चिन्तवन करना भी धर्मध्यान ही है। धर्मध्यान तभी होता है जब आत्मा मे समता हो। समता की साधना के द्वारा मन स्थिर हो जाता है, अशुभ वृत्तियो से हटकर शुभ वृत्तियो की ओर वढता है, शुभ चिन्तन मे मन तल्लीन होता है, आत्मा ससार के उद्धार की भावना करता है, सवके सुखी होने का विचार करता है और ससार, देह और भोगो की क्षण भंगुरता का विचार करता है वस यह भी धर्मध्यान ही है।

वि० स० २०२७ भादवा वदि ६
जोधपुर

●●

१४ | तृष्णा को त्यागो ।

सज्जनो, शास्त्रकार ने जिन भावो का प्रतिपादन किया है उन्ही के अनुसार अभी मुनि जी ने आपके सामने विवेचन किया है ।

अब हमको यह सोचना है कि जैसे नयी डिजाइन का एक विशाल मकान बना हुआ है । उसमे यत्र तत्र सर्वत्र यथास्थान उत्तम सामान, फर्नीचर, सुन्दर चित्र आदि सजे हुए हैं, उसी मकान मे एक बडा हाल है, जिसमे अनेकानेक आश्चर्यजनक वस्तुए भरी हुई हैं । उस हॉल ने एक अजायब घर – सा रूप धारण कर रखा है । बाहिर से आने वाले दर्शक यात्री भी उसे देखने को जाते हैं और उसकी भूरि-भूरि प्रशसा करके उसकी प्रसिद्धि मे चारचाद लगा देते हैं ।

उस महल की प्रशसा सुनकर एक दिन एक अन्वेषक पुरुष उसे देखने को पहुँचा । उसने बडे ही ध्यान से और सूक्ष्मदृष्टि से उन समस्त आकर्षक वस्तुओ पर अपनी नजर डाली । उसने एक-एक वस्तु को हाथ मे लिया, गौर से देखा, ठीक रीति से जाचा । पर वह जैसी वस्तु चाहता था, वैसी उसे प्राप्त नही हो सकी । अत: जैसे जहा से वह उठाता था, वैसे ही वही पर वह उसे सावधानी के साथ रख देता है । इस प्रकार एक-एक करके सारी वस्तुओ

की छान-वीन करते हुए काफी समय व्यतीत हो गया। उसे इसका कुछ भी भान नही हुआ।

उसके साथी जो मकान के वाहिर उसकी प्रतीक्षा करते हुए वाहिर खडे थे, वे अन्दर आकर कहने लगे भाई, तुमने देखने मे वहुत समय लगा दिया अव जो लेना हो, वह शीघ्र ले लो और चलो। यह समय इस प्रकार व्यर्थ खोने का नहीं है। तव वह अन्वेषक वोला—साथियो, जव मैं किसी खास वस्तु का इच्छुक वनकर आया हू, तव मुझे समय जाने की चिन्ता नही है। परन्तु जिस वस्तु का इच्छुक हू, उसकी तो खोज करलू। उसे भली-भाति देख-भाल तो लू। तथा जिस वस्तु को देखकर आया हू उससे वढकर और कोई वस्तु दृष्टि गोचर हो जाय तो उसको ले लू। इसलिए आप लोग मुझे भलीभाति देख लेने देवें। साथियो ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार किया और वे सव शान्त भाव से वैठ गये।

वह व्यक्ति एक-एक करके सवको देखने के वाद एक कौने मे लगे कचरे के ढेर की छान-वीन करने लगा और उसे उस की मनचाही वस्तु उसके जीवन मे पहिली वार ही देखने मे आई थी। परन्तु वह उसका महत्त्व अवश्य ही जानता था। उसने आश्चर्य—चकित होते हुए कहा—यह इतनी दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण वस्तु है कि जिसे पाने के लिए सारा ससार लालायित है। परन्तु दु.ख है कि ऐसी अप्राप्य वहुमूल्य वस्तु को कचरे मे डालने वाला व्यक्ति कितना मूर्ख है कि जिसने इसकी महत्ता को नही आका। उसे यह भी होश नही रहा कि ऐसी वस्तु को सभाल कर रखें।

इस प्रकार रखने वाले की आलोचना और और टीका-टिप्पणी करते हुए उस वहुमूल्य वस्तु को ले लिया। अव साथियो ने कहा—भाई, जिस वस्तु की तुम खोज मे थे, वह मिल गई है, अत अव और विलम्व मत करो और यहा से चलो। तव वह कहता है—साथियो, अव मैं चलने को तैयार हू परन्तु एक वात है कि जो वस्तु अन्यत्र कही पर भी नही मिली थी वह यहा पर अनायास ही मिल गई है, तव सभव है कि यहा और छान-वीन करने पर दूसरी इसी के अनुरूप वहुमूल्य कोई वस्तु हाथ लग जाय। ऐसा विचार कर

लोभ के वशीभूत होकर कचरे के दूसरे ढेर मे घुसा और छान-बीन करते हुए उसी के समान एक और वस्तु उसके हाथ लग गई। उसे देखकर वह पुन आश्चर्य—चकित हुआ। सोचने लगा अरे, यह क्या वात है ? उसी के समान यह दूसरी वस्तु इस कचरे मे कैसे मिल गई ? पुन उसे स्मरण आया कि हमारे पूर्व-पुरुषो ने ठीक ही कहा है कि ऊखडली मे भी कभी-कभी रत्न मिल जाते हैं। इसी लोकोक्ति के अनुसार मुझे तो एक नही, परन्तु दो रत्न मिल गये हैं।

भाई, यह तो एक द्रव्य दृष्टान्त है। हमे इसमे से भाव लेने की आवश्यकता है। उस विशाल मकान के समान विशाल ससार है। इसमे भी नाना प्रकार की चित्र-विचित्र वस्तुए भरी हुई है। इसमे रहने वाले जीवो की लिप्सा, तृष्णा, इच्छाए और तमन्नाए भी वलवती हैं कि हमे वह भी चाहिए, वह भी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी की तृष्णा एक दूसरे से वलवत्तर हो रही है। प्रत्येक प्राणी चाहता है कि ससार मे जितनी भी वढिया से वढिया और उत्तम वस्तुए हैं, वे एकमात्र मुझे ही प्राप्त हो, दूसरे को न मिलने पावें। भले ही दूसरे प्राणी भूखे मरें, अथवा प्यासे रहे। अथवा दीन-दरिद्री वन कर इधर-उधर भटकते रहे किसी को किसी दूसरे की जरा भी चिन्ता नही कि वह किस दशा मे है और कितना कष्टमय जीवन यापन कर रहा है।

भीतर का कचरा

अव कचरे का ढेर कौन सा है ? हमारे भीतर जो ये क्रोध, माना, माया और लोभ- कषाय हैं, ये ही सारे कचरे के ढेर हैं। इसी कचरे के ढेर मे अपनी आत्मा के गुणरूपी अमूल्य रत्न दवे हुए हैं। इस ढेर मे से जो आत्मार्थी पुरुष अन्वेपक वनकर, पक्का ढू ढिया वनकर अपने आपको उसमे आत्मसात् करके खोजता है तो वे अमूल्य रत्न उसे मिल जाते हैं। भाई, ढू ढिया (अन्वेपक) वने विना वे रत्न नही मिल सकते। ढू ढिया वने विना न आज तक किसी को मिले हैं और न आगे मिलेंगे। इसीलिए कहा है—"जिन खोजा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ।"

आज हम देखते हैं कि हमारे कितने ही भाई इस नाम से वहुत भडकते हैं। वे सोचते हैं कि हमे ढू ढिया कैसे कह दिया ? परन्तु भाइयो, जरा गहराई मे जाकर तो सोचो कि यह नाम हमारे लिए उपयुक्त है, या अनुपयुक्त। मैं तो कहूगा कि जिसने भी हमारा यह नाम रखा है, उसने वहुत ही सोच-विचार कर खरा नाम रखा है। कहिये—ढू ढिया किसको कहते हैं ? जो पक्का खोजी हो, अन्वेषक हो और धर्म-अधर्म की पक्की जाच-पडताल करने वाला हो, उसे ढू ढिया कहते हैं। वास्तव मे देखा जाय तो हम अभी तक सच्चे अर्थ मे ढू ढिया नही वने हैं। यदि हम सच्चे ढू ढिया वन जायें, तो फिर हमे न तो आपकी अपेक्षा रहेगी और न आपको हमारी अपेक्षा रहेगी। सब स्वतन्त्र होकर अपनी मन-पसन्द वस्तु को ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु अभी तो हम लोग जैन भी नाम मात्र के हैं। जो सच्चे जैन थे, उन्होने कभी किसी से कुछ अपेक्षा नही की। उन्होंने केवल अपनी अपेक्षा की और वे जिस वस्तु को ढू ढना चाहते थे, उसे उन्होने ढू ढ करके प्राप्त कर लिया। फिर उन्हे दूसरे के सामने हाथ पसारने की क्या आवश्यकता रही ? उन्होंने अनुभव किया कि हम स्वय सिद्ध-वुद्ध हैं, शाश्वत और ध्रुव हैं। हमारी शानी की दूसरी कोई वस्तु ससार मे नही है। अत अव हमे ससार के किसी भी पदार्थ की आवश्यकता नही है।

उतार चढाव का चक्र

ससार का वैभव जिसे भौतिक समृद्धि कहते हैं और जिसके पास यह भौतिक समृद्धि है उसे आप लोगो ने भारी महत्त्व दे रखा है और उसकी चकाचौध मे सारा ससार आज पागल-सा वन रहा है। तथा व्यवहार मे आप लोग भी कह देते हैं—अरे साहव, दुनिया मे इससे वढकर और कोई वडा आदमी नही है। परन्तु मेरे वन्धुओ, याद रखो, एक व्यक्ति यदि कुछ सीढियो से नीचे लुढकता है तो उसे साधारण-सी चोट लगती है। किन्तु वही व्यक्ति जव एक मजिल से नीचे गिरता है, तव वहुत चोट लगती है और कभी-कभी तो मरने तक की भी नौवत आ जाती है। आप लोगो ने इन राजा-महाराजाओ और वडे-वडे जागीरदारो का मध्याह्न भी देखा है, या नही ?

जिनके कि एक हुंकार मात्र से लोगो के प्राण दहल जाते थे। उस समय किसी की सामर्थ्य नही थी जो उनका मुकाविला कर सके। परन्तु आश्चर्य है कि आज उनका सम्मान आप जितना भी नही रहा है। आप अदालत मे जाकर अपना दावा पेश कर सकते हैं। परन्तु आज प्रिवीपर्स के विपय को लेकर उनको अदालत मे दावा करने का भी अधिकार नही है और आप उन पर दावा करके उन्हे अदालता मे वुला सकते हैं। क्या यह साधारण वात है। उनके जीवन मे कितना भारी उतार-चढाव हो गया है। किसी समय जो सातवी मजिल पर खडे आसमान से वातें करते थे, आज उनके खडे रहने के लिए घर का आगन भी नही रहा। अरे, जव ऐसी-ऐसी उत्थान—पतन की वातें आपके सामने प्रत्यक्ष मे आ रही हैं, फिर भी आपकी आखें नहीं खुल रही हैं और अव भी आपका ख्याल वही का वही वना हुआ है, और वही का वही रवैया है? आप लोग अभी भी कह रहे हैं कि हम इतने ऊचे हैं? परन्तु भाई, यदि अधिक ऊंचे चढोगे, तो एक दिन नीचे भी गिरोगे।

भाइयो, हम तो आप लोगो को यही नेक सलाह देंगे कि समभाव मे रहो। भगवान् ने अपने प्रवचनो मे सम-भाव को वडा महत्त्व दिया है। उन्होंने ऊंचे और नीचे का भेद-भाव नही रखा है। यदि आपने कम भोजन किया, तव भी दुख है और अधिक भोजन कर लिया, तव भी दुख है। यदि सम मात्रा मे किया है, तव आनन्द में रहेंगे। इसी प्रकार यदि आपकी कमाई अपनी आवश्यकता के अनुरूप नही हुई, तव भी दुखी हैं और यदि आवश्यकता से अधिक हो गई, तव भी दुखी हैं। इसीलिए कहा गया है कि—

'दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान'।

हाँ, आवश्यकता के अनुसार कमाई होती है, तव आप आनन्द का अनुभव करते हैं और कहने लगते हैं कि महाराज, आजकल तो आनन्द ही आनन्द हैं। आप भले ही आनन्द मानें, पर मुझे तो कहीं भी आनन्द नही दिखाई देता है। क्योकि आपके दिल मे तो यही लगन लग रही है कि हम आगे वढें। परन्तु मैं पूछूँ कि कितना आगे वढोगे? देखो—जोधपुर के किले की वुर्ज पर जो तोप पडी हुई है, उसका जितना मूल्य था, उतनी भी पूँजी

आपके पास नही है। आप समझते होगे कि यह तो लोहे की तोप है। परन्तु क्या आपको यह भी ज्ञात है कि एक-एक तोप मे कितना-कितना सोना मिला हुआ है। यद्यपि आज उनका कोई उपयोग नही रहने से लोगो की दृष्टि मे उनकी कोई कीमत नही रही और वे अब एक पत्थर से भी गई-गुजरी हो गई हैं। नीमाज-ठाकुर ने एक तोप केवल सत्रह रुपये मे बेंची थी। परन्तु लेनेवाले का भाग्य खुल गया और उसमे तावा, पीतल, लोहे के अतिरिक्त ग्यारह तोला सोना निकला। आज राजा लोग इन तोपो का क्या करें ? क्या उनसे अपना सिर फोडे ! उनके उपयोग के अन्य साधन भी तो चाहिए ! अरे, जब आप लोग रात-दिन बढने-बढने की रट लगा रहे हैं, तब क्या कभी आपने यह भी सोचा है कि इस बढने की तृष्णा के साथ-साथ हम से कितने कर्म बध जाते हैं ? और फिर जब आपके वैभव के पतन का समय आयगा, तब घटते भी कितना समय लगेगा। भाई, सूर्य जैसे—प्रतापी की भी प्रतिदिन तीन दशा होती हैं—उदय मध्याह्न और अस्त। तब अन्यो की कब क्या दशा होगी, इसका क्या पता है।

अभी अभी भारत सरकार की ओर से एक अध्यादेश निकला है कि राजाओ के सारे अधिकार छीन लिए गये। जब कि उन्हे सरकार की ओर से इतनी बडी अनेक पदविया थी। परन्तु आज वे अपने नाम के आगे राजा महाराजा भी नही लिख सकते हैं। पर भाई, एक नही, पचासो अध्यादेश भले ही सरकार निकाल देवे, परन्तु दुनिया उनके नाम को नही भूल सकती है। अभी तो एक दो पीढी तक उनका नाम चलता ही रहेगा। वह भूला नही जा सकता है। परन्तु सरकार ने तो उनको गिराने मे कोई कमी नही रखी। अब आपके पास कितनी शक्ति है। अरे जिसके राज्य मे कभी सूर्य अस्त नहीं होता था और जिसे केसरीसिंह कहते थे, उसे भी जब पीस दिया गया, तब उसके सामने आप किस गिनती मे हैं ? आपको पीसते उसे क्या देर लगेगी ? आप अपने मन मे भले ही यह अभिमान कर लें कि मैं लखपति हू, और मैं करोडपति हूं। परन्तु जिस दिन भी भारत-सरकार

सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण कर देगी, तो एक मिनिट मे आप लोग उछलना कूदना और अभिमान करना सब भूल जायेंगे। फिर रोओगे और पछताओगे। तब न भाई-बहिन को दे सकोगे और न जमीन मे ही गाड सकोगे। बल्कि सारा धन जहाँ का तहाँ रह जायगा। इसीलिए आप लोगो से वार-वार कहा जा रहा है कि इस मलवे से वाहिर निकलो और अपने मनोवाछित रत्न ले लो। आवश्यकता पडने पर ये रत्न ही आपके काम आवेंगे। आप अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते रहें। परन्तु सग्रह करने की मनोवृत्ति का त्याग कर दें। तभी आप जीवन का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

सुख का मार्ग—इच्छा परिमाण व्रत

भगवान् महावीर ने सुखद जीवन विताने के लिए कितना सुन्दर और सुख-प्रद व्रत वतलाया है। उन्होने कहा कि हे ससार के मनुष्यो, यदि तुम लोग सुखी जीवन विताना चाहते हो तो 'इच्छा परिमाण व्रत' को अगीकार करो। अपने मन को कावू में कर लो और तृष्णा की इस धधकती आग से दूर हो जाओ। अरे, धन तुम्हारे पास कितना ही आता रहे और जाता रहे। परन्तु तुम अपने मन को रोक लो, अपनी इच्छा को रोक लो कि अव मुझे इससे अधिक की आवश्कता नही है। मुझे इतनी सपत्ति पर्याप्त है। मुझे अपने जीवन-निर्वाह के लिए इतना ही काफी है। यदि इससे अधिक आता है तो वह मेरे लिए नही, अपितु परार्थ है। मैं दूसरो के कल्याण मे लगाऊँगा।

भाइयो, मैं आपसे पूछता हू कि आपके घर मे पांच, पच्चीस, पचास या सौ व्यक्तियो की रसोई वनती है और रसोईघर मे कितने ही प्रकार के व्यजन और पकवान वनते। परन्तु जो थाली परोस कर आपके सामने लायी गई, तो आप उसी के मालिक हैं, सारी रसोई के मालिक नही हैं। जव आप भोजन करने के लिए वैठे। तव आप भावना करते हैं कि निर्ग्रन्थ मुनिराज आ जाये तो उन्हे वहराकर अपने वारहवें व्रत का पालन करूँ। आपकी भावना के अनुसार मुनिराज भी पधार गये। आपने अपनी थाली मे से—अपने हिस्से मे से उनकी इच्छा के अनुकूल कुछ हिस्सा दे दिया। भले ही आपके रसोई घर मे काफी भोजन-सामग्री उपस्थित है, परन्तु उस समय

उस सब पर अधिकार नही है, आपका उसमे कुछ लेना-देना नही। जब आपने अपने हिस्से मे से कुछ दान देकर बची हुई सामग्री मे ही सन्तोष कर लिया और यह सोच लिया कि जो मेरा हिस्सा था, वह मेरे पास आ गया और मैंने उसका स्व-पर के उपकार मे सदुपयोग कर लिया। अब मुझे दूसरे के हिस्से की सामग्री मे से कुछ भी नही लेना है बस, इसी का नाम 'इच्छा निरोध' है। अब घर वाला कोई कितना भी आग्रह क्यो न करे कि आप और ले लीजिए। परन्तु आप कहिये कि नही, जो मेरा हिस्सा था, वह मेरे पास आ चुका है। अब मुझे दूसरे का हिस्सा लेने की आवश्यकता नही हैं। यदि आपके हृदय मे इतना विचार आ गया तो समझना चाहिए कि आपने 'इच्छा निरोध' किया है।

भाइयो, मैं आप लोगो से क्या कहू ? आप लोगो की इच्छा तो दिन पर दिन बढती ही जा रही है। मैं देख रहा हू कि आप लोगो का खून क्यो सूखता जा रहा है ? और शरीर मे मास क्यो कम हो रहा है ? आप लोग अन्दर से खोखले क्यो होते जा रहे हैं ? कहो, इसका क्या कारण है ? बस, आपको एक ही चिन्ता है कि यह अमुक व्यक्ति मुझसे आगे क्यो बढ गया ? और मैं इससे पीछे क्यो रह गया ? पर भाई, तुम तो अपने घर मे हो और वह अपने घर मे है। यदि वह आगे पहुँच गया तो क्या उसके तिलक निकल गया ? और आपके क्या कमी रह गई। अरे, भोजन आप भी करते हैं और वह भी करता है, पानी आप भी पीते है और वह भी पीता है, नीद आप भी लेते हैं और वह भी लेता है ? फिर किस बात मे पीछे हो ? आप यहा बैठे हो तब भी सुन रहे हो और वहा बैठे हो तब भी सुन रहे हो। आप सुनने को ही तो आये हैं, फिर यह विचार क्यो करते हैं कि हम पीछे रह गये ? हा, ऐसा विचार अवश्य करो कि हम सचमुच मे अपने उन अनेक साथियो मे पीछे ही रह गये हैं जो कि सर्व कर्मों का नाश कर सिद्ध-बुद्ध बन गये हैं और आत्मस्वरूप को प्राप्त कर अनन्त सुख भोग रहे हैं। उनके साथ प्रतिस्पर्धा करो तो बेडा पार हो जायगा। परन्तु ससारी जीवो से सासारिक

वस्तुओ के विपय मे जो प्रतिस्पर्धा करते हो वह तो ससार मे डुवाने वाली ही है । इसलिए सासारिक धन-वैभव की प्रतिस्पर्धा छोडो ।

मन की वीमारी

एक मरीज एक डाक्टर के पास इलाज कराने के लिए गया । डाक्टर ने नाडी परीक्षा करके कहा कि मुझे तो तेरे शरीर मे कोई बीमारी नही दिखती है । परन्तु मरीज कहता है कि डाक्टर साहब, वीमारी तो है । आप ठीक रीति से जाच कीजिए । अव डाक्टर ने और भी गौर से उसकी जाच करना शुरु किया, पार-दर्शक यत्र से देखा—एक्स-रे से फोटो भी लिया । परन्तु फिर भी उसे कोई वीमारी नजर नही आई । मरीज फिर भी कहता है कि आप कैसे डाक्टर हैं जो मेरी बीमारी को ही नही पकड पा रहे हैं । डाक्टर कहता है कि जब तेरे शरीर मे कोई वीमारी ही नही है, तब मैं क्या वतलाऊ ? मरीज कहता है कि आप चाहे कुछ भी कहो, परन्तु मैं वीमार अवश्य हू । तव डाक्टर कहता है कि अच्छा भाई, तू ही बता कि तुझे क्या बीमारी है ? मरीज ने कहा– सुनिये डाक्टर साहव, मेरी बीमारी यह है कि मेरे मन को घपा दो, मेरी इच्छा की पूर्ति कर दो, मन की भूख को शान्त कर दो । मैं इस वीमारी से वहुत परेशान हू ।

डाक्टर इस वात को सुनकर स्तव्ध रह गया । वह इस बीमारी और उसके इलाज से अनभिज्ञ था । वह तो केवल शरीर के रोगो का जानकार था । वह मन की वीमारी का इलाज नही कर सकता था । डाक्टर ने सोचा कि इसे अच्छे अच्छे फल-मेवा आदि खिलाये जावें तो इसका मन धाप जायगा । अत उसने वाजार से मेवा-फलादिक मगा करके उसे खाने को दिये और कहा कि तुम्हारी जितनी भी इच्छा हो मन-भर धाप करके खाओ । मरीज वोला—इनसे तो पेट धाप सकता है, मन नही धाप सकता । कृपा करके आप मेरे मन को घपाइये । तव डाक्टर बोला—क्या तुम्हे वढिया कपडे पहिनने को चाहिए, अथवा और कोई वस्तु चाहिए हो तो उसे कहो । हम तुम्हारी उस इच्छा की पूर्ति करेंगे । परन्तु मरीज ने फिर कहा – डाक्टर सा०, इन चीजो की मेरे कोई कमी नही है । आप तो कोई

ऐसी दवा दीजिए जिससे कि मेरा मन तृप्त हो जाय । यह सुनकर डाक्टर चक्कर मे पड गया कि मन को कैसे तृप्त करू ? तत्पश्चात् वह डाक्टर अपने से भी वडे डाक्टर के पास सलाह लेने को गया । और मरीज के मन धपाने का इलाज पूछा ? वह भी मरीज के पास आया और उसने भी नाना प्रकार की खाने-पीने और पहिनने-ओढने की वस्तुए मगाकर मरीज के सामने रखी । फिर भी मरीज ने कहा कि इनसे मेरे मन की तृप्ति नही हुई । तव एक साधारण मनुष्य वहा आया । उसने मरीज की सव बाते सुनकर डाक्टर सा० से कहा—आप इसके साथ माथा-पच्ची करके अपना अनमोल समय क्यो वर्वाद कर रहे हैं ? इसका मन कभी धापने वाला नही है । इसके मनमे तो यह भूख लगी है कि सारे ससार का धन मुझे मिल जाय । सो पहिले तो यह सभव नही है । फिर भी यदि किसी प्रकार यह वात सभव भी हो जाय, तव भी यह कह सकता है कि मैं नही धापा । मेरा मन तृप्त नही हुआ । तव आप क्या करेंगे ?

भाइयो, आशा-तृष्णा की ज्वाला वडी विकट है । इसका पार पाना वहुत कठिन है । इसका किसी ने आज तक पार नही पाया । इस आशा-तृष्णा का वर्णन करते हुए कहा गया है—

> **नि.स्वो निष्कशत शती दशशत लक्ष सहस्राधिपो**
> **लक्षेश क्षितिपालता क्षितिपतिश्चक्रेशता वाञ्छति ।**
> **चक्रेशः पुनरिन्द्रता सुरपति र्ब्राह्मं पद वाञ्छति,**
> **ब्रह्मा शम्भुपदं हरो हरिपदं चाशावधिं को गत. ॥**

जिसके पास कुछ नहीं है, वह विचारता है कि यह मुझे सौ रुपये मिल जाते तो मैं छोटा मोटा काम करके अपनी जीविका चला लेता । जव उसके पास सौ रुपये हो जाते हैं तो वह हजार रुपये पाने की सोचने लगता है । जव हजार हो जाते हैं, तो वह लखपति बनने के मनसूवे वाधने लगता है । लखपति वनने पर वह सोचता है कि विना हकूमत के कुछ नही । यदि मैं राजा वन जाता तो अच्छा होता, सव पर हकूमत चलाता । यदि भाग्य वश राजा भी वन गया, तो फिर वह चक्रवर्ती बनने की इच्छा करता है ।

चक्रवर्ती वन जाने पर वह इन्द्र पद पाने की इच्छा करने लगता है। इन्द्र वन जाने पर वह सोचता है कि मेरे से तो वडा ब्रह्मा है। यदि मैं ब्रह्मा वन जाता तो अच्छा होता। ब्रह्मा वन जाने पर भी वह सोचता है कि मेरे से तो वडे महादेव जी हैं, यदि मै शम्भु पद पा लेता, तो अच्छा होता। यदि शम्भु पद भी पा लिया,तव वह सोचता है कि मै विष्णु पद पा लेता तो क्षीर सागर मे नागशय्या पर लक्ष्मी के साथ सदा आनन्द करता रहता। इस प्रकार मनुष्य की इच्छाए कभी भी पूरी होने वाली नही है। इसीलिए नीतिकार कहते हैं कि आशारूपी सागर के पार को आज तक कौन पार कर सका ? और भी कहा है—

लाभ लाभमपीच्छा स्यान्नहि तृप्ति कदाचन'।

मनुष्य को लाभ के ऊपर लाभ होता जाय, तो भी इसे तृप्ति कदापि नही हो सकती है।

तृप्ति कैसे हो ?

सज्जनो, इस मन की तृप्ति ससार की किसी भी वस्तु से सभव नही है। इस मन के ऊपर तो ज्ञान का अकुश लगने पर ही तृप्ति आना सभव है, अन्यथा नही। मन की इच्छाए तो आकाश के समान अनन्त कही गई है। उसका कही और छोर नही है। हा, यदि मनुष्य सन्तोष धारण कर ले, तो उसकी आशा तृष्णा शान्त हो सकती है। और तभी वह सुख पा सकता है। किसी अध्यात्म वेत्ता ने वहुत ठीक कहा है—

आशा पाश महा दुख दानी, सुख पावे सन्तोषी प्रानी।

देखो, अभी पिछले दिनो वर्षा जोर की हुई, नदियो मे जोरो से वाढें आई और जल-थल सव एक हो गये। रेलें चलना वन्द हो गया और सैकडो मनुष्य या हजारो पशु मर गये। परन्तु दो मास के पश्चात् देखो तो वे नदिया सूखी की सूखी पडी हैं। नदियो मे कितना ही पानी आ जाय, परन्तु वे भूखी की भूखी ही हैं। आपके चूल्हे मे आज तक कितना ईधन जल चुका, पर वह आज भी भूखा का भूखा ही है। इसी प्रकार हमने भी सव कुछ भोग अनन्त वार भोगे, पर उनसे आज तक भी कुछ तृप्ति नही हुई और हम फिर भी

उन्हीं के पीछे पडे हुए हैं । आचार्य सम्बोधन करते हुए कहते हैं—

तन्नास्ति यन्न वै मुक्त पुद्गलेषु मुहुस्त्वया ।
भुक्तोज्झित तदुच्छिष्ट भोक्तुमेवोत्सुकायसे ॥

हे आत्मन्, इस ससार के अनन्त पुद्गलो मे ऐसा एक भी पुद्गल परमाणु नही है जो तूने अनन्त वार न भोगा हो । अव भोग कर छोडे गये उन उच्छिष्ट पुद्गलो को ही भोगने के लिए तुम उत्सुक हो रहे हो,यह वहुत घृणा की वात है । और भी कहा है—

भुक्तपूर्व मिद सर्व त्वयाऽऽत्मन् भुज्यते तत ।
उच्छिष्ट त्यज्यता भोगमनन्ता ह्यसुभृद्भवा ॥

हे आत्मन्, ये ससार के सभी भोग तूने पहिले भोग-भोग करके छोडे हैं और अव फिर उन्ही को भोगना चाहता है । इन उच्छिष्ट भोगो को छोड । इस प्राणी ने आज तक अनन्त भव धारण किये हैं । उनमे सभी कुछ भोग भोगे हैं । उनमे नवीन कोई भी भोग नही है । इसलिए इन जूठे भोगो को छोड । और आत्म स्वरूप की ओर मुख मोड ।

नीतिकार और भी कहते हैं—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ता ।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा ॥

भोगो को भोगते हुए वुड्ढे हो गये शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया और मरने के समीप भी पहुच गये । परन्तु इन भोगो से मन कभी तृप्त हुआ क्या ? आखिर जव इन्द्रिया काम नही देती हैं, तव भोग ही हमे छोडकर चले जाते हैं । हमने उन भोगो को नही छोडा । किन्तु भोगो ने ही हमे छोड दिया । दुनिया भी कहती है कि साहव, वालक और वूढे का मन तो एक सा ही होता है । यदि वह वूढा हो गया, तो उसने अपनी अवस्था को ही पार किया है । परन्तु उसकी तृष्णा तो एक वालक से भी अधिक है । एक तपस्वी तपस्या करते-करते अघाता नही है, उसका शरीर निर्वल हो जाता है और तपस्या उसे छोड देती है । अरे भाई इस शरीर को तो आमत्रण-पत्र देकर वुलाते हो ? परन्तु कभी मौत को भी किसी ने निमत्रण पत्र देकर वुलाया है ? रोगी

शोकी, बुड्डा भोगी, दुर्भागी, दरिद्री और धनवान् कोई भी क्या मरना चाहता है ? कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता है। इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं कि --

सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउ ण मरिज्जिउ ॥

सभी जीव जीना चाहते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक कोई भी प्राणी मरना नही चाहता। कोई भी काल को बुलाना नही चाहता है। परन्तु फिर भी काल तो विना बुलाये ही आ धमकता है। जब वह आकर कहे कि मेरे साथ चलो। तब आप कहें कि मुझे अभी यह काम करना है, जरा हिसाव मिला लेने दो, वच्चे-वच्चे की शादी कर लेने दो। तव काल कहता है कि अव तेरी कोई भी इच्छा पूरी नही हो सकती है। भाई, तृष्णा से कोई आज तक धापा नही, धापता नही और धापेगा नही। इच्छा से मनुष्य पागल बन जाता है।

धोतां गई

एक वार एक महाजन प्रातःकाल नदी के किनारे शौच के लिए गया। मार्ग मे उसे किसी स्थान पर वर्तन की जरा सी कोर नजर आ गई। वर्तन जमीन मे गडा हुआ था और अभी तक कोई दूसरा मनुष्य उधर आया नही था। अत उसने झट-पट भूमि को खोदा। उसमे से एक चरी मोहरो से भरी हुई निकली। उसने अपने ओढने के कपडे पर सब मोहरों को उडेल लिया और पोटली वाध करके चला। आज उसकी खुशी का पार नही था। उसने भगवान को धन्यवाद देते हुए कहा—हे भगवान्, आज तूने मुझ पर वडी कृपा की कि मेरा सारा दारिद्र्य दूर कर दिया।

अव उसने जाते हुए सोचा कि इस पोटली का वजन बहुत है। यदि इन मोहरो को पानी मे धो लिया जाय तो मिट्टी निकल जाने से भार कम हो जायगा। ऐसा विचार कर यह नदी पर पहुचा। वह पोटली को नदी के पानी मे रख कर मोहरो को धोने लगा। दो चार सेर का वोझ होता, तव तो आसानी से उन्हें धो भी लेता। मगर मोहरो का भार भारी था, अत धोते हुए कपडे का पल्ला हाथ से छूट गया और सारी मोहरें पानी मे चली

गई। हाथ मे केवल कपडा रह गया। मोहरो के पानी मे जाते ही वह पागल सा हो गया। और कहने लगा कि "धोता गई जी धोता गई।" अब तो वह इसी की रट लगाता हुआ वही बैठ कर रह गया। आने जाने वाले लोगो से उसके भाइ को पता लगा कि मेरा भाई पागल हो गया है और नदी के किनारे बैठा हुआ चिल्ला रहा है "धोता गई जी, धोता गई।" यह सुनते ही वह उसके लडके और अन्य लोगो के साथ नदी के किनारे गया और पकड कर जैसे तैसे उसे घर पर लाया गया। आने पर भी वह वही रट लगा रहा है कि 'धोता गई जी, धोता गई'। उसके भाई ने सोचा कि इसे कोई ऊपरी भूत-प्रेत का फेर हो गया है। अत उसने अनेक झाड ने फूकने वाले लोगो को बुलाया। उन लोगो ने अपनी सब छाड-फूक की, मगर वह ठीक नही हुआ और वही रट लगाता रहा। निराश होकर वे लोग भी चले गये। इस प्रकार अनेक उपचार करते हुए छह माह बीत गये, मगर उसका पागलपन नही गया। उसके भाई ने ज्योतिषियो से भी उसके ग्रह-योग दिखाये। उन लोगो ने भी कहा कि कुडली मे तो कोई ग्रह योग बुरा नहीं दिखाई देता है। उसका भाई इलाज कराते कराते थक गया और वैद्य-डाक्टरो ने भी जबाव दे दिया कि हमारे वश का रोग नही है। उसका भाई जब सब ओर से निराश हो गया, तब अकस्मात् सद्-भाग्य से एक सयाने वृद्ध पुरुष उधर से आ निकले। उसने उन्हे बुला कर अपने भाई को दिखलाया। उसने उसकी नाडी देखी, तो कोई रोग नजर नहीं आया। फिर जन्म कुडली देखी तो उसमे भी ग्रहो की कोई खराबी नही दिखी। तब उसने उसकी शारीरिक और मानसिक चेष्टाओ का गभीरता से अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुचा कि कही इसे गडा हुआ धन मिला और वह पानी मे किसी प्रकार मे वह गया है। उसी के आघात से यह विक्षिप्त हो गया प्रतीत होता है। और इसी कारण यह बार बार चिल्लाता है कि 'धोता गई जी, धोता गई जी,। इसके सिवाय और कारण इस के पागल होने का नजर नही आता है। उसने यह बात उसके भाई को कह कर कहा कि अब तुम ऐसा करो कि इसके सामने दो चारसौ मोहरो का ढेर लगा दो। उन्हे

देखते ही इसके चित्त की भ्रान्ति दूर हो जायगी। और यह तुरन्त अच्छा हो जायगा। इसे यही मानसिक बीमारी है। यह कहकर वह वृद्ध पुरुष अपने घर चला गया।

उसके भाई ने उस वृद्ध के कहे अनुसार चार-पाचसौ मोहरें लाकर उसके सामने ढेर लगा दिया। उन्हे देखते ही उसका दिमाग ठिकाने आगया और मानसिक विकार दूर हो गया। वह स्वस्थ होकर बोला—अरे भाई, ये मोहरें तो बहुत थोडी हैं। मुझे तो बहुत अधिक मिली थी। भाई ने पूछा—कहा मिली थी। उसने बताया कि नदी के पास ही एक वृक्ष के नीचे। मैं उन्हें धोने के लिए ज्यो ही नदी मे घुसा कि मेरे हाथसे पोटली का पल्ला छूट गया और सारी मोहरें नदी मे गिर गई। बस उन्ही के चले जाने मे दुख मैं पागल हो गया।

अपने भाई के मुख से इस बात को सुनते ही वह पागल हो गया और पागल पन मे बकने लगा—'भरीं लावता जी, भरी लावता'। अब यह भूत इसके सिर पर सवार हो गया। भाई, न कोई भूत है और न प्रेत है। यह तो धन-तृष्णा का ही भूत प्रेत है, जो हर एक के सिर पर सवार हो करके उन्हे पागल सा बना कर घुमा रहा है। जब तक भगवान के वचनो पर दृढ विश्वास नही होता है, तब तक दुनिया को शान्ति मिलना कठिन है। एक सन्तोष को धारण कर लेने पर तृष्णा समूल नष्ट हो जायगी। जब जीवन मे सन्तोष आगया तो फिर सदा आनन्द ही आनन्द है। वह सदा निराकुल सुख का अनुभव करेगा।

हा, तो मैं कह रहा था कि इस ससाररूपी विशाल मकान के भीतर हम सब काम, क्रोध, मान, मद, लोभ, मोहके कचरे मे घुस रहे हैं और हीरे-पन्ने, माणिक-मोतियो को छोडकर भोग-विलास रूप ताबे के टको को ग्रहण करने मे लगे हुए हैं। इस प्रकार हमारी बुद्धि विभ्रम को प्राप्त हो रही है। प० भूधरदास जी कहते हैं—

मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै,
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानै।

ज्यो ज्यो भोग सजोग मनोहर, मनवाछित जन पावै,
तृष्णा नागिन त्यो-त्यो डकै, लहर जहर की आवै ।।

भाई,मोह के उदय से यह अज्ञानी जीव इन पचेन्द्रियो के भोगो को भला मानता है। जैसे धतूरा को खाने वाला सभी पीली वस्तुओ को सोने की मानता है। यह मनुष्य ज्यो-ज्यो इष्ट भोगो को प्राप्त करता है, त्यो-त्यो यह तृष्णा रूपी नागिनी उसे डमती जाती है और उसका जहर सारे शरीर मे चढता जाता है। इसलिए हे भाइयो, इस तृष्णा नागिनी को भगवन्नाम के मत्र-द्वारा दूर करो और समभाव मे आकर अपने जीवन को उन्नत वनाओ। जव यह समभाव जीवन मे आ जायगा तव फिर ससार के कचरे मे से भी अनमोल रत्न मिलते देर नही लगेगी। और फिर उन अनमोल रत्नो से ही जीवन मे अमिट शान्ति प्राप्त हो सकेगी। फिर सदा के लिए जन्म, जरा और मरण के त्रिविध ताप से प्राणी को छुटकारा मिल जायगा।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला ८
जोधपुर

१५ | साधना के तीन मार्ग

सज्जनो, साधना के तीन मार्ग शास्त्रकार ने बताये हैं—सरलता, सहिष्णुता और शान्तता। साधना के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले साधक के जीवन मे सबसे पहिले इन तीनो बातो की नितान्त आवश्यकता है। इन तीनो बातो के आये बिना साधना शान्तिपूर्वक निर्विघ्न सम्पन्न नहीं हो सकती।

साधना के दो रूप

साधना भी दो प्रकार की होती है—लौकिक साधना और लोकोत्तर साधना। लौकिक साधना—जैसे मजदूरी, नौकरी, व्यापार, युद्धस्थल आदि अनेक प्रकार की है। ससार को बढाने वाले जितने भी कार्य हैं, उनकी साधना लौकिक साधना है। इसके लिए भी सरलता, सहिष्णुता और शान्तता की आवश्यकता है। इनके बिना कोई भी लौकिक कार्य ठीक प्रकार से सम्पन्न नहीं होता है और उसमे सफलता नही मिल पाती।

भाइयो, जब लौकिक साधना भी इन तीन बातो के बिना असभव है, तब लोकोत्तर साधना मे तो इन तीनो का होना परमावश्यक है। हमे सयम की साधना करना है। इसे करने के पहिले उपर्युक्त तीनो बातो का अभ्यास

करना आवश्यक है। इनका अभ्याम होने पर ही सयम की साधना सुचारु रूप से सम्पन्न हो सकेगी।

सरलता प्रथम मार्ग

उक्त तीनो गुणो मे पहिला गुण सरलता है। इसका अर्थ है कि हमारी प्रवृत्ति, हमारा प्रत्येक कार्य-व्यापार छल-प्रपंच से रहित निष्कपट होना चाहिए। किसी भी कार्य को करते हुए हृदय मे किसी भी प्रकार का विकार, दम्भ या मलिनता नही होना चाहिए। आचार्यों ने कहा है कि—

मायाविनामनुष्ठानं सर्वं भवति निष्फलम्।

अर्थात्-मायाचार करने वाले मनुष्यो का व्रत, तप, शील सयमादिक सभी धर्मानुष्ठान व्यर्थ होते है, उनके करने पर भी फल की कुछ भी प्राप्ति नही होती है। इसलिए लोकोत्तर साधना करते समय मायाचार से सर्वथा दूर रहना जरूरी है।

सरलता का दूसरा नाम आर्जव धर्म है। इसकी प्रशसा करते हुए महर्षियो ने कहा है

आर्जव सकल धर्म कारण, स्वर्गमुक्ति धन-सौख्य दायकम्।
पातकारि निवहस्य भीतिद वीतरागमुनिभिश्च सेवितम्॥

यह आर्जव धर्म अर्थात् सरलता सर्व धर्मों का प्रधान कारण है, स्वर्ग,-मोक्ष रूपी महाधन को और महान् सुख को देने वाला है और पाप रूपी शत्रुओ के लिए भयंकर है, अर्थात् उनका नाशक है, इसलिए इस आर्जव धर्म को वीतरागी मुनिजन सेवन करते हैं।

जिसके हृदय मे सरलता आ जाती है, वह हर्ष-विषाद, लाभ-अलाभ, मान-अपमान, जय-पराजय और उतार-चढाव आदि सभी मे समभावी रहता है। वह साधक इन सबसे परे रहकर अपने सयम की साधना करता है। साधना के अभिमुख हुआ मनुष्य जिसे भी उसमे बाधक देखता है, उससे दूर रहने का प्रयत्न करता है। यहाँ तक कि यदि सगे-सम्बन्धी और अभिन्न हृदय मित्रो को भी जब वह सयम मे बाधक देखता है, तब उनसे भी साफ कह देता है कि भाई, मैंने आप लोगो के साथ चिरकाल तक सम्बन्ध रखा,

कुटुम्बी और मित्र मानकर व्यवहार किया। परन्तु अब आप लोगो का सयोग मेरी सयम साधना मे बाधक दृष्टि-गोचर हो रहा प्रतीत होता है, इसलिए अब आप लोग मुझे क्षमा करें। अब मैं आप लोगो के साथ पूर्ववत् सम्बन्ध नही रख सकूंगा। अत आज से मैं आप लोगो मे अब दूर होता हू। अब न तो मुझे गुड खाने की आवश्यकता है और न अमल खाने की ही। यदि गुड खाऊगा तो उसके मिठास में अनुरक्त होना पडेगा और यदि अमल खाऊगा तो उसके कडवेपन से दिल मे मजीदगी आयेगी। इसलिए अब न तो मुझे मीठा बनना है और न कडवा या खारा ही बनना है। परन्तु मुझे तो अपने निज रूप मे ही रहना है। मुझे तो सरल परिणामी बन कर आत्म-कल्याण करना है। अत आप लोग मुझे सहर्ष छुट्टी देवें और मेरे साथ आज तक जो सम्बन्ध रहे हैं, उन्हे भूल जावे।

यदि आपने किसी के सामने अपने हृदय की बात सरल भाव से रख दी और कह दिया कि भाई, आपको यह भली लगे, या बुरी ? परन्तु मुझे तो यह ठीक जची और मैंने उसे ही कहा है। तब सुनने वाला भी समझ जायगा कि इस व्यक्ति के हृदय मे कोई कपट नही है। इसके हृदय मे जो भाव था, वह इसने कह दिया है। वह उसके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना नही रखता और उसे निश्छल व्यक्ति ही मानता है।

सरलता-सच्चाई का प्रभाव

अमरावती मे एक सेठ के स्वर्गवास हो जाने पर उसके दो लडको मे सम्पत्ति के बटवारे को लेकर झगडा प्रारम्भ हो गया। मामला कोर्ट मे पहुचा। दोनो ही भाई पिता के समय से चले आये प्रधान मुनीम को मानते थे। अत उन्होने गवाही के रूप मे अपने प्रधान मुनीम को प्रस्तुत किया। जिस दिन उसकी गवाही होने वाली थी उसके एक दिन पूर्व बड़े भाई ने लिखकर मुनीम जी के पास एक पत्र भेजा कि मुनीम सा० यदि आप मेरे अनुकूल गवाही देगें तो मैं आपको पाच हजार रुपया इनाम दूगा। छोटे भाई ने भी लिखकर भेजा कि मुनीम सा०, आप मेरे अनुकूल गवाही देंगे तो मैं दस हजार रुपया दूगा। दूसरे दिन मुनीम सा० जब कोर्ट गये तो उन्होने

ये दोनो पत्र चलते समय कुर्ते के दोनो जेबो मे रख लिए। जब गवाही के लिए इन्हे पुकारा गया तो जज साहब ने इन्हे बयान देने को कहा। इन्होने दोनो हाथो से कुर्ते की जेबो मे से वे दोनो पत्र निकाले और जज साहब से कहा—हुजूर, इस पत्र-सरीखी कहू, या इस पत्र-सरीखी। जज ने पूछा—तुम्हारे कहने का क्या मतलब है ? तब मुनीम जी ने वे दोनो पत्र खोलकर रख दिये। जज पढकर आश्चर्य से स्तब्ध रह गया और मन मे विचारने लगा कि ऐसा शुद्ध सरल हृदय व्यक्ति तो आज तक भी मेरे सामने नही आया है ? प्रकट मे बोला—मुनीम जी हम तुम्हारी ईमानदारी पर बहुत खुश हैं। तुम न इस पत्र-सरीखी कहो, और न इस पत्र-सरीखी कहो। किन्तु जिसे तुम सत्य समझते हो, उसे ही ईश्वर साक्षी मे कहो। मुनीम जी ने झगडे के प्रारम्भ से लेकर जो कुछ सत्य बात थी वह सब कह सुनाई। जज ने कहा—मुनीम जी, मैं तुम्हे ही इस मामले मे अपनी ओर से सरपच नियुक्त करता हू। जो फैसला तुम दोगे, वही मैं मजूर करूगा। मुनीम जी ने दूध का दूध और पानी का पानी करके अपना फैसला जज साहब के सामने कह सुनाया। जज साहब ने वही फैसला दोनो भाइयो को सुना दिया और फैसले के अन्त मे उन्होंने लिखा कि दस और पाच हजार रुपयो का लोभ छोडकर मेरे सामने सच्ची हकीकत रखने वाला यह पहिला ही गवाह अपने जीवन मे मैंने देखा है। मैं इसकी ईमानदारी पर बहुत खुश हूं और इसके बयान के मुजब ही मैंने यह फैसला दिया है। फैसला सुनने के बाद दुकान पर आते ही मुनीम जी ने नौकरी को छोडते हुए दोनो भाइयो से कहा—मैं तुम्हारे केस के फैसले के लिए ही अब तक रुका हुआ था। अब तुम दोनो भाई अपना अपना हिस्सा लेकर अपना-अपना काम सभालो। और मैं अब अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होता हू। यह कहकर के नौकरी छोडकर अपने घर चले आये।

भाइयो, सरलता और हृदय की पवित्रता इसका नाम है। जहा न एक से राग भाव है और न दूसरे से द्वेष भाव है। जो पक्षपात से रहित है और

निश्छल भाव से सत्य वात को कहने से नही डरता है। इसी प्रकार की सरलता सयम के साधक मे होनी चाहिए।

सरलता को अलकार की आवश्यकता नहीं

पहिले के महावैरागी कवियो की कविताए-जिन्हे आप-लोग प्रति दिन सुनते हैं और पढते हैं-उन महापुरुप जयमल जी, गायच द जी, आसकरण जी, टेकच द जी म० आदि की कविताओ को यदि साहित्य की कसौटी पर कसा जाय तो उन्हे विशेष महत्व मिलना कठिन होगा। क्यो कि न मात्राए ठीक हैं और न अलकार विराम आदि वरावर हैं। परन्तु जव हम उन कविताओ के भावो की ओर ध्यान देते हैं, तव उनके अपूर्व भक्ति, वैराग्य एव शान्त रस मे लीन हो जाते हैं, तन्मय हो जाते हैं और अन्तस्तल से निकल पडता है—वार रे वाह ! कैसी अनुपम भाव भरी कविता है। क्या वैराग्य भरा हुआ है ? कैसा शान्त रस प्रवाहित हो रहा है, जो अशान्त हृदयो मे शान्ति का सचार कर देता है और अनेक सन्तप्त आत्माओ को शान्ति प्रदान करता है। आज के या पुराने अन्य कवियो की कविताए-जो कि साहित्य शास्त्र के नियमो के अनुसार वनाई गई है। उनको पढने पर उनमे दम्भ और अहभाव की झलक दिखाई देती है। उन्हे पढते हुए ऐसा अनुभव होता है कि मानो वे अपने पूर्ववर्ती को गिरा कर के स्वय सवसे ऊचे स्थान पर वैठना चाहते हो। उनकी कविताओ मे सरलता के दर्शन नही होते। प्रत्युत दम्भ और छलकी गन्ध उनसे आती प्रतीत होती है।

भाई, जिन महापुरुपो ने सरलता के साथ अपनी कविता मे जो सुन्दर भाव निवद्ध किये हैं। वे आज भी हमारे जीवन के लिए गुणकारी हैं। जो वडे वडे महापुरुपो की कविताए हैं, उनकी तुलना मे आज के कवियो की कविताए नही आ सकती हैं। उनका मुकाविला आज के कवि नही कर सकते है। जैसे—कविस्वरूपदास जी ने 'पाड्ुयशोचन्द्रिका' का निर्माण किया और जिसे रतलाम नरेश ने प्रकाशित करवाया है—उसे उन्होंने रचने के वाद जोधपुर-नरेश महाराज जसवन्त सिंह जी के पास अवलोकनार्थ भेजा। उन्होने उसे आद्योपान्त पढा। उन्होंने अनुभव किया कि इसमे अहभाव

भग्न हुआ है। परन्तु इसे रतलाम-नरेश ने भेजी है, अत पत्र मे लिख दिया है कि कविता अच्छी है। पीछे उनके मनमे विचार आया कि जिस पाडुयशो चन्द्रिका को मेरे पास भेजा गया है उसके भेजने मे कुछ रहस्य है। शायद वे यह दिखाना चाहते हैं कि हमारे पास ऐसे धुरन्धर कवि हैं ? अत उन्होने अपने यहा के कवि शिरोमणि मुरादान जी को बुलाया। वे छन्द-अलकारादि के अच्छे ज्ञाता थे और कविता भी उत्तम कोटि की करते थे। जब वे आये, तब उन्हें 'पाडुयशोचन्द्रिका' देकर कहा इसके मुकाबिले मे कोई उत्तम रचना कीजिए। तब कवि मुरादान जी ने 'जसो यश भूषण' का निर्माण किया। इसके निर्माण मे उन्होने अपने से पूर्ववर्ती कवियो द्वारा प्रयुक्त छन्द-अलकारादि का उपयोग न करके नवीन ही छन्द-अलकारादि का उपयोग किया उन्होने एक स्थान पर लिखा है कि—

पानी हित पनिहारिणी के नेन मे भरातो नीर
जसु के कृपा ते नीर पैर बीच पड्यो है।

जहा पर पानी के लिए पनिहारियो की आखो मे से आसू आते है। परन्तु हे जसवन्त, आज तेरी कृपा से जो पनिहारियो की आखो मे आसू थे, वहा पानी उनके पैरो मे पडा है,क्योकि जोधपुर मे तो दो-तीन वर्ष मे पानी तो आता ही रहता है। जबकि दूसरी जगह पानी नही मिलता था। और झालरे से पानी लाना पडता था। वहा की बेचारी पनिहारिणिया कितनी दूर से पानी लाती थी ? इसलिए वे कहती थी कि हे माता-पिता, तुम्हारा सत्यानाश हो, तुमने हमे कहा परना दी। इसी बात को लेकर मुरादान जी ने कहा कि पहिले दूर से पानी लाने पर पनिहारियो की आखो से नीर बरसता था। परन्तु आज जसवन्तसिह जी की कृपा से उनके पैरो मे पानी पडा है, क्योकि उन्होंने अनेक साधनो से मारे राज्य मे जल सुलभ कर दिया है। इस प्रकार के अनेक नये-नये अलकार - उपमा आदि का निर्माण करके उन्होंने 'जसो यशभूषण' ग्रन्थ को तैयार किया। जब ग्रन्थ महाराज जसवन्त सिंह जी के सम्मुख उपस्थित किया गया, तब उन्होने पूछा कि सरूपदास जी की बनाई

'पाडुयशो चन्द्रिका' को आपने देखा है ? वह कैसी है ? मुरादान जी ने उत्तर दिया—महाराज, वहुत सुन्दर है कवि की रचना वहुत अच्छी है। महाराज ने कहा—कवि जी, मैं आपसे क्या पूछ रहा हू और आप क्या उत्तर दे रहे हैं ? मैं यह पूछ रहा हू कि उसमे अलकार क्या है और गुण-दोप क्या है ? तव मुरादान जी ने कहा—महाराज, मुझे तो उसमे गुण ही गुण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। तव जसवन्त सिंह जी कुछ आवेश मे आकर वोले—आपने आखें वन्द करके ही उसे पढा है ? फिर स्वय कहने लगे—देखो मुरादान जी, मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि कवि मे यह खास गुण होना चाहिए कि वह जो भी कविता वनाये, उसमे पक्षपात की गन्ध नही होना चाहिए। जो वात जैसी हो, उसका ही यथार्थ चित्रण होना चाहिए। कारीगर के हाथ मे जैसा भी पत्थर आ जाय, उसे ही ठीक करके दीवाल मे चुन देना चाहिये। और रसोई वनाने वाली के सामने जो भी आटा आ जाय, उसी की रोटी वना देनी चाहिये। परन्तु किसी को भला—वुरा कहने की आवश्यकता नही है। मैं आपसे पूछता हू कि इन कवियो मे पक्षपात क्यो दिखाई देता है ? देखो—भारतवर्ष मे कर्ण और अर्जुन दोनो समान शक्तिशाली धनुर्धर योद्धा हुए हैं। परन्तु कवियो ने अर्जुन को ऊचा और कर्ण को नीचा वताकर अपनी कविताए रची हैं। कविता मे यह वडा भारी दोप है। वताइये मुरादानजी, यह दोप तो है न ? तव उन्होने कहा—हां महाराज, यह दोप तो है ही। महाराज ने कहा—कविराज, आप 'कर्ण पर्व' वनावे और उसमे कर्ण और अर्जुन को समान रूप से चित्रित किया जावे। तव मुरादान जी ने कहा—महाराज, मैं तो अभी 'जसो यशभूषण' का निर्माण करने मे सलग्न हू, अत अभी 'कर्ण पर्व' वनाने के लिए समय कहा है। तव महाराज ने कहा—तो अपनी सानी का दूसरा कवि वताओ। उन्होंने कहा—महाराज, मेरी सानी का क्या, किन्तु मुझ से भी वढकर सूरजमल जी के शिष्य गणेशपुरी जी मौजूद हैं।

महाराज जसन्वत सिंह जी ने उसी समय गणेशपुरी जी को बुलवाया। उनके आने पर उनसे कहा—वावा जी, एक 'कर्ण पर्व' वनाना है। क्या आप वना सकते हैं ? उन्होने कहा—महाराज की कृपा हो तो मैं वना सकता हू।

महाराज ने कहा—देखो— अर्जुन और कर्ण दोनो ही महाभारत के वीर महारथी हैं, दोनो ही ममान पराक्रमी और धनुर्धारी थे। अत जैसे उनके गुण थे, वैसे ही यथार्थ मे वताना चाहिए। किसी को कम और किसी को अधिक नही वताना चाहिए। महाराज की इच्छा से गणेशपुरी जी ने 'कर्ण पर्व' वनाना प्रारम्भ किया। उनके वनाने का ढग निराला और तरीका भी अजव था। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे श्रीकृष्ण चन्द्र जी की स्तुति करते हुए वे कहते हैं –

पाहन ससुर चोरे सत्यभामा चोरे तरु
चोरी वंशी राधिका ने कह्यो फेर डर को !
चोरी कहूं रावरी तो जीभ नाही लम्वी चौड़ी
चोर्यो दधि दूध तामे हिस्सा हलधर को।
चोर्‌यो हो के जनै पालै लाड वो लडावै और,
वासुदेव देवकी को ये ही खास लरको।
जाण्यो हरि ग्रथ को, अमगल हरे जे हु,
याते हैं चोरी को स्वभाव सव घर को।

अरे चोर, मैं तेरी क्या स्तुति करू ? तुझे क्या वन्दन करू ? तू तो वडा चोर है। जो तेरा ससुर था, उसने तो पार्वती की,चोरी की। तेरी पट्ट-रानी सत्यभामा ने देव वृक्ष की चोरी की। रुक्मिणी ने तेरे वशी की चोरी की। तेरी चोरियो का मैं कहा तक वर्णन करू ? इतनी लम्वी-चौडी तो मेरी जीभ भी नहीं है। अरे, तू तो चोरो का सिरदार है ? तूने जीवन भर चोरी की है। और तो क्या, तूने दूध, दही और मक्खन तक की भी चोरी की है। तूने जो चोरिया की हैं, उसमे वलभद्र—तेरा वडा भाई भी शामिल था। अत तू चोर, तेरा भाई चोर, तेरी स्त्री चोर। और जो चोर को जन्म दे, वह भी चोर। तेरा पालन-पोषण करने वाला तेरा वाप भी चोर है। मैं कहा तक कहू ? तेरा तो सारा परिवार ही चोर है अत मैं जिस ग्रन्थ का निर्माण कर रहा हूँ, इसमे जो अमगल आवे तो तू उसकी भी चोरी कर लेना।

भाइयो, यह व्याजस्तुति कहलाती है। यह ऊपर से सुनने मे तो निन्दा

सी प्रतीत होती है, पर अन्दर मे स्तुति गर्भित है। यथा समय वावा गणेश पुरी जी ने 'कर्णपर्व' रचकर तैयार कर दिया। जव उसके छपवाने का समय आया, तव बावा जी काल कर गये। तथा उनसे पहिले महाराज जसवन्तसिह जी भी कालधर्म को प्राप्त हो गये। परन्तु उन्होंने ऐसा अनुपम ग्रन्थ वनाया जिसका वडे-वडे विद्वान् भी अर्थ नही लगा सकते हैं। यह ग्रन्थ किसलिए वनवाया गया ? सरूपदास जी की कविता को नीचा दिखाने के लिए। परन्तु वह तथैव रखा रह गया। इने-गिने लोगो के पास ही वह पहुंच सका। जवकि सरूपदास जी का ग्रन्थ दुनिया के हृदय का हार वन गया। वे सरल स्वभावी निश्छल कवि थे। उनमे ईर्ष्याभाव नही था। किन्तु महाराज जसवन्त सिह जी के मन मे ईर्ष्या भाव आ गया था। इसलिए उनकी वनवायी हुई रचना लोक-प्रिय नही वन सकी।

हा, तो मैं कह रहा था कि साधना के क्षेत्र मे मानव के भीतर सवसे पहिले सरलता का गुण आना चाहिए। डाक्टर, वैद्य और हकीम के भीतर भी सरलता होनी चाहिए। वह रोगी को देखकर कहे कि भाई, तेरे शरीर मे यह रोग है। उसके लिए मेरे पास जो दवा है, वह दे रहा हू। इसे विश्वास के साथ लेना। भगवान् तेरा भला करेंगे। रोगी से यह डीग नही हाकना चाहिए कि मैं तुझे शर्तिया अच्छा कर दू गा, या यह दवा तुझे सर्वथा निरोग वना देगी। भाई, किसी का जीवन-मरण अपने हाथ मे नही है। और अच्छा वुरा करना भी मनुष्य के हाथ मे नही है। क्योकि कहा है—

हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश—अपयश विधि हाथ।

भाई, नफा—नुकसान, जीना-मरना और यश—अपयश पाना ये सव वातें दैव के अधीन हैं। ऐसी दशा मे डाक्टर-वैद्य को यही कहना चाहिए कि हम तेरे अच्छा होने के लिए भर-पूर प्रयत्न करते हैं आगे 'ईश्वरेच्छा वलीयसी'। सरल परिणामी की औषधि भी जादू सा असर कर जाती है।

सोजत मे नगर सेठ राजमल जी रहते थे। यदि कोई आकर उनसे कहता कि सेठ साहव, हमारी आखें दुखती हैं। तो वे चूर्ण की एक पुडिया दे देते थे। कोई पेट-दर्द वाला आता, तो उसे भी वही चूर्ण की पुडिया देते और

सिर-दर्द वाला आता, तो उसे भी वही चूर्ण की पुड़िया देते थे। पर आश्चर्य की वात यह कि सभी प्रकार के रोगियो के रोग उस एक ही चूर्ण के सेवन से अच्छे हो जाते थे। यद्यपि वह चूर्ण सात-आठ साधारण-सी चीजो से वना हुआ था। तथापि उसके पीछे सेठजी के हृदय की शुद्ध सरल भावना काम करती थी कि यह रोगी ठीक हो जाय। उनकी इस पवित्र भावना से वह चूर्ण भी राम-वाण जैसा काम करता था। लोगो मे यह कहावत प्रचलित है कि अमुक वैद्य का क्या कहना है? ये किसी रोगी को धूल की चुटकी भी दे दें, तो रोगी निरोग हो जाता है। भाई, रोगी धूल से नही, किन्तु देने वाले की सद्भावना से अच्छा होता है। इसलिए सवसे पहले मनुष्य मे सरलता आना आवश्यक है। मनुष्य का हृदय गगा-जल के समान निर्मल होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति साधक के समीप आकर के किसी की निन्दा करे, तो साफ कह देना चाहिये कि भाई, मेरे सामने किसी की निन्दा मत करो, मैं किसी की निन्दा नही सुनना चाहता। किसी की निन्दा प्रशसा से प्रयोजन नही है। मुझे तो अव अपनी ही चिन्ता है। मेरे भीतर अगणित दोप भरे हैं। मैं तो उनको ही निकालने का प्रयत्न कर रहा हू। अतः मुझे पराई निन्दा सुना कर और पाप के भार से मत लादिये। ससार के सभी प्राणियो की प्रकृतियाँ भिन्न-भिन्न हैं। किसी का स्वभाव वदलना मेरे हाथ की वात नही है।

स्वभाव नहीं वदलता

हा, तीर्थंकर वासुदेव, वलदेव, गणधर आदि जो महापुरुप होते है, उनके भीतर अवश्य विशिष्ट शक्ति रहती है। एक वार जैनी वनने के पश्चात् राजा श्रेणिक ने अमारी घोपणा करादी कि मेरे मगध देश मे कोई भी जीव-हिंसा नही कर सकेगा। परन्तु फिर भी कालासुर कसाई गुप्त रूप से प्रति दिन पाच सौ भैंसे मारता ही था। जव यह वात राजा श्रेणिक ने सुनी तो उसे पकडवा कर वेरे मे लटकवा दिया। उन्होंने सोचा कि अव यह कैसे मार सकेगा। जव यह नही मारेगा तो भगवान् महावीर के वचनानुसार मेरा नरक का वन्धन छूट जायगा। और नरक मे जाने से वच जाऊगा

परन्तु उसे क्या मालूम था कि आयुष्यकर्म का बधा हुआ बन्धन कभी भी नही छूट सकता है। यह बात तो भगवान ने श्रेणिक को ढाढस बंधाने लिए ही कही थी। उस कालासुर कसाई को वेले मे लटका देने पर भी दैनिक प्रक्रिया चालू रही। वह उलटे लटकते हुए ही अपने शरीर का मैल उतारता और उसका भैंसा बनाकर कहता—एक मारा, दूसरा मारा, तीसरा मारा। इस प्रकार वह पूरे पाच सौ पाडे मैल के बनाकर मारता रहा। श्रेणिक ने समझा कि कालू कसाई ने भैंसे मारना बन्द कर दिया, अत मैं भी अब नरक मे जाने से मुक्त हो गया। अत वे प्रसन्न होते हुए भगवान के समवसरण मे पहुचे। वन्दना नमस्कार कर बोले—भगवन्, कालू कसाई ने भैंसे नहीं मारे हैं। अत मैं नरक के बन्धन से छूट गया ? भगवान् ने कहा श्रेणिक, यह सभव नही है। कालू कसाई गिन-गिन कर पूरे पाचसौ भैंसे प्रतिदिन अब भी मार रहा है। वह अपने शरीर के मैल को उतार कर उसके ही भैंसे बना के गिन-गिन कर पूरे पाचसौ मारता है। उसके कर्म-बन्ध मे कोई कमी नही आई है। भाई, इस कथानक के कहने का भाव यही है कि मनुष्य के हृदय मे से जब तक वक्रता—कुटिलता-दूर न होवे, तब तक सरलता आ नही सकती। और सरलता आये विना कोई भी मनुष्य अपनी दुष्प्रवृत्तियो को छोड नही सकता। त्याग और सयम-पालने के लिए सरलता आवश्यक है, विपमता और वक्रता नही चाहिए।

त्याग मे प्रदर्शन न हो !

भाइयो, आज लोग त्याग भी करते हैं तो वह भी दिखावटी ही करते हैं, जब कि त्याग तो गुप्त ही रहना चाहिए। उसे, दिखावट, बनावट या सजावट की आवश्यकता नही है। त्याग को प्रदर्शन का आकर्षण पसन्द नहीं है। त्याग तो जितना गुप्त रहेगा, उसका महत्त्व उतना ही अधिक होगा और फल भी उतना ही अधिक मिलेगा। परन्तु आज लोग त्याग मे भी प्रदर्शन करते हैं। वे विचारते हैं कि यदि प्रदर्शन नही होगा तो लोगो को मेरे त्याग का पता कैसे चलेगा ? पर भाई, या तो दुनिया के मुख से वाह-वाही लूट लो-प्रशसा के चार शब्द सुन लो, अथवा कर्म-निर्जरा करलो। दो मे से एक

बोला—आपकी भावना को देखते हुए मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आपके भीतर भी वैराग्य भावना जाग उठी है। क्या आप भी साधुपना लेंगे ? बहिनोई ने कहा—हा, भाव तो ऐसे ही हैं। परन्तु मैं प्रपच मे पडा हुआ हू। साले ने कहा—बहिनोई जी, यदि आपके भाव वैराग्य मय हो रहे हैं तो आप सहर्ष साधुपना ले सकते हैं। मैं अभी महात्मा जी को तैयार किये देता हू और आज्ञा भी मैं दे दूगा। तथा अपनी बहिन को भी समझा बुझा लूगा। पुन उसने महात्मा जी से कहा—महाराज साहब, आप अकेले हैं और मेरे बहिनोई जी को भी वैराग्य की लहर आ रही है। अत आप इन्हे साधु—दीक्षा दे दीजिए। यह सुनते ही महात्मा जी आग बबूला हो गये और कहने लगे- अरे पापी, तू मेरी हसी करता है। बता, कौन साधुपना लेना चाहता है। साले ने कहा—भगवन्, ये लेना चाहते हैं। महात्मा ने बहिनोई से पूछा—क्या तू साधुपना लेना चाहता है ? बहिनोई ने कहा—भगवन्, भाव तो यही हैं। तब महात्मा ने कहा—अच्छा आजा। और उसका हाथ पकड कर उसके शिर का केश-लुचन प्रारम्भ कर दिया। बहिनोई के भाव तो सरल थे। अत उसने सोचा—चलो, सहज मे ही त्याग हो रहा है। मै इच्छा से करू तो क्या, और बिना इच्छा के करू तो क्या ? जीवन सफल करने का यह स्वर्णिम अवसर अनायास ही हाथ लग गया। उसकी भावना मे कोई उतार नही आया। प्रत्युत भाव बढ ही रहे थे। महात्मा जी ने उसका केश-लुचन करके उसे साधु का बाना पहिना दिया और 'करेमि भते' का पाठ पढाकर उसे अपने पास बैठा लिया।

इधर उसका साला अपने घर गया। वह धर्म का प्रेमी नही, बल्कि धर्म का द्वेषी था। अब बहिनोई ने, नव दीक्षित साधु ने—गुरु महाराज से कहा—गुरुदेव, यहा पर मेरी ससुराल है। सभव है कि मेरी ससुराल वाले आकर कोई तूफान खड़ा कर दें। अत अब हमे यहा से विहार का देना ही श्रेयस्कर है। इतना सुनते ही गुरु जी का पारा फिर गरम हो गया और बोले—अरे मूर्ख, पापी, मैंने तुझसे कब कहा था कि तू साधुपना ले ले ? अरे पगले, मुझसे तो चला भी नही जाता है। मैं तो यहा पर आनन्द से रह रहा था। अब

ही भीतर खोखला करती जा रही है। यह भी दस्तो की और सग्रहणी की वीमारी के समान है जो कि खाये हुए अन्न को पचने नही देती है। सारी भीतरी शक्ति क्षीण हो चुकी है। ऐसी परिस्थिति मे यदि रोगी को बढिया दूध या अन्य पौष्टिक वस्तु खिलायी जाय तो वह भी उसे शक्ति देने के स्थान पर मारने का ही काम करेगी। जब उसे मूग की दाल और सूखा फुलका भी नहीं पचता है, तब वे गरिष्ठ पदार्थ तो हजम हो ही कैसे सकते हैं ?

इसी प्रकार जिनके हृदय मे वक्रता और कलुपता भरी हुई है उनसे भी साधना नही हो सकती है। वह तो अभी साधना के योग्य ही नही बन पाया है। जो साधना के योग्य बन जाता है, उसमे सरलता सहज रूप से आ ही जाती है।

भाइयो, एक दृष्टान्त मैं आप लोगो के सामने प्रस्तुत कर रहा हू। इससे आप को शिक्षा मिलेगी कि सरल जीवन कैसा होना चाहिए।

सरल जीवन का आदर्श

एक नगर का एक व्यक्ति अपने वहिनोई को लिवाने के लिए उसके गाव गया। उसने जाकर कहा वहिनोई साहब, आप बाई जी को लेने के लिए पधारो। वह वहिनोई जी को अपने गाव मे लिवा लाया। और अच्छे स्थान पर ठहरा दिया और उसका खूब आदर-सत्कार किया। वहिनोई धर्म प्रेमी था। अत उसने अपने साले से पूछा कि क्या यहा पर कोई सत महात्मा विराजते हैं। मुझे उनके दर्शन करना हैं। साले ने कहा—वहिनोई जी, सन्त नगर मे तो नही हैं। किन्तु नगर के वाहिर बगीचे मे ठहरे हुए हैं। वहिनोई के आग्रह पर दोनो महात्मा जी के दर्शनार्थ पहुचे। महात्मा जी अपने आसन पर विराजमान थे। उन्होंने तीन वार उठ-बैठकर वन्दन किया और चरणो की रज मस्तक पर लगाई। तत्पश्चात् वहिनोई ने कहा—अहा, आज की घडी धन्य है जो मुझे ऐसे त्यागी, वैरागी, तपोधनी, ज्ञानी और ध्यानी महात्मा के दर्शन हुये हैं। आज मेरा जीवन पवित्र हो गया। इस प्रकार उसने महात्मा जी की वडी देर तक स्तुति-प्रशसा की। यह सुनकर साला

ने गुरु को नीचे नही उतारा और दूसरे गाव मे यथास्थान पहुच जाने पर ही गुरु को नीचे उतारा।

अव विचारना यह है कि यह सव कुछ इतने शीघ्र कैसे हो गया ? उसने साधना के क्षेत्र मे उसी दिन ही कदम रखा था। वह साधु वना ही था। परन्तु अल्प काल मे ही उसे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। भाई, उस साधक के जीवन मे सरलता का गुण पहिले ही आ चुका था और उसी के फलस्वरूप उसे अल्प समय मे ही केवल ज्ञान हो गया। वह गुरु कहता है—अरे शिष्य, आपको तो इतनी जल्दी केवल ज्ञान हो गया। परन्तु मुझे तो अभी तक क्यो नही हुआ ? तव केवलज्ञानी शिष्य ने कहा – आप भी समभाव एव सरलता धारण कर लीजिए। क्रोधादिक आत्मा के निज गुण नही हैं, पर पुद्गल-कर्म-जनित पर-भाव हैं। अभी आप शरीर को अपना मान कर घूम रहे हैं। अभी आपका विपमपना नही मिटा है। यदि यह विपमता समभाव मे वदल जाय, तो फिर आपको भी केवलज्ञान होने मे देर नही लगेगी।

इस प्रकार समभावी शिष्य का छद्मस्थ गुरु के ऊपर ज्ञान का चावुक लगते ही परिणामों की विपमता दूर हो गई। उनके भीतर सरलता आगई और परिणामों की धारा उज्ज्वल होती हुई क्षपक श्रेणी पर पहुची और अन्तर्मुहूर्त्त के भीतर ही उन्हे भी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। भाई, साधु-पना पीछे है और सरलता पहिले आनी चाहिए।

सहिष्णुता

अव साधना के लिए दूसरा सहिष्णुता' गुण आवश्यक है। सहिष्णुता का अर्थ है— सहनशीलता। किसी भी प्रकार का कष्ट आने पर उसे सहन करने की शक्ति का नाम सहिष्णुता है। जैसे कभी भोजन मिला और कभी नही मिला, आदर-सत्कार मिला और नही मिला शिष्य अच्छे मिले, और वस्त्र-पात्र मिले अथवा नही मिले। परन्तु इन सव परिस्थितियो मे अपने आपको सहिष्णु वना लेना ही साधना का रहस्य है। शरीर के साधन मिल गये, तव तो भाडा दे दिया और नही मिले, तव समझ लेना कि चलो कर्म-निर्जरा हो गई। साधु के लिए वाईस परीपह वताये गये हैं अतः उन परिपहो

मुझे कौन उठा कर ले चलेगा ? तब शिष्य ने कहा—भगवन्, यह सेवा मैं करूंगा। मैं आपको उठाकर के ले चलूंगा। गुरु की स्वीकृति पाकर वह उन्हें अपने कन्धे पर बिठाकर रवाना हो गया। अब वह शिष्य एक हाथ से तो भूमिका प्रमार्जन करते हुए और दूसरे हाथ से गुरु जी को थामे हुए मार्ग मे चलने लगा। एक तो रात्रि का समय, दूसरे ऊबड-खाबड मार्ग है अत कही शिष्य के पैर नीचे पडने लगे। तब गुरु ने क्रोधित होकर कहा—अरे पापी, यह क्या कर रहा है ? देखता नही कि मैं बूढा हू। ऐसे चलने से तो मुझे बहुत कष्ट होता है ? परन्तु वह शिष्य बडी सावधानी के साथ गुरु को लिये हुए चलता रहा। इस प्रकार चलते हुए शिष्य के भाव उत्तरोत्तर बढने लगे। उसके परिणामो की धारा ऊंची से ऊंची श्रेणी पर चढने लगी। परिणाम यह हुआ कि मार्ग मे चलते हुए ही उसने चारो घनघाती कर्मो का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब तो शिष्य को लोकवर्ती सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष दिखने लगे और अन्धकार के स्थान पर सर्व ओर प्रकाश ही प्रकाश हो गया। वह सबका देखने जानने वाला सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन गया। परन्तु फिर भी उसने गुरु को अपने कन्धे पर से नीचे नही उतारा। अब सब कुछ स्पष्ट दिखाई देने से बिलकुल ठीक रीति से चलने लगा। गुरु को कोई भी कष्ट प्रतीत नही हुआ। तब गुरु ने कहा—अरे शिष्य, अब तो तू बिलकुल सीधा चल रहा है। शिष्य ने उत्तर दिया। गुरुदेव, आपका उपकार है। तब गुरु ने कहा—उपकार-उपकार कुछ नहीं है। यह तो 'टाकर सार' का परिणाम है। जो तू सीधा चलने लगा है। तू जो अब ठीक ढग से चल रहा है तो क्या तुझे मार्ग दिखाई दे रहा है ? शिष्य ने कहा—हा गुरुदेव, मुझे मार्ग दिख रहा है। पुन गुरु ने कहा—अरे, मुझे तो नहीं दिख रहा है, तब क्या तुझे कोई ज्ञान पैदा हो गया है ? शिष्य ने कहा—हा, आप की कृपा से मुझे ज्ञान पैदा हो गया है। गुरु ने पुन पूछा—क्या तुझे अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान हो गया ? तब शिष्य ने कहा—हा गुरुदेव, आपकी कृपा से सब कुछ दिखाई दे रहा है। इतना सुनते ही गुरु ने कहा—मुझे जल्दी नीचे उतार। मेरे द्वारा केवल ज्ञानी की आशातना हो गई। परन्तु केवलज्ञान हो जाने पर भी शिष्य

साधना के तीन मार्ग

भाइयो यदि आप लोग साधना के क्षेत्र मे प्रवेश करना चाहते हैं तो सरलता, सहिष्णुता और शान्तता, तीन गुणो को धारण करना आवश्यक है। मन को मरल वनाइये, माया, कपट को दूर हटाइये, फिर कष्टो मे धैर्य धारण कीजिये, सहिष्णुत अपनाइए और क्रोध लोभ आदि के प्रसग आने पर मन को शात निर्विकार रखने का अभ्यास कीजिये, जिसमे ये तीन गुण आ जाते हैं, वही सम्यक् प्रकार से साधना कर सकता है। इन गुणो से सम्पन्न पुरुष इस लोक मे भी सुख का अनुभव करता है और परलोक मे भी सुख भोगता है।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला ६

जोधपुर

●●

को सहन करने के लिए साधु को धैर्यवान् और सहनशील होना चाहिए। परन्तु सहनशील बनना बहुत कठिन है। हम देखते हैं कि आपको घटे-दो घटे की देर यदि भोजन मिलने मे होती है, तो आप उसमे ही आकुल-व्याकुल हो जाते हैं। हमारे ऊपर ही ले लीजिए कि कोई साधु गाव के भीतर गये। समय पर आहार-पानी नही मिला, ठहरने को स्थान नही मिला, तो उत्तेजना आ जाती है। उस समय यदि ग्रामवासी आकर कहते हैं कि बावजी, दो चार दिन ठहरने की कृपा कीजिए। तब साधु तुनक कर कह देते हैं—अरे, यहा तो आहार-पानी का ढग भी नही है और रहने का स्थान भी ठीक नहीं हैं। फिर यहा रह कर क्या करें ? भाई, ऐसा क्यो कहना पडा ? उनके मुख मे ऐसे वचन क्यो निकले ? क्योकि उनमे सहनशीलता नही है। परन्तु ज्ञानियो ने तो कहा है कि—

'मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्या परीषहाः'

अर्थात् संयम-मार्ग से पतन न हो और कर्मों की निर्जरा हो, इसके लिए सर्व प्रकार के परीषहो को समभाव से सहन करना चाहिए।

शांति

साधना के लिए तीसरा गुण शान्तता का आवश्यक है। जिसके भीतर शान्ति नहीं है, वह साधना मे सफल नही हो सकता। शान्त परिणामी व्यक्ति ही साधना मे सफल होता है। चित्त मे क्षोभ के कितने ही कारण क्यो न मिलें, परन्तु जिनका हृदय प्रशान्त सागर सा शान्त बना रहता है, दूसरो के द्वारा कितने भी उपसर्ग आने पर—उत्पात किये जाने पर जो शान्ति से च्युत नहीं होते हैं, वे ही महापुरुष आत्मार्थ को शीघ्र साधन कर परम पद को पाते हैं।

जो साधक उक्त तीनो गुणो के बिना साधना करते हैं, मजबूरी मे कष्ट सहन करते हैं, वह बालतप है—अकामनिर्जरा है। उसकी साधना निरर्थक हो जाती है। वह इस भव के सुखो से भी गया और परभव के सुखो से भी वंचित रहा। ऐसा व्यक्ति तो उल्टे कर्म-बन्ध ही अधिक करता है।

नीचता है। परन्तु जिसने हमारा तो वुरा किया और प्रतीकार मे हमने उसका भला किया तो दुनिया हमको भला कहेगी और ऊंचा मानेगी। इसे कहते हैं भलमनसाहृत या इ सानियत।

परन्तु यहा पर आपके सामने एक नयी वात उपस्थित है कि आप अपने को ही ठग रहे हैं और अपना ही वुरा कर रहे हैं। जो व्यक्ति ऐसा कार्य करता है, वह क्या वुद्धिमान है ? क्या वह समझदार कहलाने के योग्य है ? कदापि नही। वह तो अपने ही हाथों से कुल्हाडी द्वारा अपने पैरो को काट रहा है। जैसे किसी की नाक पर मक्खी वैठी,तो उसने उडा दी। दूसरी वार वैठी, तव भी उसने उडा दी। जव तीसरी वार आकर वह वैठी, तव उसे गुस्सा आ गया। वह सोचने लगा कि इस ढीट को मजा चखाना चाहिए, ऐसा सोच कर तीसरी वार उसके वैठते ही उसने मक्खी को मारने के लिए चाकू को नाक पर दे मारा। मक्खी तो उड गई, परन्तु उसकी नाक अवश्य कट गई। भाई, जिसने दूसरे को मारने के लिए उठाये गये चाकू से अपनी ही नाक काट ली, क्या उसे आप वुद्धिमान् कहेगे ? कदापि नही।

जान वूझकर अजान मत वनो!

आप लोग आज मेरे सामने प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर दे रहे हैं। परन्तु जैसा कह रहे हैं, ठीक उमके विपरीत ही आचरण कर रहे हैं। जानते हुए भी आप लोग विषभक्षण कर रहे हैं। इससे वढ़कर ना समझी और मूर्खता क्या हो सकती है। अरे, इस मूर्खता की वात कहे तो सव पर समान रूप से लागू हो रही है। यदि आप शान्ति के साथ विचार करेंगे तो ज्ञात होगा कि यह आत्मा अपना ही वुरा कर रही है। आप दूसरो को तो ठगेंगे,परन्तु अपनी आत्मा को उसके पूर्व ही ठग रहे हैं। आप पूछें कि कैसे ? सुनिये—शास्त्र वतलाते हैं कि आत्मा का स्वभाव शान्ति है, क्षमा है, परन्तु सारा ससार क्रोध करके अशान्त हो रहा है। आत्मा का स्वभाव मार्दव है, परन्तु सभी अभिमान करके कठोर हृदय वन रहे हैं। आत्मा का स्वभाव धीरता है, पर सभी अधीर वन रहे हैं। आत्मा का स्वभाव सत्य वोलने का है, परन्तु सभी झूठ वोलकर अपने आपको मलिन कर रहे हैं। आत्मा का स्वभाव सरलता

१६ | आत्मजागृति की ओर

भाइयो, आज ससार मे सर्वत्र आप देख रहे हैं कि वह उसे ठग रहा है और वह उसे ठग रहा है। जहा देखो वहा पर ही इस ठगाई का साम्राज्य चल रहा है। परन्तु मैं कहता हू कि दूसरो से अधिक मनुष्य स्वयं को ही ठग रहा है। अब बतलाइये कि इन दोनो मे अधिक बे-समझ कौन है ? जो दूसरो को ठग रहा है वह, अथवा जो अपने आपको ठग रहा है, वह ? आप कहेगे कि जो अपने आपको ठग रहा है, वह अधिक ना समझ है। उसने उसको ठगा और बदले मे उसने उसको ठग लिया। तब तो ये दोनो आपस मे बराबर हो गये। जैसा कि कहा है—

भलो करि्यो ताको भलो, भलो कह्यो कहै कौन ।
बुरो करै ताको बुरो बुरो ना विचार्यो है।
भलो करै ताको बुरो नीति ताको नीच कहै
बुरो करै ताको भलो ऊच सो विचार्यो है।

जिसने हमारा बुरा किया तो बदले मे हमने उसका बुरा कर दिया तो खाता बराबर हो गया। जिसने हमारा भला किया तो बदले मे हमने उसका भला कर दिया। इस प्रकार भी दोनो का खाता बराबर हो गया। जिसने हमारा भला किया और बदले मे हमने उसका बुरा किया, तो यह हमारी

अपनी ओर देखो !

धर्म बन्धुओ ? अपने आपको बचाने के लिए ही यह प्रभु-वाणी है हम जो आपके सामने उदाहरण पेश कर रहे हैं वे सबके सब हमे अपने ऊपर ही घटित करना चाहिए। यदि इनको हमने अपनी आत्मा पर घटा लिया, तो यह आत्मा शुद्ध, स्वच्छ और पवित्र बन जायगी। जब हम स्वच्छ बन गये, तब हमारे लिए सारा ससार ही स्वच्छ बन गया समझना चाहिए। यदि अपने घर मे खुशहाली है तो सारी दुनिया मे खुशहाली है। किन्तु यदि अपने घर मे होली जल रही है, तो फिर दुनिया मे दिवाली की खुश-हाली कैसे नजर आ सकती है ? इसलिए सर्वप्रथम अपनी आत्मा की ओर झाको और विचार करो।

कोऽहं को मम धर्म किंप्राप्यश्चेति परामृशेत्।

इस बात को गुजराती कवि कहते हैं—

हू कोन छू, क्या थी थयो, शू स्वरूप छे म्हारो खरो ?
कोना सम्बधे वर्गणा छे राखू के ए परिहरू ॥

भाइयो, विचार करो कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे क्या प्राप्त करना और मेरा खरा स्वरूप क्या है ? भगवान कहते हैं कि हे आत्मन्, तेरा स्वरूप तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टयमय है। जैसा मेरा स्वरूप है, ठीक इसी प्रकार का तेरा स्वरूप है। भेद केवल इतना ही है कि मैंने अपने स्वरूप को पुरुषार्थ करके कर्म-पटल को हटाकर अपना स्वरूप प्रकट कर लिया है और तू राग-द्वेष के चक्र मे पडा हुआ अपने स्वरूप को प्रकट करने के स्थान पर उसे उत्तरोत्तर ढकता जाता है। यदि तू पुरुषार्थ करे तो तू भी मेरे समान ही सिद्ध, बुद्ध और निरजन, निर्विकार परमात्मा बन सकता है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब हमारा स्वरूप भी अनन्त चतुष्टय मय है, तब हमे उनका प्रत्यक्ष मे दर्शन क्यो नही हो रहा है ? इसका उत्तर यह है कि हमारे आत्मा के ऊपर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घन-

का है। परन्तु लोग मायाचार करके उसे कुटिल वना रहे है। आत्मा का स्वभाव निर्ममत्व का है। मगर लोग ससार की वस्तुओ मे ममता कर-करके मोह—युक्त हो रहे हैं। सभी लोग ये सव विपरीत कार्य कर रहे हैं। इनसे सिद्ध है कि हम अपना वुरा स्वय कर रहे हैं। इसलिए हम दूसरो को उपदेश देने के स्थान पर यदि अपनी ही आत्मा को सम्वोधित करें और उसे कुमार्ग पर चलने से रोके तो हम अपनी आत्मा के सच्चे मित्र वन सकते हैं। जव हम अपने आपके मित्र और हितैषी वनेंगे—तभी हमारा कल्याण होगा और तभी यह मानव जीवन सार्थक होगा। यदि इतना सव कुछ जानकर भी हम अपनी यही पुरानी छल-छद्ममयी रफ्तार जारी रखेगे तो अपना ही भारी नुकसान कर लेंगे। इसलिए भाइयो, अपनी प्रवृत्ति को ही सुधारने का प्रयत्न करो।

भाइयो, यदि हम दूसरो पर क्रोध करते हैं, तो अपना ही नुकसान करते हैं। दूसरे का अपमान करने पर, दूसरो को ठगने पर और दूसरे से ईर्ष्या करने पर हम अपना ही नुकसान करते हैं। इसका कारण यह है कि जव हम जैसा भाव करते हैं, तभी हमारे उसी जाति के तीव्र कर्मों का वन्ध हो जाता है जो आगे असख्य वर्षों तक हमे दुःख देगा। परन्तु हम अज्ञान से ऐसे ग्रसित हो रहे हैं कि हमे अपने नुकसान का कुछ भी भान नही है। केवल दूसरे को नुकसान पहुचाने का प्रयत्न करते रहते हैं। पर दूसरे का नुकसान तो उसके कर्मोदय पर अवलम्वित है। यदि उसका पुण्योदय है तो हम हजार प्रयत्न भी करें, तव भी उसे कुछ नुकसान नही पहुचा पावेंगे। किन्तु जितने वार हमने दूसरे का वुरा करने का विचार किया, उतने वार अपने को ही भयानक दु ख देने वाले दुर्मोच कर्मों का वन्ध अवश्य ही कर लिया। प्राय लोग इस मारवाडी कहावत का अनुकरण करते हैं—'पगा वलती नही दीखे, डू गर वलती दीखे', जवकि होना यह चाहिए कि अपने पैरो को वचा करके रखो। जहा आग पडी हो, वहा पैर मत रखो। पर अज्ञानी वने सभी जीव दूसरो की वुराई की सोचते हुए अपना ही वुरा कर रहे हैं।

यहा पर कोई यह पूछे कि क्या हम पहिले साधु नही बने ? क्या श्रावक-धर्म नही पालन किया ? जिससे कि हमारा यह नुकसान होता चला आ रहा है ? परन्तु हे भोले भाई, ऐसी बात भी नही है। अरे, हमने अनन्त बार साधु वेष भी धारणा किया है और श्रावक व्रत भी अनन्त बार धारण किये हैं। हमने अनन्तवार इतने ओघे और पात्र भी ले लिये हैं कि उनका ढेर सहस्रो मेरु पर्वतो से भी अधिक बडा होगा। इसमे कोई भी अतिशयोक्ति जैसी बात नही है। परन्तु फिर भी हमारा कर्मों का यह ढक्कन नही उघड़ा है। और इसी कारण आज तक हमे आत्मस्वरूप की प्राप्ति नही हुई है। इसके विपरीत हमने तो अनन्तकाल से अनन्तानन्त कर्मों का बन्धन ही किया है और इसीलिए अनादिकाल से हम इधर-से उधर भटकते आ रहे हैं, चौरासीलाख योनियो के अनन्त चक्कर काट चुके हैं। इस जीव ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप पच परावर्तन अनन्तवार किये हैं। शास्त्र में द्रव्यपुद्गल परिवर्तन का स्वरूप कहते हुए बतलाया है कि—

सव्वे वि पोग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण।
असइ अणतखुत्तो पुग्गलपरिवट्टससारे॥

इस जीव ने अनन्तवार सभी पुद्गल परमाणुओ को क्रम-क्रम से ग्रहण करके भोग-भोग कर छोड दिया है और इस प्रकार पुद्गल परिवर्तन रूप ससार मे अनादिकाल से घूमता आ रहा है। क्षेत्र परिवर्तन का स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

सव्वम्हि लोयखेत्ते कमसो त णत्थि ज ण उप्पण्णं।
ओगाहणाए बहुसो परिभमिदो खेत्त ससारे॥

—इस असख्यात प्रदेशी लोकरूप क्षेत्र मे ऐसा एक भी प्रदेश शेष नही है। जहाँ पर इस जीव ने अवगाहना के साथ उत्पन्न होकर सर्वत्र क्षेत्र रूप ससार में बहुत बार परिभ्रमण नही किया हो ?

काल परिवर्तन का स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

उस्सप्पिणि-अवसप्पिणि समयावलियासु णिरवसेसासु।
जादो मुदो य बहुसो भमणेण दु काल ससारे॥

घाती कर्म आच्छादित हो रहे हैं। इसीलिए वे गुण प्रकाश मे नही आ रहे हैं। वे गुण आत्मा से गये नही हैं, आत्मा मे ही विद्यमान है। परन्तु जीव के एक-एक प्रदेश के ऊपर अनन्तानन्त कर्म परमाणु आच्छादित हो रहे हैं, इसलिए वे गुण ढके हुए है।

इसी वात को एकीभाव स्तोत्रकार कहते है—

आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्दहेतु. ।
कर्म क्षोणी पटलपिहितो योऽनवाप्य परेषाम् ॥

इसके भाषाकार कहते हैं—

कर्मपटल-भूमाहि दवी आतम-निधि भारी ।
देखत अति सुख होय,विमुख जन नाँहि उघारी ॥

इसलिए हमे उस कर्मरूप परदे को—ढक्कन को हटाने की आवश्यकता है। परन्तु मैं आप लोगो से पूछू कि इस कर्म-पटल को उघाडेगा कौन ? क्या उसे पडौसी, मित्र, सगे-सम्बन्धी या सन्त-महात्मा, या भगवान उघाडेगा ? नही, भगवान भी नही उघाडेगा। इस ढक्कन को—कर्मो के इस आवरण को उघाडने का कार्य तो हमे ही स्वय करना होगा। हा, भगवान ने हमारे ऊपर महती कृपा करके यह वता दिया कि हे भव्य पुरुपो, घवडाओ नही। तुम लोग भी मेरे ही समान अनन्त गुणो के भण्डार हो। वस, भेद केवल इतना-सा ही है कि मेरे गुण तो प्रकट हो गये हैं, मैंने उनके ऊपर का ढक्कन हटा दिया है और तुम लोगो के ऊपर अभी वह कर्मो का ढक्कन पडा हुआ है। अत तुम लोग भी पुरुषार्थ करो और कर्म पटल को दूर हटा दो। उसके दूर होते ही तुम भी मेरे समान वन जाओगे। फिर तुममे और मुझमे किसी भी प्रकार का अन्तर नही रहेगा। भाइयो, ऐसा निश्चय कर लो कि हमारी और सिद्ध भगवन्तो की जाति एक ही है और हम उन्हीं की जोड मे वैठने वाले हैं—सिद्ध ही हैं।

अनन्त परिभ्रमण

परन्तु हम अनन्त-अनन्त काल से अपना ही नुकसान करते आ रहे हैं। आज तक हमने अपनी आत्मा के लाभ का कोई भी कार्य नही किया है।

तो सिद्ध भगवन्तो की आत्माओ को भी कर्म-वन्ध का कर्त्ता मानना पडेगा। परन्तु उनकी आत्माए कर्म-वन्ध करती नही है। इसलिए यही निष्कर्ष निकलता है कि निश्चयनय से आत्मा कर्म-वन्ध नही करती है। कर्मशास्त्र मे भी कहा है—

पुग्गल कम्मादीण कत्ता ववहारदो णिच्छयदो।
चेदण कम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाण ॥

अर्थात्—व्यवहारनय से आत्मा ज्ञानावरणादि पुद्गल-कर्मों का कर्त्ता है। अशुद्ध निश्चयनय से राग-द्वेषादि चेतन-कर्मों का कर्त्ता है। किन्तु शुद्ध निश्चयनय से आत्मा अपने ज्ञान-दर्शनादि शुद्ध भावो का ही कर्त्ता है।

यहा पर फिर कोई पूछ सकता है कि जव आत्मा ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्त्ता नही है, तव फिर उनका वन्ध क्यो और कैसे होता है? इसका समाधान सिद्धान्त मे इस प्रकार किया गया है—

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि राग दोस जुदो।
त पविसदि कम्मरय णाणावरणादि भावेहि ॥

राग-द्वेष से युक्त यह ससारी आत्मा जव शुभ या अशुभ भावो मे परिणत होता है, तव उसका निमित्त पाकर कर्म-रूपी रज ज्ञानावरणादिभाव से परिणत होकर आत्मा मे प्रवेश करती है।

सवसे वड़ा शत्रु—कर्म।

इससे यह सिद्ध होता है कि ससारी आत्मा सिद्धो के समान सर्वथा शुद्ध नही है। किन्तु अनादि काल से वधे हुए कर्मों के निमित्त से अशुद्ध रूप मे परिणत हो रहा है। जो पूर्व वद्ध कर्म हैं, उनके उदय से जीव मे राग-द्वेष पैदा होते हैं और राग-द्वेष के उत्पन्न होने से जीव के परिणाम शुभ या अशुभ रूप होते हैं। इन शुभाशुभ भावो के होने से यह जीव ससार मे सर्वत्र भरे हुए कर्म परमाणुओ को सर्व ओर से अपने आत्मा के भीतर खीच कर उन्हें ज्ञानावरणादि रूप से परिणत कर लेता है और वे इस आत्मा से सवद्ध हो जाते हैं। पुन जव प्रति समय वधने वाले कर्मों का उदय आता है, तव फिर यह राग-द्वेप रूप से परिणत होता है। इस प्रकार के चक्र

काल ससार मे परिभ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सर्पिणी और अव सर्पिणी के सभी समयावली मे अनेक वार जन्मा और मरा है।

भव परिवर्तन का स्वरूप वतलाते हुए कहा है—

णिरयादि जहण्णादिसु जाव दु उवरिल्लया दु गेवज्जा।
मिच्छत्तससिदेण दु वहुसो वि भवट्ठिदी भमिदा॥

इस जीव ने मिथ्यात्व के वश होकर नरकादि गतियो की जघन्य स्थिति से लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त और देवगति मे नवे ग्रैवेयक तक की सभी स्थितियो मे उत्पन्न होकर अनेक वार परिभ्रमण किया है।

भाव परिवर्तन का स्वरूप वतलाते हुए कहा है—

सव्वा पयडिट्ठिदीओ अणुभागपदेसवंधठाणाणि।
मिच्छत्त ससिदेण य भमिदा पुण भाव ससारे॥

इस जीव ने मिथ्यात्व के ससर्ग से कर्मों के सव प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश वन्ध के स्थानो को प्राप्त कर भावरूप ससार मे अनन्तवार परिभ्रमण किया है।

भाइयो, इस प्रकार अनादि काल से सर्वत्र परिभ्रमण करने मे दोप किसका है ? इसमे दोष किसी और का नही है। सव दोप अपने ही राग-द्वेष से उपार्जित कर्मों का है। कहा है—

न दोषो दीयते आत्मानं न दोषो दीयते पर।
न दोषो दीयते स्वामिन् कर्म दोषोहि दीयते॥

इस ससार परिभ्रमण का दोष किसी दूसरे के ऊपर नही है, किन्तु यह सारा दोष हमारे कर्मों का ही है।

यहा पर कोई प्रश्न करे कि इसमे आत्मा का दोप क्यो नही ? इसका उत्तर यह है कि जैन मत मे तत्व का निर्णय दो दृष्टियो से होता है—एक निश्चयनय की दृष्टि से और दूसरे व्यवहारनय की दृष्टि से। हम व्यवहार नय की दृष्टि से अवश्य कहते हैं कि आत्मा कर्म-वन्ध करता है। किन्तु जब हम निश्चयनय की दृष्टि से देखते हैं, तव यही कहना पडेगा कि आत्मा कर्म-वन्ध नही करता है। यदि आत्मा को कर्म-वन्ध का कर्त्ता माना जाय

करा रहे हैं। इसलिए यदि किसी को दोप देना है तो अपने इन राग-द्वेपादि भाव कर्मों को ही देना चाहिए।

शक्ति को जगाओ!

अब यदि हमने इन भाव कर्मों को दोप भी दिया, तो इससे क्या हुआ ? जैसे हमने अपने किसी शत्रु को सौ गालियाँ भी दे दी, तो भी उसका क्या वाल-वाका हुआ ? कौन सी शत्रुता मिट गई ? परन्तु जब तक हम शत्रु को जड़-मूल से नष्ट नही कर देंगे तव तक हमे सुख और शान्ति नही प्राप्त हो सकती है। इसलिए हमे सवसे पहिले इन कर्म-शत्रुओ को समाप्त करने का दृढ सकल्प करना चाहिए। यदि आपने दृढ निश्चय कर लिया कि हमे अपने कर्म-शत्रुओ को समाप्त करना है और इनसे सदा के लिए सम्बन्ध-विच्छेद करना है तो इसके लिए तैयारी कीजिए। कर्मों को समाप्त करने के लिए सवसे वडी वीर्यात्मिक शक्ति है, उसे कही दूसरे की अपेक्षा से नही लाना है। वह शक्ति आपके भीतर ही विद्यमान है। वस, थोडी सी करवट वदलने की आवश्यकता है, वह शक्ति आपके भीतर जागृत हो जायगी। उसके प्रकट होते ही कर्म शत्रु धराशायी हो जायेंगे। फिर उनका पलायन होते देर नही लगेगी। परन्तु भाई, केवल लम्वी-चौडी वातें वनाने से कार्य सिद्ध होने वाला नही है। केवल साधु वन जाने या श्रावक वन जाने से काम नही चलेगा। उसके लिए तो वडी भारी शक्ति लगानी होगी, आत्मा का पराक्रम फोडना होगा। जिन-जिन महापुरुषो ने उस शक्ति को जागृत किया, वे सव निर्लेप, निर्विकार, निरजन सिद्ध परमात्मा वन गये। जिस गौतम (इन्द्रभूति) याज्ञिक पडित की आत्मा पहिले डूवी हुई थी, उसने जव अपनी शक्ति को पहिचान लिया, तो अपने कर्म-शत्रुओ को पछाडने मे देर नही लगी। वह गौतम पडित चारो वेद और अठारहो पुराणो का ज्ञाता था और अपने पाच सौ शिष्यो की मडली का स्वामी था। वह अपने सामने दूसरे को तृणवत् समझता था, ऐसा उसे अपने ज्ञान का अभिमान था। वह अभिमान के मेरु पर चढा हुआ था। वह मध्यम पावा में सोमिल व्राह्मण के यहा यज्ञ कराने को आया हुआ था। भगवान् महावीर का समवसरण भी उसी पावा के

द्वारा यह ससारी जीव नित्य नये कर्मों को बाधता रहता है। सिद्धान्त मे भी यही कहा है—

कम्म वेदयमाणो जीवो भाव करेदि जारिसयं।

सो तेण हवदि कत्ता हवदि त्तिय सासणे पढिद ॥

उदय मे आये हुए कर्म का वेदन करता हुआ यह जीव जैसे भाव को करता है, उससे वह फिर उसी प्रकार के कर्मों का कर्ता होता है। यह जिन शासन मे कहा गया है।

नाम कर्म के अनेक भेद आगम मे बतलाये गये हैं। उनमे एक भेद शरीर नाम है। शरीर नामकर्म के उदय से जीव के औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तेजस और कार्मण, ये पाच शरीर प्राप्त होते हैं। इनमे से तीन शरीर तो प्राप्त होते और छूटते रहते है। परन्तु तैजस और कार्मण शरीर जीव के साथ अनादिकाल मे बराबर चले आ रहे हैं। यद्यपि इन शरीरो की स्थिति मर्यादित है। किन्तु पूर्व स्थिति का क्षय होने के पूर्व ही नवीन शरीर स्थिति का बन्ध हो जाने से उसकी परम्परा अविच्छिन्न रूप से अनादिकाल से चली आ रही है, इसीलिए सिद्धान्त मे कहा गया है कि—**'सर्वस्य अनादि सम्बन्धे च'**। अर्थात् ये दोना शरीर सभी ससारी जीवो के पाये जाते हैं और इनका सम्बन्ध अनादिकाल से लगातार चला आ रहा है। ये दोनो शरीर जब तक आत्मा के साथ सबद्ध हैं, तब तक आत्मा कर्मों से सयुक्त है। जब चौदहवें गुणस्थान के अन्तिम समय मे इन दोनो शरीरो का अभाव होता है, उसी समय शेष सर्व कर्मों का भी अभाव हो जाता है और आत्मा शुद्ध निरजन, निर्विकार बनकर सिद्ध पद को प्राप्त कर लेती है। चूकि तैजस और कार्मण शरीर आत्मा नही है, पुद्गल रूप हैं। इसीलिए उनका आत्मा से सम्बन्ध विच्छेद होता है। इसलिए शुद्ध निश्चय नय से जीव को अपने शुद्ध ज्ञान-दर्शनादि भावो का ही कर्ता कहा गया है। और व्यवहार नय से पौद्गलिक कर्मों का कर्ता कहा गया है। इसी नय की अपेक्षा यह कहा जाता है कि यदि ससार में जीव का कोई कट्टर शत्रु है तो वह भाव कर्म ही है। ये राग-द्वेषादि रूप भाव कर्म ही हमे ससार मे परिभ्रमण

इन्द्राणी होती। तो फिर यह कौन है ? जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कामदेव और इन्द्र को भी अपने रूपातिशय से मात दे रहा है। भाइयो, इस प्रकार मन मे अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करता हुआ क्रमश पहिले, दूसरे और तीसरे कोट को पार करता और वहा की अद्भुत शोभा को देखकर विस्मित होता हुआ वह बीस हजार सोपान-पक्तिओ को पार कर भगवान् के सम्मुख पहुँचा। भगवान के मुखमण्डल से अपूर्व शान्ति का झरना झर रहा था, सर्व और परम शान्ति का वातावरण था। उसे देखकर भावुक दर्शक के मुख से सहसा निकल पडा कि—

तुम्हारी शान्तमुद्रा से अलौकिक शांति झरती है
सिंह मृग गोद मे सोते, सदा जय हो, सदा जय हो।

वहा पर क्या ही शान्ति का साम्राज्य था कि परस्पर-जाति-विरोधी प्राणी अपने वैर-विरोध को भूलकर सगे बन्धु से गले मिल रहे है। वहा का यह अदृष्टपूर्व अश्रुत सम्मिलन देखकर सहसा गौतम के मुख से निकल पड़ा—

सारगी सिंहशाव स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं,
मार्जारी हंसबाल प्रणयपरवशा केकिकान्ता भुजंगीम्।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति,
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुष योगिन क्षीणमोहम्॥

अहो, यह हरिणी सिंह के बच्चे को अपना पुत्र समझ कर उसे स्पर्श कर रही है, यह गाय व्याघ्र के बालक को अपना बच्चा समझकर उसे चाट रही है, यह बिल्ली हस के बच्चे को स्नेह से खिला रही है और यह मयूरी सर्पिणी के साथ प्रेम से निर्भर होकर खेल रही है। यही नही, किन्तु अन्य भी जन्म-जात वैर वाले जीव निष्पाप, वीतराग और साम्यभाव को धारण करने वाले इस परम योगी श्रीवर्धमान भगवान् की शरण लेकर और मद-रहित होकर, अपना वैर-भाव भूल रहे हैं और परस्पर मे अति प्रेम से मिल रहे हैं।

भगवान के चारो ओर का ऐसा अद्भुत प्रशान्त दृश्य देखकर इन्द्रभूति गौतम सोचने लगे— ये वास्तव मे तीर्थंकर है, क्योकि मैंने जो तीर्थंकरो की

वाहिरी उद्यान मे लगा हुआ था। भगवान के दर्शनार्थ स्वर्ग से इन्द्रादिक देव-समूह अपने-अपने विमानो मे वैठकर आ रहे थे। भगवान की वन्दना करने के लिए नगर-निवासी लोग भी जा रहे थे। यह समाचार जव इन्द्रभूति गौतम को ज्ञात हुए, तव वह अभिमान मे आकर वोला—

> ओ, कुण रे इन्द्रजालियो इम कहता आयो तुम तीर के
> महर करी घणी प्रभु थाप्यो हो तस खास वजीर के,
> वीर सुनो म्हांरी बीनती !

भाइयो, उस गौतम पडित की आत्मा कुछ समय पहिले तक कैसी अहकारावृत थी कि वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आनन्दघन, सच्चिदानन्द, परम ब्रह्म, परमात्मा भगवान् महावीर के लिए कह रहा था कि महावीर क्या मुझ से वड़ा है ? क्या वह मुझसे अधिक ज्ञानी है। अरे, वह तो इन्द्रजालिया है। मैं अभी जाकर उस महीवार के सारे इन्द्रजाल को और उसके ढोग को विखेर देता हू। भाई, उस समय क्या कोई श्रावक यह अनुमान लगा सकता था कि जिसके मुख से ऐसे अपमान-जनक शब्द निकल रहे हैं, वह भी क्या कभी भ० महावीर के पास जाकर और सयमघारण कर उनके सघ का नायक वन सकेगा ? क्या किसी को ऐसा अनुमान भी था ? नही ! परन्तु हुआ क्या ? वह गौतम अपने पाच सौ शिष्यो के साथ पालकी मे वैठा हुआ—विरुदावलियो के गु जारव के साथ अभिमान से मरा जाता हुआ—कहता है कि मैं अभी जाकर उस महावीर के मान को मर्दन किये देता हू,उसके अहकार को चूर-चूर कर देता हूँ। परन्तु ज्यो ही वह समवसरण के समीप पहुचा और उसकी अलौकिक शोभा देखी तो आश्चर्य-चकित हो गया—दग रह गया और विचारने लगा—

> किं रुद्र किं मुरारि किं रतिरमण इन्द्र वा देव राजा

अरे, क्या यह ब्रह्मा है ? नही, यह ब्रह्मा नही है। यदि ब्रह्मा होता तो इसके साथ सावित्री होती ? यह विष्णु भी नही है, अन्यथा इसके साथ लक्ष्मी होती। यदि शकर होता, तो इसके साथ पार्वती होती। यह कामदेव भी नही है, अन्यथा इसके साथ रति होती। यदि यह इन्द्र होता, तो इसके साथ

क्रोधी अरु मैं कामी मानी हूँ चीज पामी
आ जन्म से है खामी कैसे उद्धार होगा ?

अरे, मैं तो वडा कामी, दभी, ढोंगी और मायाचारी हू। मैंने अभिमान के वश होकर दुनिया से कहा—मैं सर्वज्ञ हूं, सर्वदर्शी हू। मेरे से वडा ससार मे अन्य कोई व्यक्ति नही है। हा, मैंने बहुत भारी ढोंग किया और अपना अध पात किया।

भाइयो, अपनी भूल कब सामने आती है ? जब उसे ठोकर लगती है। जब तक मनुष्य को ठोकर नही लगती है, तब तक वह अपनी भूल को स्वीकार करने के लिए तैयार नही होता है, भले ही मारा ससार उसे कुछ भी कहता रहे।

भूल को पहचानो !

एक नगर की बात है। वहा पर दो भाई रहते थे। बडे भाई की शादी हो गई थी। छोटे के सगाई हो गई थी, पर विवाह नही हुआ था। बडे भाई से छोटा भाई बहुत छोटा था। उसकी मा बचपन मे ही मर गई थी, अतः उसकी भौजाई ने ही उसका लालन-पालन किया था। जब वह पढ लिखकर होशियार हो गया, तब दुकान पर बैठकर कारोबार सभालने लगा। एक दिन उसके शिर मे दर्द उठा और काम-काज मे चित्त न लगने से घर चला आया। भौजाई ने पूछा—लालजी, आज इतनी जल्दी कैसे आ गये ? उसने कहा—भाभी, सिर दुख रहा है। भाभी ने कहा—आओ, मैं सिर मे दवा मसल देती हू। वह भाभी की गोद मे सिर रखकर लेट गया। दवा मसलते-मसलते भाभी को मजाक सूझा—क्योकि होली के दिन थे। अत उसने दवा लगाते लगाते उसके सारे मुख पर काजल पोत दिया। इतने में दुकान से बुलावा आ गया। वह हड-बड़ा कर उठा और कपडे पहिनकर दुकान को चल दिया। ज्यो ही बाजार मे पहुचा तो लोगो ने कहा—भाई सा०, आज यह काला मुह कहा कराया है। लडका बोला—भाई माफ करो, मुझे मजाक पसन्द नही। यदि कोई करे तो मुझे सहन नही होता। तब किमी ने कहा—हम मजाक नही कर रहे हैं। किन्तु सत्य कह रहे है। इस पर वह झुझला

महिमा सुन रखी, वह यहा पर साक्षात् दिखाई दे रही है। मुझे जो अभी तक महावीर के विषय मे भ्रम था, वह आज मेरा दूर हो गया।

गौतम को उद्‌बोधन !

भगवान के सामने इस प्रकार विस्मयान्वित हर्ष के साथ जाते हुए गौतम के मन मे विचार उठा कि वेदो के तीन दकार-सम्बन्धी पुनरुक्ति दोष नही होना चाहिए। तभी भगवान ने उन्हे सम्बोधित किया—अहो इन्द्रभूति ! इसे सुनते ही गौतम के हृदय मे पुन अभिमान का सचार हुआ—अरे, मैं इतना विद्वान् हूँ, मुझे कौन नही जानता है ? सारी दुनिया मुझे पहिचानती है ! तभी भगवान ने कहा—अरे गौतम, तेरे मन मे तीन दकारो के पुनरुक्ति की शका है ? यह सुनते ही गौतम का गर्व खर्व हो गया। मन ही मन मे कहने लगे- ये तो सचमुच सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। अन्यथा मेरे मन की यह गूढ शका कैसे जान लेते। प्रकट मे बोला—हता भगवन् ! आपका कथन सत्य है। तब भगवान ने कहा—तेरी यह शका युक्ति-युक्त नही है। ये तीनो दकार सार्थक हैं। सुनो—प्रथम दकार का अर्थ दया है, दूसरे का दान और तीसरे का दमन अर्थ है। तीनो ही दकार भिन्न-भिन्न अर्थ के वाचक हैं, इसलिए उनके प्रयोग मे कोई पुनरुक्ति दोष नही है। भगवान के मुखारविन्द से यह सुनते ही गौतम के हृदय का सारा भ्रम दूर हो गया। सारी शंकाए निर्मूल हो गई। और मन मे विचारने लगा—तीर्थंकर मैं नही, किन्तु ये हैं। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी मैं नही, अपितु ये हैं। इन्होने मेरे हृदय को उद्वेलित करने वाली शका को अपने दिव्य ज्ञान से स्वय ही जानकर उनका समाधान कर दिया। ओह, ऐसे महापुरुष की मैंने कितनी भारी आशातना की ! मैं आज तक कितने भारी अन्धकार मे रहा ? और ऐसे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी को अल्पज्ञ और इन्द्रजालिया समझता रहा ! आज मेरा परम भाग्योदय हुआ है कि मेरे हृदय का सारा अज्ञानान्धकार दूर हो गया है। हे भगवन्, मेरा कैसे उद्धार होगा ? ये वचन सहसा उनके मुख से निकल पडे—

'इस आत्मा का अर्हन् ! कैसे उद्धार होगा ? ।टेर।
स्यादिष्ट चीज भोगी बाजूं मैं जैन जोगी
हा-हा गति क्या होगी कैसे उद्धार होगा ?

और इसी प्रकार ससार का प्रत्येक द्रव्य 'उत्पाद-व्ययध्रौव्यात्मक सत्' स्वरूप है। गौतम ने भगवद्-उपदिष्ट इस त्रिपदी को सुना और उसका अर्थ चिन्तवन करते—करते ही चौदह पूर्वों का ज्ञान उत्पन्न हो गया।

भाइयो, बताओ—क्या गौतम भगवान् के पास पट्टी-पेन्सिल को लेकर पढने को बैठे ? नहीं। अरे, जब आत्मा के ज्ञान का क्षयोपशम प्रकट होता है, तब वह तीन पदो से ही प्रकट हो जाता है। गौतम को भी तीन पदो से ही सारे द्वादशाङ्ग श्रुत का ज्ञान उत्पन्न हो गया। यद्यपि ज्ञान आत्मा मे ही था। उसे कही से लाना नही था। किन्तु निमित्त मिलने की देर थी। उसे भगवान का निमित्त मिला और वह प्रकट हो गया। इस प्रकार भगवान के शिष्य बनते ही—दीक्षा लेते ही पूर्ण मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के साथ तत्काल अवधिज्ञान भी प्रकट हो गया और तत्पश्चात् प्रवर्धमान विशुद्ध सयम-परिणामो के निमित्त से मन पर्यवज्ञान भी प्रकट हो गया। जो भगवान् के पास आने के पूर्व तक महाकृष्ण लोहे के समान मिथ्यादृष्टि मिथ्याज्ञानी और मिथ्या चारित्री थे, वे ही भगवान के पारस-पाषाण रूप चरण-कमल के सम्पर्क मात्र से महान् सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी और सम्यक् चारित्री बनकर काचन के समान चमकने लगे।

गौतम को दीक्षित हुआ देखकर उनके पाच सौ शिष्यो ने भी भगवान के पास भगवती जैनेश्वरी दीक्षा अगीकार कर ली और गौतम उनके गणधर बन गये। भाई, आत्मा का उत्थान करना अपने ही हाथ मे हैं। जब यह जीव अपने आत्म स्वरूप को पहिचान लेता है, तब उसका उत्थान होते देर नहीं लगती। देखो—गौतम क्या से क्या हो गये। जब मनुष्य आत्म-विमुख होकर कार्य करता है, तब वह पतन की ओर चला जाता है। जिसका आप हम सभी लोग अनुभव करते हैं। इस पतन को रोकने की आवश्यकता है। उसे रोके बिना कुछ होने वाला नही है। जब हम निज रूप मे आयेंगे और पर रूप को छोडेंगे, तभी हमको शाश्वत सुख प्राप्त हो सकेगा। अरे, पररूप तो बहुत देखे हैं। परन्तु निज रूप को नही देखा है और उसे देखे बिना आत्म-कल्याण नही हो सकता है। अध्यात्म कवि प० दौलतरामजी कहते हैं—

कर वोला—मेरा तो नही पर तेरा मुह अवश्य काला है। इस पर वह वोला—मेरा नही, तेरा है। यह सुनते ही यह विगड उठा और कहने लगा तेरा मुह काला और तेरे वाप दादा का मुह काला। इस प्रकार वोलता हुआ ज्यो ही आगे वढा कि फिर किसी दुकानदार ने टोक कर कहा—अजी भाई सा! आज काला मुह कहा कर आये है। सुनते ही वह फिर भडका और दूसरो को गाली देते हुए आगे वढा कि फिर वहां के लोगो ने वही वात दोहरायी। यह सभी कहने वालो को गालिया देता हुआ जा रहा था कि एक परिचित वृद्ध सज्जन ने पुकार कर इसे अपने पास वुलाया और प्रेम से अपने पास गद्दी पर वैठाया। और नौकर से दर्पण मगाकर इसे दिया। इसने ज्यो ही दर्पण मे अपना मुख देखा तो उसे सचमुच काला पाया। इसका सारा गुस्सा ठडा हो गया और सोचने लगा कि भाभी ने यह मजाक किया है और मैं वाजार मे सच्ची कहने वालो को भी गालिया देता आया हू, यह वहुत वुरा काम मैंने किया है। तभी सेठ ने नौकर से सावुन -पानी और तौलिया मगाया और इसे अपना मुख धोने के लिए कहा। वह मुह साफ करके इन सेठ जी का आभार मानता हुआ अपनी दुकान को चला और मार्ग मे पहिले जिन्हे गालिया दी थी, उनसे क्षमा-याचना करने लगा।

हा, तो जैसे उस लडके ने पश्चात्ताप किया और लोगो से क्षमा मागी। उसी प्रकार गौतम भी पश्चात्ताप करने लगे और भगवान से अपने अपराधो की क्षमा मागते हुए वोले—भगवन्, मेरी आत्मा का कल्याण कैसे होगा? तव भगवान ने कहा—'वुज्झ,वुज्झ' 'हे गौतम, तत्व समझो' और यदि आत्म-कल्याण करना है तो प्रतिवोध को प्राप्त करो। यह सुनते ही गौतम विशुद्ध हृदय से भगवान के श्री चरणो मे आकर नत-मस्तक हुए और कहने लगे—भगवन्, कृपा कर वताइये कि मेरा असली स्वरूप क्या है? उन्हे स्वय जीव के विपय मे शका थी और वेद के 'द्रष्टव्योऽरेऽयमात्मा' इत्यादि वाक्य का अर्थ वे अभी तक नही समझ सके थे। तव भगवान् ने 'उप्पज्जेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' इस त्रिपदी का उपदेश दिया। अर्थात्—हे गौतम, यह उत्पन्न होने वाला, नाश होने वाला और अपने स्वरूप मे स्थित रहने वाला पदार्थ है

और इसी प्रकार ससार का प्रत्येक द्रव्य 'उत्पाद-व्ययध्रौव्यात्मक सत्' स्वरूप है। गौतम ने भगवद्-उपदिष्ट इस त्रिपदी को सुना और उसका अर्थ चिन्तवन करते—करते ही चौदह पूर्वों का ज्ञान उत्पन्न हो गया।

भाइयो, बताओ—क्या गौतम भगवान् के पास पट्टी-पेन्सिल को लेकर पढने को बैठे ? नहीं। अरे, जब आत्मा के ज्ञान का क्षयोपशम प्रकट होता है, तब वह तीन पदो से ही प्रकट हो जाता है। गौतम को भी तीन पदो से ही सारे द्वादशाङ्ग श्रुत का ज्ञान उत्पन्न हो गया। यद्यपि ज्ञान आत्मा मे ही था। उसे कही से लाना नही था। किन्तु निमित्त मिलने की देर थी। उसे भगवान का निमित्त मिला और वह प्रकट हो गया। इस प्रकार भगवान के शिष्य बनते ही—दीक्षा लेते ही पूर्ण मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के साथ तत्काल अवधिज्ञान भी प्रकट हो गया और तत्पश्चात् प्रवर्धमान विशुद्ध सयम-परिणामो के निमित्त से मन पर्यवज्ञान भी प्रकट हो गया। जो भगवान् के पास आने के पूर्व तक महाकृष्ण लोहे के समान मिथ्यादृष्टि मिथ्याज्ञानी और मिथ्या चारित्री थे, वे ही भगवान के पारस-पाषाण रूप चरण-कमल के सम्पर्क मात्र से महान् सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी और सम्यक् चारित्री बनकर काचन के समान चमकने लगे।

गौतम को दीक्षित हुआ देखकर उनके पाच सौ शिष्यो ने भी भगवान के पास भगवती जैनेश्वरी दीक्षा अगीकार कर ली और गौतम उनके गणधर बन गये। भाई, आत्मा का उत्थान करना अपने ही हाथ मे हैं। जब यह जीव अपने आत्म स्वरूप को पहिचान लेता है, तब उसका उत्थान होते देर नहीं लगती। देखो—गौतम क्या मे क्या हो गये। जब मनुष्य आत्म-विमुख होकर कार्य करता है, तब वह पतन की ओर चला जाता है। जिसका आप हम सभी लोग अनुभव करते हैं। इस पतन को रोकने की आवश्यकता है। उसे रोके बिना कुछ होने वाला नही है। जब हम निज रूप मे आयेंगे और पर रूप को छोडेंगे, तभी हमको शाश्वत सुख प्राप्त हो सकेगा। अरे, पररूप तो बहुत देखे हैं। परन्तु निज रूप को नही देखा है और उसे देखे बिना आत्म-कल्याण नही हो सकता है। अध्यात्म कवि प० दौलतरामजी कहते हैं—

हम तो कबहुँ न निज-गुण भाये ।
तन निज मान, जान तन-दुख सुख, मे बिलखे हरखाये ।।हम० १।
तनको मरन मरन लखि, तन को धरन मान हम जाये ।
या भ्रम-भवर परे भव-जल चिर, चहुगति विपत लहाये ।।हम० २।
दरश बोध व्रत सुधा न चाख्यौ, विविध विषय विष खाये ।
सुगुरु दयालु सीख दई पुनि पुनि, सुनि-सुनि उर नहि लाये ।।हम० ३।
बहिरातमता तजी न अन्तर, दृष्टि न ह्वै निज ध्याये ।
धाम काम धन रामा की नित, आश हुताश जलाये ।।हम० ४।
अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी, सब सुखमय मुनि गाये ।
'दौल' चिदानन्द स्वगुन मगन जे, ते जिय सुखिया थाये ।।हम० ५।

भाइयो, हमने कभी भी अपने गुणो की भावना नही की । आज तक शरीर को अपना मानकर उसके दुख मे दुखी और सुख मे सुखी होते रहे । हमने शरीर के मरण को अपना मरण माना, और शरीर के जन्म को अपना जन्म जाना । इस भ्रम बुद्धिरूपी भवर मे पडकर हम चिरकाल से इस चतुर्गति रूप ससार मे दुख उठाते घूम रहे हैं । हमने अपना दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप अमृतमय आत्मस्वरूप कभी नही चखा और नाना प्रकार के विषय रूप विषयो को ही खाया है । सुगुरु ने दयालु बन करके बार-बार हमे उत्तम शिक्षा दी और हम उसे सुन-सुन करके भी अपने हृदय मे नही लाये । हमने आज तक बहिरात्मता मिथ्यात्वीपना नही छोडा और अन्तर दृष्टि बनकर कभी अपने को नही ध्याया । हम निरन्तर धन-धाम, रामा-कामादि की आश रूप हुताशन (अग्नि) मे ही जलते रहे । अरे, मुनिजनो ने अपने आत्मा का स्वरूप अचल, अनुपम सुखमय शुद्ध चिद्रूप बताया है । जो अपने इस चिदानन्दरूप स्वगुणो मे मग्न हुए तो शाश्वत सुखी बन गये ।

शरीर से आत्मा भिन्न है

बन्धुओ, यह पुद्गल शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न हैं, जिस दिन यह भेद-विज्ञान समझ मे आ जायगा, उसी दिन हमारा निज रूप सामने आ जायगा । हमारा निज रूप न काला है, न गोरा है । उसमे किसी भी

और कर्मों का मोर्चा लग गया है। परन्तु भगवान की वाणी रूपी शेरनी वार-वार जोर की आवाज देकर कह रही है—'बुज्झ-बुज्झ'। हे आत्माराम, अव तो मोह की नीद को छोडकर जागो—अव भी जागो। फिर कोई तेरा सामना करने वाला नही है। जैसे शेरनी की आवाज सुनकर शेर जाग गया, तो शिकारियो को मारता हुआ अपनी शेरनी के पास जा पहुचा। इसी प्रकार तुम भी जागो और आत्म स्वरूपोपलब्धि रूप सिद्धि के पास पहुचो।

पं० दौलतराम जी ससारी जीवो को सम्बोधित करते हुए इस जिन वाणी के अभ्यास की प्रेरणा करते हैं—

> जिन वाणी जान सुजान रे, जिनवाणी जान सुजान रे।
> लाग रही चिरतें विभावता, ताको कर अवसान रे ।।जिन०१।।
> द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव की, कथनी को पहिचान रे।
> जाहि पिछाने स्व-पर भेद सव, जानें परत निदान रे ।।जिन०२।।
> पूरव जिन जानी तिन ही ने, भानी संसृति वान रे।
> अव जानें, अरु जानेंगे जे, ते पावैं सिवथान रे।।जिन०३।।
> कह तुस मास मुनि शिवभूती, पायो केवल ज्ञान रे।
> यो लखि दौलत सतत करो भवि,चिद्वचनामृत पान रे ।।जिन०४।।

भाइयो, सन्तपुरुष पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि जिनवाणी का अभ्यास करो। इसके अभ्यास से ही तुम्हे विभाव-भावो का ज्ञान होगा और तभी तुम उनका अन्त कर सकोगे। इन्हें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से जिन्होंने पहिले जाना, उन्होंने ससार का विनाश कर मोक्ष पाया है, आज पा रहे हैं और आगे पायेंगे। 'मातुष् मा रुष' का उच्चारण करने वाला शिवभूति मुनि केवलज्ञानी वन सिद्ध हो गया। ऐसा समझकर हे भव्य जीवो, तुम नित्य जिन वचनामृत का पान कर चिदानन्द अमृत का पान करो।

यहा कोई पूछे कि कर्म तो आठ हैं और आत्मा अकेला है। वह उनको

ने देखा कि मेरे शेर को मारने के लिए चारो ओर लोग हथियार ले-लेकर खडे हैं और मेरा शेर गहरी नीद मे सो रहा है। अब तो यह असमय में ही मारा जायगा। यह सोचकर शेर को जगाने के लिए उसने जोर से दहाड मारी। मानो उसने अपनी आवज मे कहा—ऐ वनराज, शत्रु तेरे पर चढ कर आ गये हैं, उन्होंने तुझे चारो ओर से घेर लिया है। अब तेरी जान खतरे मे है। शेरनी की आवाज सुनकर भी आँखें वन्द किये ही वह अपनी धीमी आवाज मे गुर्राता हुआ कहता है—अरी, मेरी नीद क्यो खराव करती है। मुझे शान्ति से सोने दे। शेरनी ने देखा कि शेर आखें वन्द किये पडा हुआ है, तव उसने जोर से दूसरी दहाड लगाई और कहा—अरे मूर्ख, तेरे मारने की पूरी मोर्चाबन्दी हो चुकी है। अव तो वन्दूको के घोडे दवने की ही देरी है। यदि सभलना हो तो, अब भी सभल जा।

इस दूसरी आवाज के आते ही शेर होश मे आ गया। उसे आख खोलकर जो देखा सो ज्ञात हुआ कि मोर्चा तो सचमुच मे लग गया है। अव तो केवल घोडे दवने की ही देर है। वह उठा और चारो ओर अपनी नजर दौडाई। सव स्थिति देखकर मन मे सोचने लगा कि अरे, इन्होने मुझे नीद मे वेहोश देखकर धोखे से मारने की तैयारी की है। वस, फिर क्या था—उसने जोर से एक दहाड लगाई, जिसे सुनते ही शिकारियों के हाथ से वन्दूकें छूटकर नीचे गिर पडी और वह छलाग मारता और चार-छह का सफाया करता हुआ अपनी शेरनी के पास चला गया। उसने शेरनी के पास पहुचकर कहा—देखी मेरी करामात! उन लोगो का मोर्चा क्या काम आया? देख, मैं उन मोर्चो को चीरकर तेरे पास आ गया हूँ। तव शेरनी वोली—क्यो अभिमान की डीग मार रहे हो? यदि मैं न जगाती, तो क्या तुम मेरे पास आ सकते थे। शेर ने स्वीकार किया कि तेरे जगाने से ही मैं सभल सका और जीवित वचकर तेरे पास आ सका हू।

भाइयो, जैसे उस शेरनी ने शेर को जगाया, तो वह सावधान हो गया। यदि शेरनी न जगाती, तव तो वह मौत के मुख मे जाने ही वाला था। इसी प्रकार हमारा यह आत्मा रूपी शेर वेहोश सो रहा है। इसके भी चारो

१७ | विलासिता को त्यागो !

सज्जनो, ससार के समस्त प्राणियो मे मानव-जीवन एक दिव्य जीवन है। परन्तु उसे भी कभी-कभी अपने स्थान से गिरने का अवसर आता है। यह अवसर कब आता है ? जबकि यह मानव विलासिता मे परिणत हो जाता है। तब उसका यह दिव्य जीवन नारकीय जीवन बन जाता है और मानव जीवन की सारी गरिमा एव महिमा नष्ट प्राय हो जाती है।

आसक्ति के दो प्रकार

अब देखना यह है कि विलासिता किसको कहते हैं ? इन्द्रियों के विषय-भोगो की तीव्र अभिलाषा को विलासिता कहते हैं। यह विलासिता या भोगो की तीव्र अभिलाषा भी दो प्रकार की होती है—एक तो उस भ्रमर जैसी—जो कि फूल पर आकर मडराया, गुनगुनाया और सुगन्ध लेकर रवाना हो गया। वह सुगन्ध मे आसक्त होकर वहीं नही बैठा रहता है। किन्तु सुगन्ध लेकर तत्क्षण उड जाता है। दूसरी भोगाभिलाषा उस भ्रमर जैसी—जो फूल की सुगन्ध में मस्त होकर वही रह जाता है—उसे लेने मे इतना आसक्त हो जाता है कि फिर उस फूल को छोडना ही नहीं चाहता है। साधारण पुष्पो पर यदि भौंरा अधिक समय तक बैठकर उसका रस-पान करे, तो उसकी

कैसे जीत सकता है ? इसका उत्तर यह है ? कि कर्मों की शक्ति असख्यात है, जबकि आत्मा की शक्ति अनन्त है। फिर ये आठ ही क्या आठ सौ और असख्याते भी आ जावें तो भी यह अनन्त शक्ति का धारक आत्मा उन सब कर्मों का चकचूर करके आत्म स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। जब तक आत्मा सोती है, तब तक ही कर्म लुटेरो का साम्राज्य है। आत्मा के जगते ही ये चारो ओर भागने लग जायेंगे। देखो—गौतम की आत्मा जगी तो भगवान के पट्टधर गणधर बनते देर नही लगी। यदि आप लोग भी जागेंगे तो आपको भी भगवान जैसा बनने मे विलम्ब नही होगा। सज्जनो, अपनी आत्मा को जगाओ और शक्ति को पहिचानो।

वि० स० २०२७ भाद्रपदशुक्ला १०
जोधपुर

●●

आखें वन्द किये उस कमल कोश मे वैठे परवशता का अनुभव कर रहा था। परन्तु भाई, यह ससारी प्राणी विचार तो कुछ और करता है और होता कुछ और ही है। भविष्य के गर्भ मे क्या है, क्या होने वाला है, इसका किसी को कुछ भी पता नही है। इतने मे ही एक मदोन्मत्त गजराज पानी पीने के लिए उस सरोवर पर आया। भीतर घुसकर खूब पानी पिया और अपनी सूड हिलाते हुए कमलिनी को उखाड कर अपने मुख मे रखकर उसे चवाता हुआ इधर चला, और उधर उस भौरे की सव आशाएं भी उसी के साथ समाप्त हो गई। वह हाथी उसके लिए काल वनकर आया और उसकी समस्त आशाओ के साथ उसे भी समाप्त कर गया। भाइयो, यह सव भ्रमर की विलासिता के कारण हुआ। यदि वह सूर्यास्त होने के पूर्व ही अपने अन्य साथियो के साथ कमल से उड जाता, तो इस प्रकार से असमय मे उसका अन्त न होता।

जो भौंरा पुष्पो की सुगन्ध मे आसक्त नही होकर और ऊपर-ऊपर से ही उसका सौरभ लेकर उड जाता है, उसकी ऐसी कुमौत नही होती। किन्तु जो भौंरा विलासी वनकर उसमे मस्त हो जाता है, उसे ही कभी विना मौत के मरना पडता है। वह भौंरा कमल के इस सौरभ का लोलुपी या विलासी वना, इसीलिए उसे असमय मे कुमौत से मरना पडा।

अरे, वह भौंरा तो एक चतुरिन्द्रिय प्राणी है। परन्तु मनुष्य तो सज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है और ससार के सव प्राणियो मे सवसे अधिक वुद्धिमान् है, अपने भले-वुरे का विवेक रखने वाला कहा जाता है, वह भी आज दिन-रात विलासिता के ही साधन जुटा रहा है और उत्तरोत्तर उसी मे निमग्न होता जा रहा है। वह यही चाहता है कि मेरे शरीर को हर प्रकार से आराम मिले। मुझे किसी भी प्रकार का दुःख न उठाना पडे। वह खाने—पीने मे निमग्न है और भोग भोगने में आसक्त हो रहा है। आरम्भ—परिग्रह के कामों मे मस्त वना फिरता है। उसे रात—दिन भोग—विलास के सिवाय दूसरी वात का ध्यान ही नही है। इस प्रकार विलासिता मे डूवा हुवा वह उत्तरोत्तर अपना सत्यानाश करता जा रहा है। उसे इनमे मुक्त होने की कभी

कलिया विखर जाती है। इसलिए वह पकज पुष्प कमल पर उसकी सुगन्ध से आकृष्ट होकर वैठता है और लम्बे समय तक रस-पान करता हुआ उसकी सुगन्ध मे आसक्त वना रहता है।

कमल दो प्रकार के होते हैं—सूर्य-विकासी और चन्द्र-विकासी। चन्द्र-विकासी कमल रात्रि मे ही खिलते है और उन्हे कुमुद कहते हैं। सूर्य-विकासी कमल दिन मे सूर्य के उदय होने के साथ विकसित होते हैं और सूर्यास्त के साथ सकुचित हो जाते हैं। भौरे सूर्य के प्रकाश मे ही उडते हैं अत कोई भौंरा किसी कमल की सुगन्ध से आकृष्ट होकर उस गन्ध और रस के पान मे इतना मस्त होगया कि उसे सूर्य के डूवने का भी भान नही रहा और सूर्यास्त के साथ ही कमल सकुचित हो गया और वह भौंरा उसी मे वन्द हो गया। अव वह तडफडाता है कि किसी प्रकार मैं इससे वाहिर निकल जाऊ। जव किसी भी प्रकार से वाहिर नही निकल पाता है, तव वह पश्चात्ताप करता है कि मैंने वडी भूल की—जो सूर्यास्त के पूर्व ही उडकर नही भाग गया। यदि मैं इसकी सुगन्ध मे इतना आसक्त न होता तो इस प्रकार कैद खाने मे न पडता। अव वह मन मारकर वैठा वैठा सोचता है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकज श्री।
इत्थ विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त! हन्त! नलिनीं गज उज्जहार॥

दस-वारह घटे के वाद रात्रि चली जायगी, फिर सुनहरा सुप्रभात काल होगा। तत्पश्चात् भास्कर सूर्य का उदय होगा और उसके उदय होते ही यह कमल—लक्ष्मी विकसित होगी तव यह कमल भी खिल पडेगा और मैं तुरन्त उड जाऊगा और अपने भाई—वन्धुओ से जा मिलूगा। तव मैं इस कैदखाने की परवशता का दुख उनके सामने रखूगा और उनसे कहूगा—कि भाइयो तुम लोग मेरे जैसे कभी धोखे मे मत पड जाना। अन्यथा तुम्हे भी सारी रात कैदखाने मे मेरे समान कैदी वनकर उस दम—घोटू वातावरण का—काल कोठरी का असह्य दुख भोगना पडेगा। इस प्रकार विचार करता हुआ वह

लोलुपी शिकारी चार—छह आदमी जगल मे जाते हैं और छोटे-मोटे अनेक जानवरो का शिकार करके मोटरो की मोटरें भर लाते है । आप वताइये—क्या इतने जानवरो का मास खा जाते हैं ? नही । परन्तु भाई, उन्हें शिकार खेलने मे मजा आता है और समझते हैं कि हमने वडी वहादुरी का काम किया है । हम वहुत अच्छे निशाने वाज हैं । अव उनसे पूछो कि थोड़े समय के लिए तो तुम्हारा मनोरजन हो गया और दीन—प्राणियो को मारकर अपने को वहादुर समझ लिया । परन्तु यह तो सोचो कि कितने निर्वल, असहाय, मूक पशु-पक्षियो का तुमने सहार कर डाला ? असमय मे ही तुमने उनके प्राण लूट लिये । उनकी आत्माए क्या तुम्हें आशीर्वाद देंगी ? कभी नही । वे तो यही कहते अपने प्राण छोडती हैं कि हमे मारने वालो का भव-भव मे सत्यानाश हो । और सचमुच ही ऐसे हत्यारो को अनेक भवो तक कुयोनियो मे जन्म लेकर असख्य असह्य दु ख भोगने पडते हैं । शिकार खेलने वालो को तथा पशु-पक्षियो को मार-मार कर खाने वालो को याद रखना चाहिए कि आज जिनको तुम मार कर खा रहे हो—अगले भवो मे वे ही जीव तुम्हें भी मार-मारकर खावेंगे और अपने आज के वैर का वदला लेकर रहेंगे । नरकों मे असख्यकाल तक नारकीय जीव तुम्हारे ही शरीर का मांस काट-काटकर तुम्हें जवरन खिलावेंगे । उस समय तुम रोते और विलाप करते हुए पछताओगे । परन्तु जो विलासितामय जीवन विताने वाले हैं उन्हें भविष्य के दुष्परिणाम की चिन्ता नही, किन्तु वर्तमान मे उपलब्ध भोगों के भोगने की ही चिन्ता है । उनकी तो एक मात्र अभिलाषा ऐयाशी और विलासी जीवन विताने की रहती है । फिर भले ही भविष्य मे कुछ हो ।

अव पीने के पदार्थों के ऊपर भी कुछ विचार कर लें । पेयद्रव्यो के लिए भी आज का मानव इतना अधिक आसक्त और विलासी वन गया है कि वह उनमे पेय और अपेय का भी ध्यान नही रखता है । वह पानी पीले, दूध पीले, दही, मठ्ठा पीले और गन्ने आदि के रस पीले । यहा तक तो उसका पीना उचित कहा जा सकता है । किन्तु वह तो इन सव से भी वहुत आगे वढकर दारू और भग पीने के लिए भी तैयार हो गया और इनके पीने मे

इच्छा ही नही होती है। हम जितने भी नाना प्रकार के दुखो से पीडित होते हुए देख रहे हैं, वह सब विलासिता का ही कुफल है।

भोजन की आसक्ति

आज हम देखते हैं कि मानव का स्तर कितना नीचे गिरता जा रहा है। एक भोजन को ही ले लीजिए—जो भोजन के विलासी बने हुए हैं, खाने के लोलुपी बन उसी मे आसक्त हो रहे हैं, उन्हे इस बात का कोई विचार नही है कि यह पदार्थ भक्ष्य है, या अभक्ष्य है ? खाद्य है, या अखाद्य है ? इसका कोई विचार न करके वे अखाद्य और अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण कर रहे हैं। जो मास—भक्षी हैं वे नाना प्रकार के जानवरो को मारते हुए—उनके टुकडे-टुकडे करते हुए, छेदन-भेदन करते हुए और जलाते—पकाते हुए क्या उनका एक रोम भी पीड़ित होता है ? नही होता है ? अरे, उनके हृदय मे दया और करुणा का अश भी दिखाई नही देता। वे तो यही चाहते हैं कि जिस किसी भी प्रकार से हमारे शरीर की पुष्टि हो। हमे तो बलवान् बनना है। उनके सामने मारे जाने वाले जीव कितने ही छट-पटावें, बिल-बिलाप और करुण आक्रन्दन करें, परन्तु मास-भक्षियो के मन मे यत्किंचित भी दया आने का नाम नही। यदि कोई व्यक्ति उनकी नृशसता और क्रूरता को देख कर—उनके राक्षसी कार्यों से पीडित एव द्रवित हृदय होकर कहे कि यह आप क्या कर रहे हैं, यह जघन्य एव घृणित क्रूर कार्य करना आपके लिए योग्य नही है। तब वे कहते हैं कि तुमको क्या पता है ? ये तो हमारे खाने के लिए ही भगवान ने बनाये हैं, फिर हम उनका क्यो न आनन्द लेवें ? मांस भक्षियों का हृदय पाषाण से भी अधिक कठोर हो जाता है, फिर उसमे धर्म-बुद्धि या दयालुता उत्पन्न होना असभव है। ऐसे अशुचिभक्षी लोगो के लिए न तो रात का विचार है और न प्रभात—सायकाल का। न उन्हें पर्व-त्योहार आदि का विचार रहता है। उल्टे त्योहार के दिन तो शिकार खेलने जावेंगे और मास पकाकर खावेंगे। वे खाते तो कम है। किन्तु प्राणी-विघात बहुत अधिक करते हैं। जैसे—भैंसा या सुअर किसी खेत मे घुस जाता है तो वह खाता कम है किन्तु धान का नुकसान अधिक कर डालता है। ये मांस—

विलासिता बढती जा रही हैं। हमे खादी के या मोटे वस्त्र अब पसन्द नही पडते हैं। अब तो हमको सुन्दर चटकीले-भडकीले नाइलोन, टेरालीन आदि नये नये फैशनेबुल और बारीक वस्त्र चाहिए। परन्तु आप को ज्ञात होना चाहिए कि जितने भी बारीक और चमकदार वस्त्र हैं, उनके बनाने के लिए मील-कारखानो मे जानवरो की चर्बी लगाई जाती है। उन्हे पहिन करके आप लोग हिंसा के भागीदार बनते हैं। और, आप लोगो को तो रेशमी वस्त्र बहुत पसन्द हैं। परन्तु ये रेशमी वस्त्र बनते कैसे हैं क्या यह भी आप को ज्ञात है ? कहते हैं कि एक तोला रेशम प्राप्त करने के लिए ढाई लाख कीडे खत्म होते है। उन रेशम के कीडों को उबलते-खौलते पानी मे डाला जाता हैं—जिस की तीव्र दाह से बचने के लिए वे उपने पेट मे भरे हुए रेशम को अपने शरीर—के ऊपर लपेटते हुए मरण को प्राप्त होते हैं। जब वे सब मर जाते हैं, तब उनके शरीर पर लिपटा हुआ रेशम निकाल लिया जाता है। परन्तु रेशमी वस्त्रो के शौकीनो को उन जीवो की दया का ध्यान ही नहीं है।

भाइयो, ये प्रचुर हिंसा के साधनभूत महान् आरम्भ और परिग्रह उनके ही होते हैं जो कि महा विलासी हैं। इसी प्रकार जीवित जानवरो की जीते जी उतारी गई खाल के बने बढ़िया सूट केस, घड़ियों और पैटों के पट्टे, मनी बेग-पर्स आदि भी इन शौकीन लोगों को चाहिए। आज यदि एक-एक घर के भीतर छान-बीन की जाय तो कितने ही जानवरो की खालों से बनी ये चीजें हर घर मे पाई जावेंगी।

सज्जनो, इन खान-पान और ओढने—पहिनने के व्यवहार को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि लोग एकदम नास्तिक बनते जा रहे हैं जिन्हें कि लोक-परलोक और पाप-नरक आदि का कुछ भी विचार नही रहा है और जिन्होंने अपना यह ध्येय ही बना लिया है कि—

खाना-पीना मौज उडाना, रहना बे परवाह।
दुखी जगत को देख-देखकर, कभी न भरना आह॥
चलो अब मौज उड़ावें।

ही अपने जीवन का आनन्द मानने लगा है। अभी तक तो नीची जाति वाले लोग ही पीते थे। परन्तु जो अपने को उच्च जाति और वश का मानते हैं, वे भी आज शराव पीने मे नीची जाति-वालो से भी वहुत आगे वढ गये हैं और आगे वढ रहे हैं। यह कितने दुःख और आश्चर्य की वात है।

आज प्रजातत्र का युग है। वोटो पर ही शासन अवलवित है। प्रति पाच वर्ष के पश्चात् विधान सभा तथा लोकसभा का चुनाव होता है। अव विधायक लोग अपने वोटो के लिए लोगो को भर पेट दारू पिलाकर हजारो वोतलें खाली कर देते हैं और उनसे वोटो की याचना करते हैं। आज इन उम्मीदवारो का जीवन स्तर कितना नीचे गिर गया है।

महात्मा गाधी ने तो अग्रेजी शासन-काल मे शराव की दुकानो पर जाकर पिकेटिंग किया—धरना दिया—और सत्याग्रह करके हजारो भारतीयो को इस नारकीय जीवन से वचाया। परन्तु आज उन्ही के अनुयायियो ने जव देश की वागडोर सभाली और मत्री वने तो अपने पूज्य वापू के सिद्धान्त को ताक पर रखकर सव प्रान्तो मे शराव को वढावा दिया। पहिले जितनी शराव की विक्री होती थी, उससे कई गुनी अधिक विक्री आज शराव की हो रही है। नाटक-सिनेमा, होटल, नाचघर आदि सभी मनोरजन के स्थानो मे शराव का दौर-दौरा है और निरन्तर प्रोत्साहन दिया जा रहा है। आज जो लोग शराव-प्रचार के विरुद्ध आन्दोलन करते हैं, उन्हे जेलो में डाला जाता है। यह सव स्वार्थ-साधन के लिए किया जा रहा है। भले ही जनता का जीवन दुःख दायी वन जाय और हजारो परिवार वर्वाद हो जायें, परन्तु इसकी उन्हे कोई परवाह नही है। वस, सरकार की आवक वढ़ना चाहिए। यदि ये सभी प्रान्तो के मत्रि-मण्डल अपने विलासी जीवन के ऊपर होने वाले अनाप-शनाप खर्चों को कम कर देवें तो लाखो करोडो रुपयो की वचत सहज मे ही हो सकती है। परन्तु अनैतिक मदो मे व्यय अधिक करके—अपने राजसी वैभव का व्यय भार वढा करके— उस घाटे की पूर्ति के लिए शराव प्रचार जैसे अनैतिक उपायो से आय वढाने का तर्क देते हैं।

यही हाल आज हमारी पोशाक का है। इन वस्त्रो से भी हमारी

चक्कर मे फसा-उसके साथ भोगविलास मे निमग्न हुआ कि उसने युद्ध मे अपने एक सौ शूरमाओ और सोलह सौ सामन्तो को भी मरवा दिया, फिर भी गढ़ से नीचे उतरने का नाम नही लिया। जब सातवी बार मोहम्मद गौरी का आक्रमण हुआ और वह उससे लड़ने के लिए निकला तो उसका साथी एक भी शूरमा और सामन्त शेष नही बचा था। तब वह अकेला ही युद्ध क्षेत्र मे पहुचा और शत्रु पर वाण छोडने लगा। परन्तु अब वे वाण हाथी-घोडो से टकराकर नीचे गिरने लगे। तब चन्द कवि ने दुख की सास भरते हुए कहा—

दिन पलटा, पलटी धरा, पलटा तीर कमान।
चंद कहे पृथ्वीराज ने, दिन पलट्यौ चौहान ॥

अरे, दिन क्या पलटे ? उसने तो अपने हाथ से ही पलटा लिये। वह सयोगिता के साथ भोग-विलास मे लिप्त हो गया और शरीर की सारी शक्ति समाप्त करते हुए भी सोचता रहा कि मेरी सानी का दूसरा कोई न हुआ, न है और न होगा। इसी अभिमान में उसने अपना सर्वस्व नष्ट कर दिया।

भाइयो, जो भोग-विलासी होते हैं, उनमे त्याग, वैराग्य, आदि गुण कहा रह सकते हैं। हमारे महर्षियों ने कहा है कि—

विषयासक्तचित्तानां गुण को वा न नश्यति।
न वैदुष्य न मानुष्य, नाभिजात्य न सत्यवाक् ॥

अर्थात् विषयों मे—स्त्री के भोगों मे आसक्त चित्तवाले मनुष्यो के कौन से गुण नष्ट नही हो जाते हैं ? सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। फिर न उसमे पांडित्य रहता है, न मनुष्यता रहती है, न कुलीनता रहती है और न सत्यवादिता ही रहती है। और भी कहा है—

पाक त्याग विवेक च वैभव मानितामपि।
कामार्त्ता खलु मुञ्चन्ति किमन्यै स्व च जीवितम् ॥

अर्थात्– काम से पीडित मनुष्य अपनी पवित्रता, त्याग, विवेक, वैभव, मान और सम्मान को भी छोड वैठते हैं—उनके ये सब गुण नष्ट हो जाते हैं। और तो क्या, वे अपने जीवन को भी छोड वैठते हैं और मरण को प्राप्त होते हैं।

विषयासक्ति

अब विषय-भोग का विचार करें तो आज का मानव इतना कामान्ध हो गया है कि वह एकदम विवेक-शून्य और पागल बना सा रहा है। उसे अपने हिताहित का, यश-अपयश का, जाति-कुल और खानदान का, तथा धर्म-अधर्म का कुछ भी भान नहीं रहा है। जब वह भोग के लिए उद्यत होता है, तब फिर वह यह नहीं देखता है कि यह किस जाति की स्त्री है? वह मांस-भक्षिणी और मद्य-पायिनी वेश्याओं के यहां जाकर अपना धर्म और गौरव का सत्यानाश करता है। और इतना अधम बन जाता है कि वह फिर अपनी बहिन और बेटी तक का भी ख्याल नहीं रखता है और उनके साथ बलात्कार करके अपनी निकृष्ट विषय-वासना की पूर्ति करता है और अपनी हविस को पूरी करते हुए भी लज्जित नहीं होता है। इस विषय-भोग में अन्धा बनकर मानव अपने धर्म का बुद्धि और बल का नाश कर देता है, अनेक असाध्य रोगों से ग्रसित होकर सड़ता है और फिर समाज की दृष्टि में अपयश का भागी बनकर मरण को प्राप्त होता है।

भाइयो, इतिहास साक्षी दे रहा है कि जिन बड़े-बड़े प्रतापशाली राजा-महाराजाओं के सामने हजारों योद्धा भी कामयाब नहीं हो सकते थे, युद्ध में जिनके साथ मुकाबिला नहीं कर पाते थे, वे भी जब इस स्त्री की विलासिता के दलदल में फसे और भोगों की कीचड़ में डूबे - तो ऐसे डूबे कि फिर उनका उद्धार नहीं हो सका। लाखों-करोड़ो की अपनी सम्पत्ति समाप्त कर बैठे, भीतर से खोखला हो गये और इस सुरा-सुन्दरी के वशीभूत होकर अपना राज्य तक गवा बैठे।

पृथ्वीराज चौहान-जिस की राजधानी अजमेर थी - वह इतना पराक्रमी था कि उसके द्वारा युद्ध स्थल में छोडा गया बाण हाथी के कुम्भस्थल को चीरता हुआ शत्रु का वक्ष स्थल—भेदन करता था। ऐसा महान् शक्तिशाली था। और इसीलिए उसके इस नगर का नाम 'अजय मेरु' पडा। अर्थात् उसके गढ को—उसके नगर को जीतना सुमेरु पर्वत के समान अजेय है—कभी जीता नहीं जा सकता है। परन्तु जब वही पृथ्वीराज सयोगिता के

गवायेगा ? वह कैसे बचा हुआ रह सकता है ? देखो—कर्णेन्द्रिय के वशीभूत हुआ हिरण अपने प्राणों को खो देता है। उसके लिए कहा गया है कि—

आग चटुके पवन भखे, तुरिया आगे जाय।
पूछो राजा भोज से, हिरण किसो घी खाय ॥

जो हिरण बडे तेज दौडने वाले घोडों से भी आगे चौकडी भर कर भागता है और क्षण भर मे देखते-देखते बडे-बड़े जगलो को पार कर लेता है, ऐसा चचल, तेज चाल का वह चतुर है। परन्तु उसी के सामने जब शिकारी मल्हार राग गाता है और सुरीली तान छोडता है, तब वह बेभान होकर रुक जाता है और उसे सुनने मे आंख बन्दकर ऐसा तन्मय हो जाता है कि उसे अपने मारने वाला नहीं दिखाई देता। और उसी की गोली का शिकार हो जाता है। देखो—वह केवल एक कर्णेन्द्रिय के वशीभूत होकर अपनी जान गवां देता है।

चक्षुरिन्द्रिय के वशीभूत होकर पतगा दीपक की लौ पर पडकर उसमे जलकर भस्म हो जाता है। पतगा रूप का इतना अधिक लोलुपी है कि आपने देखा होगा कि रात मे वर्षा काल के समय बिजली के खम्बो पर लगे हुए बल्बो पर ये असख्य पतगे रात भर मडराते रहते हैं, और कुछ तो प्रकाश की गर्मी से और कुछ छिपकली आदि से मारे जाते हैं।

रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर मछली आदि पानी मे रहने वाले जलचर प्राणी अपने प्राण गवा बैठते हैं। मछली मार तालाब या नदी के किनारे जाता है। वह बंसी के काटे मे आटे की गोली लगा देता है और उसे पानी मे छोड देता है। मछली उस आटे की गोली को खाने के लिए अपना मुख मारती है और बसी का काटा उसके तालु मे फँस जाता है। झटका लगते ही मछली मार उसे बाहिर खीच लेता है और मछली तड़फ-तडफ कर मर जाती है। यदि वह रसनेन्द्रिय के वशीभूत नही होती तो क्यो प्राण गवाती ?

घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत होकर कस्तूरिया मृग—जिसकी नाभि मे कस्तूरी रहती है—वह सुगन्ध के पीछे इधर-उधर दौडते हुए अपने प्राण गवा देता है। यद्यपि कस्तूरी उसकी नाभि मे है और उसकी जोरदार सुगन्ध उसे आ रही

आचार्यों के ये वाक्य पृथ्वीराज-चौहान पर पूर्ण रूप से सत्य सिद्ध हुए और वे अपने सब राजपाट से हाथ धोकर प्राणों से भी गवा बैठे और अपनी जीवन-भर उपार्जन की हुई कीर्त्ति को स्वय ही समाप्त कर गये।

विषयी मर्यादाहीन

भाइयो, जो विलासी हो जाता है उसमे विचार करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। वह तो अनाचारी पशुओं के समान बन जाता है। अरे, पशुओ मे तो फिर भी मर्यादा है। वे मर्यादा मे ही नियत ऋतु व समय पर भोग करते हैं और मर्यादा से खाते पीते हैं। परन्तु आज का मानव तो पशुओ से भी गया बीता हो गया। उसके भीतर जरा भी मानवता नही रही। वह अपना पतन अपने हाथो से कर लेता है। मानव जब विलासी बन जाता है, तब उसका मन उसके काबू मे नही रहता और बुद्धि भी कुंठित हो जाती है। यदि उससे ही हित की बात कही जाय, तो वह भी अहितकर समझता है और हितकारी व्यक्ति को अपने मार्ग मे बाधक समझकर उसका भी अन्त करने के लिए उद्यत हो जाता है। आज ऐसी अनेक घटनाए सुनने मे आती हैं कि व्यभिचारी पुरुष या स्त्री ने अपने मार्ग मे बाधक समझकर अपने ही पति और पुत्र तक को विष देकर या अन्य अवैध मार्ग से मरवा दिया। इससे और अधिक कामान्ध पुरुष या स्त्री का क्या पतन हो सकता है?

इन्द्रियों की अधीनता

बन्धुओ, देखो—विलासिता का मूल स्रोत ये हमारी आंख, नाक, कान, जीभ और शरीर रूप पांच इन्द्रियां हैं। जो इन इन्द्रियों का गुलाम बन जाता है वह इन्द्रियों की प्रेरणा के अनुसार ही प्रवृत्ति करने लगता है। ऐसा विषय-लम्पट पुरुष फिर इन्द्रियो का स्वामी न रहकर और दास बन कर उनके वशीभूत हो नाना प्रकार के अन्याय, अत्याचार और अनाचार कर डालता है। यह बात विचारणीय है कि एक-एक इन्द्रिय के वशीभूत हुआ प्राणी जब अपने प्राण गवा देते है, तो जो पाचो इन्द्रियो के वशीभूत होगा, वह कैसे नही अपार दुखो को पावेगा? और कैसे नही अपने प्राणो को

नही होते तो फिर उनका मुकाबिला करने वाला कौन था। जब ये लोग भोग के कीड़े बन गये, दारू पीकर मारुडा गवाने लगे और भोग के चगुल मे फस-कर निरपराध जानवरो को मारने लगे, तब आज उन्हें ये मुसीबत के दिन देखने पड रहे हैं। कहा भी है कि —

एक सुरा सुन्दरि द्वय,तीजी करत शिकार।
इन तीनो के मांयने, राम तगी पर वार ॥

सुरा—सुन्दरी—शिकार

जब ये राजा लोग एक तो सुरा (दारु) मे मस्त तो गये। घर मे द्रव्य रहा नही तो कर्ज लेकर भी मारूजी दारू पीते हैं और मारुडा गवाते हैं। राजाओ के राज्य गये तेईस वर्ष हो गये। परन्तु इनको पता नही कि हमारा घर कहा है? जमीन कहा और गहना कहा है? हमारा कितना खर्च है और आमदनी कितनी है? वे तो यही सोचते हैं कि हम तो अब भी वैसे के वैसे ही है। इन लोगो के पतन के 'तीन प्रधान कारण है— सुरा, सुन्दरी और शिकार। इन तीनो में मस्त होकर अपना अपना सत्या-नाश इन लोगो ने अपने ही हाथो से कर लिया। विलासी बन जाने से इनकी शारीरिक, मानसिक शक्तिया नष्ट हो गई और क्रान्ति, तेज, सम्पत्ति आदि सब समाप्त हो गये। शास्त्रकार कहते हैं—

पुण्य क्षीण जब होत है, उदय होत है पाप।
दाझे वन की लकडी, प्रजले आपो आप ॥

मनुष्य के जब पाप का उदय आता है और पुण्य क्षीण हो जाता है तब वह आपस मे ही कट-मरकर के समाप्त हो जाता है। जैसे वन मे वास की लकडिया आपस मे ही रगड खाकर प्रज्वलित हो जाती हैं और उसमे जल कर स्वय ही राख हो जाती है। इसलिए भगवान् बार-बार सम्बोधन करके कहते हैं कि हे भव्यात्माओ, तुम लोग इन पचेन्द्रियो के विषयो मे मत उलझो, इनमे मस्त न बनो अन्यथा ससार से पार होना कठिन हो जायगा। अध्यात्मपदकार प० दौलतराम जी अपने इस चचल और

है। परन्तु उसे यह पता नही है कि यह सुगन्ध मेरी नाभि मे से ही आ रही तो वह खुशबू के लिए जगल मे दौड़ता—फिरता हुआ जव थक कर चूर-चूर हो जाता है, तव शिकारी उसका शिकार करके कस्तूरी की नाभि निकाल लेते हैं। और भौंरा भी इसी सुगन्ध के वश होकर कमल मे मुद्रित हो मारा जाता है।

स्पर्शनेन्द्रिय (उपस्थेन्द्रिय) के वशीभूत होकर वडे वडे मदोन्मत्त हाथी हथिनी के लिए कामान्ध वनकर अपने प्राण गवा वैठते हैं। शिकारी लोग हाथी दात के लिए जगलो मे जाते हैं—जहा पर कि हाथी विचरते रहते हैं। वे लोग जगल मे एक वडा भारी गहरा गड्ढा खोदते है। उस पर ताने-वाने के रूप मे कुछ वास डालकर ऊपर से पत्ते विछा देते हैं। फिर उसके ऊपर कागज की एक सुन्दर आकार की हथिनी वनाकर खड़ी कर देते हैं। जव वह हाथी उस नकली हथिनी को दूर से देखता है, तो असली हथिनी समझ कर काम से अन्धा वनकर उस पर आता है। उसके आते ही वास टूट पडते हैं और वह गड्ढे मे पड़ जाता है। पीछे शिकारी उसे भूखा मारकर कुछ दिनो के वाद उसके दात और हड्डिया निकाल लेते हैं। यदि वह हाथी स्पर्शनेन्द्रिय के वशीभूत नही हुआ होता तो उसकी इस प्रकार दर्दनाक मौत नही हुई होती। इस स्पर्शनेन्द्रिय के वश मे एक वार आया हाथी तो सदा के लिए अपने जीवन से हाथ धो वैठता है, तो जो रात-दिन स्त्री—सेवन मे फंस रहे हैं, उनका क्या हाल होगा ? तुलसीदास जी आश्चर्य के साथ कहते हैं—

कातिक मासे कूकरो, तजे अन्न अरु प्यास।
तुलसी उनकी कौन गति, जो सेवें वारह मास ॥

अरे, कुत्तों के लिए एक कात्तिक मास विपय भोग का होता है। उस समय वे खाना—पीना तक भूल जाते हैं और कुत्ती के पीछे पडे रहते हैं और आपस मे कट—मर के मर जाते हैं। परन्तु जो वारहो ही मास भोग—विलास मे पडे रहते हैं, तो उनकी दुर्गति होने मे तो शका करने की गु जायश ही नही है। परन्तु भाई, उनका क्या दोप है ? यदि हम अमुक व्यक्ति को दोप दें कि उन्होंने उसका काम विगाड दिया, तो यह ठीक नही है। वे तो विलास से विगडे हैं ? यदि ये राजा—महाराजा और जागीरदार विलासी

विभूसावत्तिय भिक्खू कम्मं बंधई चिक्कण।
ससारसायरे घोरे जेणं पडई दुरुत्तरे ।।

हे मन, तू विभूषा से—साज-शृंगार से दूर रह। हे श्रमणो और श्रावको, तुम इस विभूषा से दूर रहो। क्योकि जो साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका विलासिता के इच्छुक हैं, उनके चिकने कर्मों का वन्ध होता है। उसके फल से उन्हे दुस्तर इस घोर ससार-सागर मे पडना पडेगा। यदि एक वार भी चूक गये, तो फिर वहा से निकलना कठिन हो जायगा। इस अपार ससार-सागर को तिरकर निकलना आसान नही है। क्योकि प्रथम तो यह दु ख रूपी अगाध जल से भरा हुआ है। दूसरे यह विना किनारे का है। अत डूवने के वाद उससे उद्धार कैसे सभव है? भोग का फल ससार-पतन ही है। भोगी को ससार-सागर मे गोता खाने ही पडेंगे। किन्तु जो भोग और विलासिता का त्याग कर सादगीमय सीधा-साधा जीवन विताते हैं, उनके लिए तैरकर पार होना सरल रहता है। अरे भाई, जिनका भोजन पान, पहिनावा-ओढ़ावा और भोगादिक शुद्ध, सयमित और नियन्त्रित हैं, उन्हे यह सव उपाधि छोडते क्या देर लगती है। वे तो जरा-सा भी निमित्त पाने पर तुरन्त त्याग कर देते हैं। परन्तु जो भोगी वना हुआ है, त्याग जिसके समीप ही नही है, उसे चाहे सारे शास्त्र प्रेरणा देवें, चाहे समस्त वेद, पुराण, आगम, निगम और गुरु ग्र थ सुनाये जावें, वे सव वेकार हैं। उसका कोई भी सुधार नहीं कर सकता है।

रोग-बुढापा-मृत्यु !

भाइयो, एक स्थान पर एक पहुँचे हुए महात्मा विराजमान थे और अपने ज्ञान-ध्यान मे मग्न थे। उनके समीप से एक राजा घोडे पर चढा हुआ जा रहा था। उसकी मस्तानी और अभिमान भरी चाल-ढाल को देखकर महात्मा ने कहा—राजन्! जरा इधर आओ! महात्मा जी की आवाज सुनकर पहिले तो राजा ने सोचा—इससे मुझे क्या लेना-देना है, आगे चलता जाऊ। परन्तु कुछ विचार कर वह पीछे मुडा और सोचा कि जव यह वुलाता है,

विषयो की ओर दौडनेवाले मन को लक्ष्य करके कहते हैं—

रे मन, तेरी को कुटेव यह, करण-विषय मे धावै है ।। रे मन०।।
इन ही के वश तू अनादि से, निज स्वरूप न लखावै है ।
पराधीन क्षण-क्षीण सुमाकुल, दुर्गति विपति चखावै है ।।रे मन०१।।
फरस विषय के कारण वारण गर्त परत दुख पावै है ।
रसना इन्द्रिय-वश झष जल मे, कटक कठ छिदावै है ।। रे मन०२।।
गन्ध-लोल पंकज मुद्रित मे अलि निज प्राण गमावै है ।
नयन-विषय-वश दीप शिखा मे, अग पतग जरावै है ।। रे मन०३।।
करण-विषय-वश हिरण अरणि मे, खल-करि प्राण लुनावै है।
दौलत तज इनको, जिनको भज, यह गुरु सीख सुनावै है ।।रे मन०४।।

अरे मन, तेरी यह क्या बुरी टेक है कि तू बार-बार इन्द्रियो के विषयो की ओर ही दौडता है । इनके वश मे पडकर तू अनादिकाल से आज तक अपने स्वरूप को नही देख सका । ये इन्द्रियो के विषय प्रथम तो पराधीन हैं—कर्मोदय के अधीन हैं । यदि पुण्योदय होगा, तो मिलेंगे । अन्यथा नही । यदि कदाचित् पुण्योदय से मिल भी गये तो ये स्थायी नही है, क्षण-भगुर हैं । फिर ये आकुलता-व्याकुलता से व्याप्त है और अन्त मे दुर्गति मे ले जाकर दु ख और विपत्ति को चखाने वाले हैं । देखो—स्पर्शनेन्द्रिय के वश होकर हाथी गड्ढे मे पड़कर दु ख पाता है । मछली रसना इन्द्रिय के वश से जल मे काटे से कठ मे छेदी जाती है । गन्ध का लोलुपी भौंरा कमल के मुद्रित होने पर उसी मे अपने प्राण गवाता है । नेत्र-इन्द्रिय के वश मे होकर पतगा दीपक-शिखा मे अपने अग को भस्म करता है और कर्णेन्द्रिय के वश होकर हिरण जगल मे दुष्ट बहेलियो के द्वारा मारा जाता है । इसलिए हे चचल मन वाले दौलतराम, तू इन इन्द्रियो के विषयो को छोडकर श्री जिन भगवान का भजन कर । इस प्रकार गुरु महाराज तुझको शिक्षा की बात सुना रहे हैं ।

भाइयो, यह मानव अपने विलास और सुखद जीवन-निर्वाह के लिए जो जो कर्म करता है, उसका फल बतलाते हुए भगवान ने कहा है—

रहस्य छिपा हुआ होना चाहिए। तव शात भाव से पूछा—महात्मन्, हसते क्यो हो ? महात्मा ने कहा—तेरी मूर्खता पर मुझे हसी आ रही है। तू आखो से अन्धा, कानो से वहरा और जिह्वा से गू गा है। तेरे भीतर इतना अहकार भरा हुआ है कि तू मेरे सामने आकर 'क्या है, क्या है' कहता है। तव राजा ने विनय से अवनत होकर पूछा—भगवन, क्या है ? महात्मा ने कहा—है, और यहा है। राजा ने पूछा—यहा क्या है ? महात्मा ने कहा—अरे, फिर वही वात ? देख, जो कुछ है—वह यहा है। यहा ही स्वर्ग है और यहा ही नरक है। यही योग है और यही भोग है। यही पर योगी के लिए स्वर्ग है और भोगी के लिए नरक है।

महात्मा ने कहा—राजन् ! अभिमान के घोडे से उतरकर यहा वैठ। राजा वोला—मैं कहा वैठू ? महात्मा ने कहा—जो यह सवमे कोमल वसुन्धरा का आसन है, उस पर वैठ। राजा वोला—भगवन मेरी पोशाक मैली हो जायगी। महात्मा ने कहा—अरे, वाजार मे क्या और नही मिलेगी ? राजा ने कहा—हा मिलेगी। फिर क्या डर है ? अरे, यह पोशाक मैली तो और मिल जायगी। परन्तु मैं पूछता हू कि जो तू मैला हो रहा है, खराव हो रहा है, वह भी मिलेगा क्या ? राजा ने पूछा—मैं कैसे खराव हो रहा हू ? महात्मा ने उत्तर दिया—वस, यही तो अन्धापन है। अरे, जो मैं दिखा रहा हू, वह तो तुझे दिखाता ही नही है। और जो मैं कह रहा हू, वह तू सुनता ही नही है। इसीलिए तो तू वहरा है। तू भगवान का भजन नही करता, इसलिए तू गू गा है। इतना ही नही, तू लगडा भी है, क्योकि धर्म के मार्ग पर चलने मे असमर्थ है और तू नकटा भी है, क्योकि तुझे अपने खानदान की कुछ भी लाज नही है।

राजा ने जव महात्मा जी के ऐमे मार्मिक और आध्यात्मिक वचन सुने, तव वह कुछ देर तक तो स्तम्भित सा रह गया। पुन. महात्मा जी के पास आकर भूमि पर वैठ गया और वोला—महात्मा जी, आपके वचन वडे रहस्य पूर्ण हैं। मेरी समझ मे तो कुछ भी नही आ रहा है ?

महात्मा ने कहा—राजन्, इन वातो को समझने का प्रयत्न करो, वे

तव इसके पास जाना चाहिए। परन्तु मैं वहा वैठूगा किस पर ? क्योकि वहा पर तो मेरे वैठने के योग्य गादी-कुर्सी आदि कुछ भी नही है। यह सोचते हुए घोडे से उतर कर महात्मा जी के पास पहुचा और पूछा—महात्मा जी, क्या वात है ? महात्मा ने कहा—अरे राजन्, यही तो मैं पूछता हू कि क्या है ? राजा दुविधा मे पडा—अरे, यही तो मैं इससे पूछता हू और यही वात यह मुझसे पूछता है ?

राजा ने महात्मा जी से पुन पूछा—क्या है ? महात्मा ने कहा—मैं भी तो यही पूछ रहा हू। अन्त मे महात्मा ने कहा—अरे, तूने अभी तक क्या का अर्थ ही नही समझा है ? राजन्, मुझे तुझ पर दया आती है। अरे, तू आखों से अन्धा, कानो से वहरा और जिह्वा से गूगा है। महात्मा के ये वचन सुनते ही राजा क्रोध से अन्धा हो गया और हाथ मे हटर लेकर वोला—अरे, तू मुझे अधा, वहरा और गूगा वनाता है ? ले—मैं तुझे इसका मजा चखाता हू। ऐसा कहकर महात्माजी पर चार-छह हन्टर फटकार दिये। हन्टर पडते ही महात्मा खिल-खिलाकर हस पडा। यह देख राजा वोला—क्या तुझे और चाहिए ? उत्तर मे महात्मा ने कहा क्या तुझे और चाहिए ? यह सुनकर राजा सोचने लगा—क्या यह पागल है ? आज तो मुझे अच्छे मूर्ख से पाला पड गया। अव तो उत्तेजित होकर राजा ने और भी जोर से चार-छह हन्टर महात्मा जी को जमा दिये। महात्मा फिर भी ठहाका मार कर जोर से हसने लगा। राजा विचार मे पड गया—अरे, यह भी अजव आदमी है—जो मार पडने पर रोने के वजाय हसता है ? क्यो यह विलकुल ही विक्षिप्त या निरा मूर्ख पशु है ? राजा ने मारने के लिए पुन हाथ ऊचा उठाया। तव महात्मा वोला—हे भिखारी, क्या सोचता है ? और आने दे ? यह सुनते ही राजा ने फिर चार-छह हटर फटकार दिये। फिर भी वह तो हसता ही रहा। इस प्रकार मार पर मार पडने से महात्मा का सारा शरीर लोहू-लुहान हो गया, परन्तु मुख पर वही आभा वनी रही और वह वरावर हसता रहा। अव तो राजा एकदम विचार-सागर मे गोते लगाने लगा कि यह हसता क्यो है ? और रोता क्यो नही ? अवश्य ही इसमे कोई न कोई

मे भी बीमारी हो जाय, तो फिर क्या तेरा कोई साथी रहेगा ? राजा बोला—महाराज, मेरे तो डाक्टर, वैद्य, हकीम आदि बहुत हैं। वे इलाज करके मुझे अच्छा कर देंगे। महात्मा जी ने कहा—अरे राजन्, तू नादानो जैसी बातें कर रहा है। देख, जब रोग आकर घर कर लेता है, तब किसी डाक्टर, वैद्य या हकीम की शक्ति नही है कि वह उस रोग को मिटा दें।

महात्मा ने फिर कहा—राजन्, इधर देख। ज्यो ही राजा ने उस ओर मुख किया तो देखता है कि मुझसे भी बढकर एक राजा शस्त्रो से सज्जित हुआ घोडे पर सवार है। उसके दोनो पैर साप ने जकड रखे हैं, सिर पर गिद्ध बैठा है और छाती पर शेर का पजा पडा हुआ है और रक्त बह रहा है और उसकी आखो से आसू झर रहे हैं।

यह दृश्य दिखाकर महात्मा ने कहा - बोल राजन्, यह कौन है ? राजा बोला—यह भी एक राजा है। महात्मा ने पूछा—क्या कोई इसे मरने से बचा सकता है ? राजा ने कहा—नही भगवन्, इसे कोई नही बचा सकता है। तब महात्मा ने कहा—देख, वह तो रोग मे आक्रान्त था और यह मृत्यु से आक्रान्त है। न तो उसे कोई रोग से छुडाने मे समर्थ है और न इसे कोई मौत से ही छुडा सकता है।

तीसरी बार महात्मा ने कहा—राजन्, अब इस ओर देख। राजा ने उसी ओर मुख कर लिया। उधर वह क्या देखता है कि एक वृद्ध पुरुष है, जिसके हाथ थर्र-थर्र कप रहे हैं, पैर लडखडा रहे हैं, आख, नाक और मुख से पानी झर रहा है, शरीर जर्जरित हो रहा हैं और मक्खिया मुख पर भिन-भिना रही हैं। फिर भी वह लुढकता—पडता जा रहा है। यह दृश्य देखते ही राजा ने पूछा — महात्मन्, यह दृश्य किसका है ? महात्मा ने उत्तर दिया—यह बुढापा है। इससे भी मनुष्य को कोई नही छुडा सकता है।

ये सब दृश्य दिखाने के पश्चात् महात्मा ने निष्कर्ष -रूप मे कहा—राजन्, तूने देख लिया बुढापे का, रोग और मत्यु का हाल ? राजा बोला—हा भगवन्, अच्छी तरह देख लिया। महात्मा ने कहा—ये तीनो बातें प्रत्येक मनुष्य के पीछे लगी हुई हैं। इनसे कोई भी बचने वाला नही है राजन्,

अवश्य ही तुम्हारी समझ मे आ जायेंगी। देख, तू मानता है, कि आख, कान आदि सब मेरे हैं। परन्तु मैं तो कहता हू कि ये सब तेरे नही है। राजा ने पूछा—भगवन्, मेरे कैसे नही है ? तब महात्मा ने कहा—देख, उधर देख ! महात्मा जी के कथनानुसार राजा ने उस ओर मुख फेर कर देखा कि एक गादी पर लकवे से पीडित एक आदमी पडा है। न वह बोलता है, न चलता है और न कुछ काम ही कर सकता है। वह तो अचेत सा पडा हुआ है और पडा-पडा ही कुहराम मचा रहा है। महात्मा ने कहा—देख, इसे भली भाँति से देख। इसके आँख, नाक, कान, जीभ और शरीर सब कुछ है। परन्तु क्या यह इनका उपयोग कर सकता है ? राजा बोला—यह तो कुछ भी नही कर सकता है। राजा विचारने लगा—अरे, अभी कुछ देर पहिले यहाँ पर कुछ भी नही था ? फिर यह गादी और बीमार मनुष्य कहाँ से आ गया ? यह तो महात्मा कोई चमत्कारी सिद्ध पुरुप ज्ञात होते हैं।

राजा बोला—महात्मा जी, इसके सभी इन्द्रिया होते हुए भी यह लकवा से पीडित है, इसके शरीर का रक्त सूख गया है, इसलिए ये बोल-चाल नही पाता है। महात्मा ने कहा—देख राजन्, इसीलिए मैं कह रहा हू कि आखो के होते हुए भी यह अन्धा है, कानो के होते हुए भी यह बहरा है, जीभ के होते हुए भी नही बोल सकने से यह गूगा है। इसकी कोई भी इन्द्रिय काम नही कर रही है। परन्तु तू तो इससे बढकर है। राजा ने पूछा—भगवन्, मैं इससे बढकर कैसे हू ? मेरी तो सारी इन्द्रियाँ काम कर रही हैं। महात्मा बोले—देख, इसकी इन्द्रिया भले ही काम नही कर रही हो, परन्तु इसका मन तो साक्षी दे रहा कि मैंने पहिले बुरे कार्य किये हैं, इसलिए मैं इन महादुखो को भोग रहा हू। यदि मुझे इस दुख से छुटकारा मिल जाय,तो आगे फिर मैं ऐसा पाप नही करूगा। परन्तु राजन् ! तू पाप पर पाप करता ही जा रहा है और फिर भी पश्चात्ताप का नाम भी नही है ? तेरा मन अब भी पापो के करने से विरक्त नहीं हो रहा है, अत इससे भी गया बीता है।

राजन्, तू आज घोडे पर बैठा अकड कर चलता है परन्तु यदि तेरे शरीर

तुझे मारने वाला नही हू । अरे, तूने सोचा था कि इस वेचारे के पास क्या है ? तेरे पास तो राज्य-सत्ता है, हाथ मे हंटर हैं । परन्तु मेरी इस शक्ति के सामने तेरी वह तुच्छ शक्ति क्या काम दे सकती है ? यह देख राजा वोला— भगवन्, मैं वडा भारी अपराधी हूँ । मैंने वहुत बुरा काम किया है । अव पाप से कैसे छुटकारा पा सकता हूँ । मैंने अज्ञान, मोह और मद के वशीभूत होकर आपको हटर मारे । प्रभो, मुझे क्षमा कीजिए । आपके भीतर तो वह शक्ति है कि आप मुझे क्षणभर मे भस्म कर सकते हैं । परन्तु आपके हृदय मे करुणा की पुण्य धारा वह रही है, जव कि मेरे भीतर राक्षसी क्रूरता भरी हुई है ।

तव महात्मा ने कहा—राजन्, अव तो तेरी आखें खुल गई । राजा वोला—हा स्वामिन्, खुल गई । महात्मा ने पूछा—ऐसी वात कभी सुनी ? राजा ने कहा—नही महाराज, मैंने कभी नही सुनी । फिर पूछा—क्या तूने कभी जवान से कभी कहा कि मैंने भूल की है, अपराध किया है ? राजा ने उत्तर दिया नही भगवन्, मैंने कभी नही कहा । तव महात्मा जी वोले— हे राजन् इसीलिए तू गूगा है, वहरा है और अन्धा है । राजा ने स्वीकार करते हुए कहा—हा भगवन् ! आपका कहना विलकुल सत्य है । मैं परमार्थ की वात देखने के लिए आज तक अन्धा ही रहा, आत्म-कल्याण की वात सुनने के लिए वहरा ही रहा और अपने अपराध को स्वीकार करने के लिए अभी तक गूगा ही रहा । आज आपने मेरा अन्धापन दूर कर दिया, वहिरा-पन मिटा दिया और गूगेपन को गायव कर दिया । भगवन्, आपने जो मेरे ऊपर यह अकारण कृपा की, उसके लिए मैं जन्म-जन्मान्तर तक आपका कृतज्ञ और आभारी रहूगा । आपने मेरा जीवन सफल कर दिया, आज मेरा परम सौभाग्य है ।

भाइयो, कहने का तात्पर्य यह है कि विलासिता के नशे मे अन्धे होकर मानव अपनी मानवता को खो वैठते हैं । इसलिए विलासी जीवन को त्यागकर सादगीमय सरल जीवन को अपनाओ । मानव होकर मानव की और प्राणिमात्र की सेवा करो, स्वय ऊचा उठो और नीचे गिरेहुओ को ऊचा उठाओ । ऐसा करने से तुम भी ऊचे उठ जाओगे । अपने विचारो को शुद्ध

वता, क्या तूने ये वाते अपने जीवन मे कभी नही देखी है ? राजा वोला—भगवन्, देखी तो हैं । तव महात्मा ने कहा—फिर तेरी आखें क्यो वन्द हैं ? और तूने सुना भी है कि मेरे दादा पड दादा, माता-पिता, और सरदार—दीवान, सव मरे हैं ? वोल क्या तूने नही सुना है ? राजा ने कहा—सुना भी है और आखो से देखा भी है । तव महात्मा ने कहा—अरे राजन्, फिर तू किस वात पर अभिमान कर रहा है !

देख राजन्, मैं एक निर्जन वन मे रहने वाला साधु हूँ । मैं वहा पर शान्त भावो मे एकान्त मे अपनी साधना कर रहा हूँ । वोल ! मैंने तेरा क्या विगाडा है, जो तूने अभिमान से पागल वनकर मुझे मारा और सारे शरीर को लोहू-लुहान कर दिया । परन्तु मुझे तेरी इस निर्दयता पर भी दया आगई और मैं मार खाते हुए भी हसता ही रहा । अरे, मैंने तुझे केवल सावचेत करने के लिए ही अपने पास वुलाया था । फिर भी तूने कहा कि यहा क्या है ? तो देख—यहा वुढापा है, रोग है और मौत है । इनके सिवाय और कुछ नही हैं । जव तू इन दु खो से ग्रसित हो जायगा -इनके जाल मे फंस जायगा तव तू क्या करेगा ? आज तो तू मुझे हटर लगाता है, क्योकि, तुझे यह अभिमान है कि मैं राजा हूँ ! शक्तिशाली हू !! मेरा कौन मुका-विला कर सकता है ! ! परन्तु याद रख, ये तीनो ही शिकारी दौडते हुए तेरा पीछा कर रहे हैं । जव तू इनके चक्कर मे पड जायगा तव क्या तू मुझे हटर लगा सकेगा ? राजा दीनतापूर्वक नत-मस्तक होकर वोला—नही स्वामिन्, नही लगा सकूंगा । महात्मा ने फिर कहा—देख, तू तो राजा है । तेरे राज्य है, तो मेरे पास महाराज्य है । तूने तो यह समझ कर मुझे मारा कि साधु वेचारा मेरा क्या कर सकता है ? इसके पास क्या शक्ति है ? किन्तु मैं तुझे वह शक्ति भी दिखा देना चाहता हू । देख, शान्त भाव से स्थिर होकर इधर देख ! उसी समय साधु ने एक पुतला वनाया और उसे पाये पर घिसा तो उसमे से आग की लपटे निकलने लगी और वह जलने लगा ।

राजा उस पुतले को जलता हुआ देखकर वडा भय-भीत हुआ और सोचने लगा कि कहीं इसकी ज्वालाए आकर मुझे भी भस्म न कर देवें । वह थर-थर कापने लगा । तव महात्मा ने कहा—राजन्, घवडा मत । मैं

वस्त्रभूषण फेंक कर और साधु वाना धारण कर अवधूत महात्मा वन गया और खम, दम, सम को धारण का आत्म कल्याण के मार्ग मे लग गया वह विलासिता से हटकर निज-भाव मे रमण करने लगा ।

भाइयो, आप लोगो को भी विलासी जीवन को छोडकर स्वात्म-वासी और निज गुण-राची जीवन अगीकार करना चाहिए, जिससे कि निजानन्द-रस के भोक्ता परम सुखी वन सको ।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला ११

जोधपुर

●●

रखो और सबके कल्याण की भावना करो। इससे तुम्हारा सर्वत्र समादर होगा और यश भी प्राप्त होगा। यदि सुदृढ शरीर पाकर भी किसी की सेवा न कर सके, तो तुम्हारा यह शरीर पाना बेकार है। याद रखो, रोग, बुढापा और मौत ये तीनों तुम्हारे अन्दर भी आने वाले है। जैसे पहाडी नदी के पूर को आते और जाते देर नही लगती वैसे ही इस जवानी को जाते भी देर नही है। कहा भी है—

जब जवानी का चढ़ता पूर, निरखे तू दर्पण मे नूर।
पर आखिर वह बिरलाइ है, तुझे समझ नहीं आई है।

इस जवानी का नशा भी कैसा अजीब है। जवानी के मद से उन्मत्त हुआ व्यक्ति अपने हाथ मे काच लेता है और मुख देखता है। कभी भौंह चढ़ाता है, कभी मुख मटकाता है और ओंठो को चबाता है। अरे, तू क्या काना है, या अधा है, या चेचक के दाग है ? जो तू इतने गौर से अपने मुख को देखता है। अरे, वह जैसा है, वैसा ही है। अब क्या मटक कर देखने से तेरी यह शक्ल बदल जायगी। अरे, बन्दर के समान क्यो उछल-कूद कर रहा है। पर यह सब कुछ बनावट-सजावट हो रही है तो एकमात्र विलासिता को पोषण देने के लिए है। भाई, यह विलासिता तो मानव जीवन का सत्यानाश करने वाली है। यदि मानव अपना कल्याण करना चाहता है तो इस भोग-विलासमय जीवन से किनारा कर ले और शम, दम, सम-मय जीवन बना ले। जैसे राजा ने महात्मा को हटर मारे, परन्तु उन्होंने क्षमा धारण की। उन्होने सोचा इस जड़ हटर की मार में मेरे चेतन आत्मा का क्या बिगडने वाला है, तो तुम लोग भी इसी प्रकार क्षमा धारण करो। कोई कुछ भी कहे, परन्तु वापिस उत्तर देने की इच्छा मत करो। इन पाचो इन्द्रियो को अपने काबू मे रखो। शत्रु-मित्र, महल-मसान, इष्ट-अनिष्ट और काच-कचन मे समभाव रखो। मान-अपमान और खड्ग-प्रहार-पुष्प-वर्षण मे समभाव धारण करो। देखो उस राजा ने महात्मा के कहने से उक्त तीन गुणो को धारण कर लिए। उसके हृदय मे उसी समय वैराग्य भाव जगा। अपने सब

१४ शा० पारसमल जी कावेडिया, आरकाट, मद्रास (सादडी)
१५ शा० पुखराज जी अनराज जी कटारिया, आरकोनम् मद्रास (सेवाज)
१६ शा० सिमरतमल जी संखलेचा, मद्रास (वीजाजी का गुडा)
१७ शा० प्रेमसुख जी मोतीलाल जी नाहर, मद्रास (कालू)
१८ शा० गूदडमल जी शातिलाल जी तालेरा, एनावरम, मद्रास
१९ शा० चम्पालाल जी नेमीचन्द जी, जवलपुर (जैतारण)
२० शा० रतनलाल जी पारसमल जी चतर ब्यावर
२१ शा० सम्पतराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, कूपल (मारवाड-मादलिया)
२२ शा० हीराचन्द जी लालचन्द जी धोका, नक्सावाजार, मद्रास
२३ शा० नेमीचन्द जी धर्मीचन्द जी आच्छा, चगलपेट, मद्रास
२४ शा० एच० घीसुलाल जी पोकरना एन्ड सन्स आरकाट—N A D T. (वगडी नगर)
२५ शा० गीसुलाल जी पारसमल जी सिंघवी, चागलपेट, नद्रास
२६ शा० अमोलकचन्द जी भवरलाल जी विनायकिया, नक्शावाजार, मद्रास
२७ शा० पी० वीजराज नेमीचन्द धारीवाल, तीरुवेलूर
२८ शा० रूपचन्द जी माणकचन्द जी वोरा, वुशी
२९ शा० जेठमल जी राणमल जी सर्राफ, वुशी
३० शा० पारसमल जी सोहनलाल जी सुराणा कु भकोनम, मद्रास
३१ शा० हस्तीमल जी मुणोत, सिकन्दरावाद (आन्ध्र)
३२ शा० देवराज जी मोहनलाल जी चौधरी, तीरुकोईलूर मद्रास
३३ शा० वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, सोजत सिटी
३४ शा० गेवरचन्द जी जसराज जी गोलेछा, वैंगलोर सिटी
३५ शा० डी० छगनलाल जी नौरतमल जी वव, वैंगलोर सिटी
३६ शा० एम० मगलचन्द जी कटारीया, मद्रास
३७ शा० मगलचद जी दरडा c/o मदन लाल जी मोतीलाल जी, शिवराम पैठ, मैसूर
३८ पी० नेमीचन्द जी धारीवाल, N क्रॉस रोड, रावर्टसन पैठ K G F

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति

(प्रवचन प्रकाशन विभाग)

सदस्यों की शुभ नामावली

प्रथम श्रेणी

१ मै० वी सी ओसवाल, जवाहर रोड रत्नागिरी (मिरीयारी)

२ शा० इन्दरसिंह जी मुनोत, जालोरी गेट, जोधपुर

३ शा० लादूराम जी छाजेड, व्यावर, (राजस्थान)

४ शा० चम्पालाल जी डुंगरवाल, नगरथपेठ बेंगलोर सिटी (करमावास)

५ शा० कामदार प्रेमराज जी जुमा, मस्जिद रोड, बेंगलोर सिटी (चावडिया)

६ शा० चादमल जी मानमल जी पोकरना, पेरम्बूर मद्रास ११ (चावडिया)

७ जे वस्तीमल जी जैन, जैनगर बेंगलोर ११ (पुजलू)

८ शा० पुखराज जी सीसोदीया, व्यावर

९ शा० वालचद जी रूपचन्द जी वाफना,
११८/१२० जवेरीवाजार वम्बई–२ (सादडी)

१० शा० वालावगस जी चम्पालाल जी वोहरा, राणीवाल

११ शा० केवलचन्द जी सोहनराज वोहरा, राणीवाल

१२ शा० अमोलकचन्दजी धर्मीचन्दजी आछा, वडी कानचीपुर, मद्रास (सोजतरोड)

१३ शा० भुरमल जी मीठालाल जी वाफना, तिरकोयलूर, मद्रास (आगेवा)

२१ श्री सतोकचन्द जी जवरीलाल जी जामड
१४६ बाजार रोड, मदरानगतम
२२ श्री कन्हैयालाल जी गादिया, आरकोनम्
२३ श्री धरमीचन्द जी ज्ञानचन्द जी मूथा, बगडीनगर
२४ श्री मिश्रीमल जी नगराज जी गोठी—बिलाडा
२५ श्री दुलराज जी इन्दरचन्द जी कोठारी
११४, तैयप्पा मुदलीस्ट्रीट, मद्रास-१
२६ श्री गुमानलल जी मागीलाल जी चौरडिया चिन्ताघरी पैठ—मद्रास-१
२७ श्री सायरचन्द जी चौरडिया, ६० एलीफेन्ट गेट मद्रास-१
२८ श्री जीवराज जी जवरचन्द जी चौरडिया—मेडता सिटी
२९ श्री हजारीमल जी निहालचन्द जी गादिया १६२ कोयमतूर—१
३० श्री केसरीमल जी झूमरलाल जी तालेसरा—पाली
३१ श्री धनराज जी हस्तीमल जी सचेती—कावेरीचाक
३२ श्री सोहनराज जी शान्तिप्रकाश जी सचेती—जोधपुर
३३ श्री भवरलाल जी चम्पालाल जी सुराना—कानावना
३४ श्री मागीलालजी शकरलालजी भँसाली
२७ लक्ष्मी अमन कोयल स्ट्रीट, पैरम्बूर मद्रास-११
३५ श्री हेमराज जी शान्तीलाल जी सिंघी,
११ बाजाररोड रायपैठ मद्रास-१४
३६ शा० अम्बूलाल जी प्रेमराज जी जैन, गुडियातम
३७ शा० रामसिह जी चौधरी, ब्यावर
३८ शा० प्रतापमल जी मगराज जी मलकर—केसरीसिह जी का गुडा
३९ शा० सपतराज जी चोरडीया, मद्रास
४० शा० पारसमल जी कोठारी, मद्रास
४१ शा० नौकमचन्द जी चोरडीया, मद्रास
४२ शा० शान्तिलाल जी कोठारी, उतमेटे
४३ शा० जवरचन्द जी गोकलचन्द जी कोठारी, ब्यावर

३९ शा० चम्पालाल जी प्रकाशचन्द जी [illegible] नं० ५७ [illegible] पेठ, बैंगलूर-२

४० शा० आर. विजयराज जागडा नं० १ नागरोड, राबर्टसन पेठ, K G F.

४१ शा० गजराज जी छोगमल जी, रविवार पेठ ११५३, पूना

द्वितीय श्रेणी

१ श्री लालचंद जी श्रीश्रीमाल, ब्यावर

२ श्री सूरजमल जी इन्दरचन्द जी सकलेचा, जोधपुर

३ श्री मुन्नालाल जी प्रकाशचन्द जी नम्बरिया नोपनी चौक, कटक

४ श्री घेवरचन्द जी रातड़िया, राबर्टसनपेठ

५ श्री बगतावरमल जी अचलचंद जी गीरमगा ताम्बरम, मद्रास

६ श्री छोतमल जी माधवचंद जी नीबगरा, बोपारी

७ श्री गणेशमल जी मदनलाल जी भंडारी, नीमली

८ श्री माणकचंद जी गुलेछा, ब्यावर

९ श्री पुखराज जी बोहरा, राणीवाल वाला हालमुकाम पीपलिया कलां

१० श्री धर्मीचंद जी बोहरा जूठावाला, हाल मुकाम पीपलिया कलां

११ श्री नथमल जी मोहनलाल जी लूणिया, चन्डावल

१२ श्री पारसमल जी शान्तीलाल जी ललवाणी, बिलाड़ा

१३ श्री जुगराज जी मुणोत, मारवाड़ जक्शन

१४ श्री रतनचन्द जी शान्तीलाल जी मेहता—सादडी (मारवाड)

१५ श्री मोहनलाल जी पारसमल जी भंडारी, बिलाडा

१६ श्री चम्पालाल जी नेमीचन्द जी कटारिया, बिलाडा

१७ श्री गुलाबचन्द जी गम्भीरमल जी मेहता—गोलवड
[तालुका डेणु—जि० थाणा (महाराष्ट्र)]

१८ श्री भवरलाल जी गौतमचन्द जी पगारिया, कुशालपुरा

१९ श्री चनणमल जी भीकमचन्द जी राका, कुशालपुरा

२० श्री मोहनलाल जी भवरलाल जी बोहरा, कुशालपुरा

१९ श्री हिम्मतलाल जी प्रेमचन्द जी साकरिया, साडेराव
२० श्री पुखराज जी रिखवाजी साकरिया, साडेराव
२१ श्री वाबूलाल जी दलीचन्द जी वरलोटा,-फालना स्टेशन
२२ श्री मागीलाल जी सोहनराज जी राठोड, सौजतरोड
२३ श्री मोहनलाल जी गाधी, केसरसिंह जी का गुडा
२४ श्री पन्नालाल जी नथमल जी भसाली, जाजणवास
२५ श्री शिवराज जी लालचन्द जी वोकडिया, पाली
२६ श्री चान्दमल जी हीरालाल जी वोहरा—व्यावर
२७ श्री जसराज जी मुन्नीलाल जी मूथा, पाली
२८ श्री नेमीचन्द जी भवरलाल जी डक, सारण
२९ श्री ओटरमल जी दीपा जी, साडेराव
३० श्री निहालचन्द जी कपूरचन्द जी, साडेराव
३१ श्री नेमीचन्दजी शान्तीलाल जी सीसोदिया, इन्द्रावड
३२ श्री विजयराज जी आणदमल जी सीसोदिया, इन्द्रावड
३३ श्री लूणकरण जी पुखराज जी लूकड विग-वाजार, कोयमतूर
३४ श्री किस्तूरचन्द जी सुराणा, कालेजरोड कटक (उडीसा)
३५ श्री मूलचन्द जी वुधमल जी कोठारी, वाजार स्ट्रीट, मन्डिया
३६ श्री चम्पालाल जी गौतमचन्द जी कोठारी, गोठन स्टेशन
३७ श्री कन्हैयालाल जी गौतमचन्द जी काकरिया, मद्रास (मेडतासिटी)
३८ श्री मिश्रीमल जी साहिवचन्द जी गाधी, केसरसिह जी का गुडा
३९ श्री अनराजजी वादलचन्दजी कोठारी, खवासपुरा
४० श्री चम्पालालजी अमरचन्दजी कोठारी, खवासपुरा
४१ श्री पुखराजजी दीपचन्दजी कोठारी, खवासपुरा
४२ शा. सालमसीग जी ढावरिया, गुलावपुरा
४३ शा मिट्ठालाल जी कातरेला, वगडीनगर
४४ शा पारसमल जी लक्षमीचन्द जी काठेड, व्यावर

४४ शा० जवरीलाल जी धरमीचन्द जी गादीया, लाविया

४५ श्री सेसमल जी धारीवाल, वगडीनगर (राज०)

४६ जे० नौरतनमल जी बोहरा १०१८ के० टी० स्ट्रीट, मैसूर-१

४७ उदयचन्द जी नौरतमल जी मुथा

c/o हजारीमल जी वीरधीचन्द जी मुथा मेवाडी वाजार, व्यावर

४८ हस्तीमल जी तपस्वीचन्द जी नाहर पो० कौमाना (जोधपुर)

तृतीय श्रेणी

१ श्री नेमीचन्द जी कर्णावट, जोधपुर

२ श्री गजराज जी भडारी, जोधपुर

३ श्री मोतीलाल जी सोहनलाल जी बोहरा, व्यावर

४ श्री लालचन्द जी मोहनलाल जी कोठारी, गोठन

५ श्री सुमेरमल जी गाधी, सिरीयारी

६ श्री जवरचन्द जी वम्व, सिन्धनूर

७ श्री मोहनलाल जी चतर, व्यावर

८ श्री जुगराज जी भवरलाल जी राका, व्यावर

९ श्री पारसमल जी जवरीलाल जी धोका, सोजत

१० श्री छगनमल जी वस्तीमल जी बोहरा, व्यावर

११ श्री चनणमल जी थानचद जी खीवसरा सिरियारी

१२ श्री पन्नालाल जी भवरलाल जी ललवाणी, विलाडा

१३ श्री अनराज जी लिखमीचन्द जी ललवाणी, आगेवा

१४ श्री अनराज जी पुखराज जी गादिया, आगेवा

१५ श्री पारसमल जी धरमीचन्द जी जागड, विलाडा

१६ श्री चम्पालाल जी धरमीचन्द जी खारीवाल, कुशालपुरा

१७ श्री जवरचन्द जी शान्तीलाल जी बोहरा, कुशालपुरा

१८ श्री चम्पालाल जी हीराचन्द जी गुन्देचा, सोजतरोड

४५ शा धनराज जी महावीरचन्द जी खीवसरा बैंगलूर
४६ शा धनराज जी महावीरचन्द जी खीवसरा, बैंगलोर ३०
४७ शा पी० एम० चौरडिया, मद्रास
४८ शा. अमरचन्द जी नेमीचन्द जी पारसमल जी नागौरी, मद्रास
४९ शा. वनेचन्द जी हीराचन्द जी जैन, सोजतरोड, (पाली)
५० शा. झूमरमल जी मागी लाल जी गूदेचा, सोजतरोड (पाली)

●●